ॐ

श्री राम लाल प्रभु जी पर ब्रह्मणे नम :

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज

चरितामृत

श्री योग महा दिव्य रामायण

पञ्चम खण्ड (विनय काण्ड)

लेखक

चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक

योग साधन आश्रम

३-माडल टाउन होशयारपुर (पंजाब)

ॐ

श्री राम लाल प्रभु जी पर ब्रह्मणे नम :

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज

चरितामृत

श्री योग महा दिव्य रामायण

पञ्चम खण्ड (विनय काण्ड)

लेखक

चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक

योग साधन आश्रम

३-माडल टाउन होश्यारपुर (पंजाब)

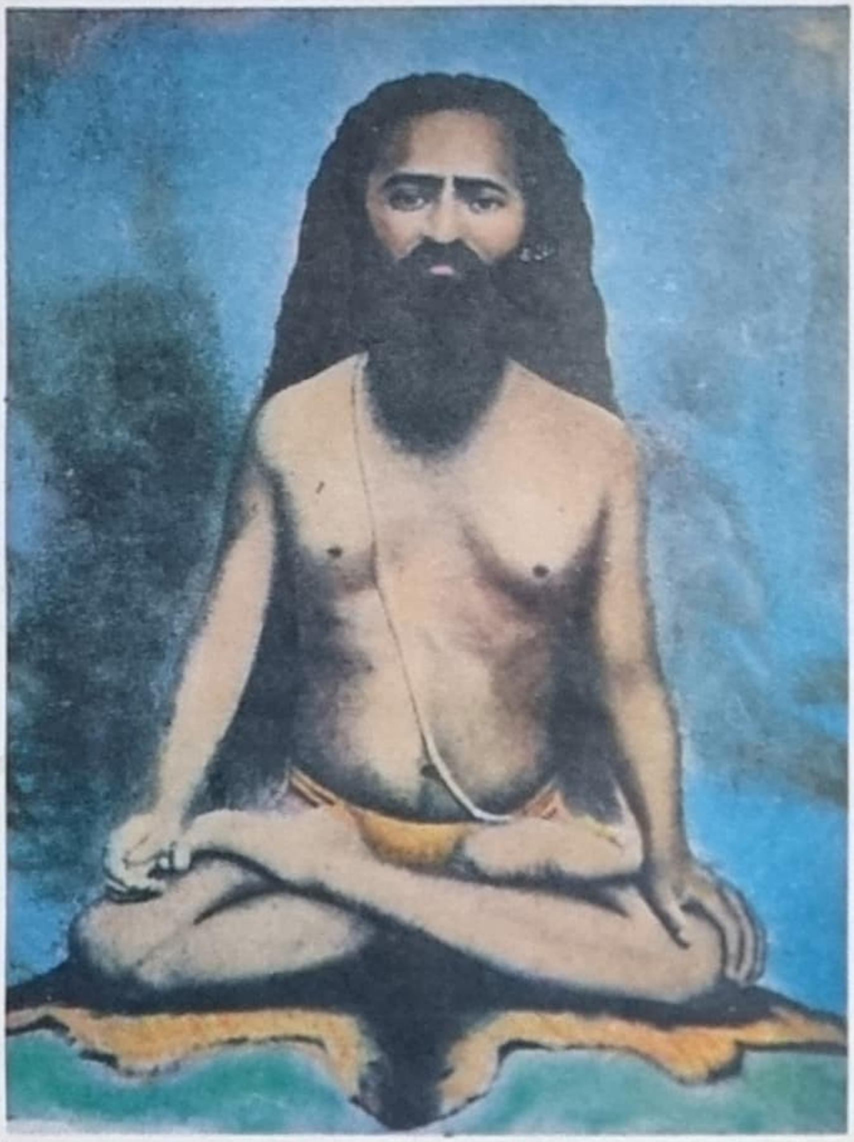

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
जग में जब हो धर्म की हान।
लें अवतार तभी भगवान।।

समर्पण

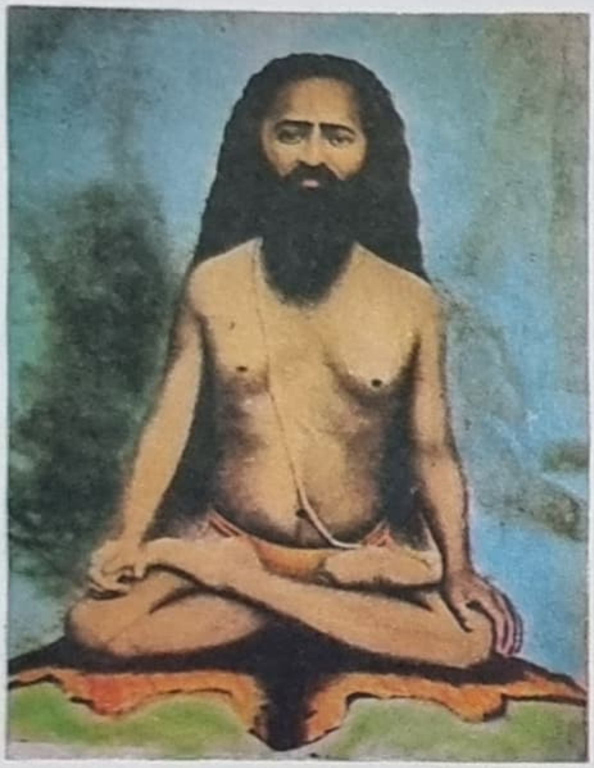

योगेश्वर श्री १००८
प्रभु राम लाल जी महाराज

योगेश्वर १००८
स्वामी मुलख राज जी महाराज

अर्पित तेरे चरण में,
विनय काण्ड भगवान ।
मम विनय स्वीकार कर,
जग का कर कल्याण ॥

प्रथमबार	....	1000
योगेश्वर राम लालाब्द	....	105
विक्रम संवत	....	2050
ईस्वी सन	....	1993

भेंट–75 रुपये

भूमिका

'श्री योग महा दिव्य रामायण' का "विनय काण्ड" सहृदय प्रभु भक्तों के अनुशीलनार्थ प्रभु कृपा से प्रकाशित हुआ है । आशा है प्रभु भक्त समाज पूर्व प्रकाशित इस ग्रंथ के चार खण्डों * की तरह इस पञ्चम खण्ड को भी अपना कर अपने स्वाध्याय का अंग बनायेंगे । इस विनय काण्ड के निम्नलिखित पांच सर्ग हैं :-

(1) आत्महित विनय
(2) धर्महित विनय
(3) देश हित विनय
(4) जग हित विनय
(5) विश्व हित विनय

यह संपूर्ण काण्ड 61 प्रसंगों में विभक्त है, प्रत्येक प्रसंग का शीर्षक उसी प्रसंग की कोई एक पंक्ति है जिसका निर्देश शीर्षक के साथ कोष्ठ में दोहा संख्या के रूप में कर दिया है ।

विनय काण्ड "सेवक" के हृदय के वे उद्गार हैं जिनमें वह विश्व के हर प्राणी के कल्याणार्थ भगवान से प्रार्थी है ।

श्री सद्गुरुचरणों का "सेवक" चमन लाल कपूर

---

*पूर्व प्रकाशित चार खण्ड ये हैं :-

1. बाल तथा वन काण्ड । (दोहा संख्या 1 से 806)
2. आश्रम काण्ड । (दोहा संख्या 806 ख से 2079 च)
3. दिव्य काण्ड । (दोहा संख्या 2079 छ से 2546 घ)
4. उत्तर काण्ड । (दोहा संख्या 2546 ङ से 3004 च)

ॐ

श्री दिव्य रामायण सहगान

दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ।
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ।
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ॥
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ।
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुख दायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
''सेवक'' शीश झुकावे ॥

श्री योग महादिव्य रामायण (विनय काण्ड)

प्रसंग सूचि

(I) प्रथम सर्ग-आत्म हित विनय (दोहा 3005 से 3304 ख)

क्रम संख्या	प्रसंग	पृष्ट
1.	अपना चाकर राखिये (दोहा 3012)	1
2.	मुझे भी कर स्वीकार (3019)	5
3.	मूरख करता पाप (3026)	9
4.	प्रभु के नाम बिना सुख नाहिं (3032/5)	13
5.	राम योगेश्वर हैं अवतार (3039/9)	16
6.	पर धन देखूँ धूल समान (3047)	20
7.	मुझे बचाओ हे मम नाथ (3053/10)	24
8.	दृढ़ करो प्रभो ध्यान मम (3061)	28
9.	मैं जानूँ निज मन का हाल (3069/9)	32
10.	दान मोक्ष का दीजिये (3076)	36
11.	दृढ़ हो मम विश्वास (3079)	41
12.	तीन ऋणों से मुझे छुडाओ (3086/5)	45
13.	करिये दूर क्लेश मम (3089) ङ	47
14.	भय लागे नहीं मौत से (3103)	52
15.	योग मार्ग के विघ्न निवारो (3105/1)	57
16.	दर्शन बिन जन चैन न पावे (3115/4)	62
17.	आंखों में तव रूप समाये (3121/6)	67
18.	दृढ़ता से गहूँ तेरे चरण (3130/5)	72

19.	शिव संकल्प हो मेरा चित्त (3139/4)	78
20.	माया प्रभो न मुझे लुभाये (3146/1)	82
21.	दूसर रूप न सन्मुख आये (3156/8)	88
22.	तेरी शरणी आर्त मैं आया (3163/3)	92
23.	ध्यान ज्ञान का दृढ़ संयोग (3170/7)	97
24.	द्रष्टा बन तुम्हीं को देखूँ (3178/12)	101
25.	तेरी किरपा अब पहचानूं (3188/7)	106
26.	तेरी किरपा का नहीं पार (3196/1)	111
27.	पूर्ण गुरु सभी सहज न पायें (3202/4)	116
28.	बिन तव किरपा विफल प्रयास (3210/9)	121
29.	निन्दा पापों का है मूल (3218/5)	126
30.	विषयों से प्रभु मुझे बचाओ (3225/1)	131
31.	तेरे योग ने जग तराया (3233/1)	136
32.	दिव्य रामायण योगभण्डार (3242/7)	142
33.	भक्तों के तुम रक्षक नाथ (3249/1)	147
34.	गुरु किरपा समाधि की मूल (3258/8)	151
35.	उत्तम है हठ योग विज्ञान (3266/10)	156
36.	मुझ से दुख न गहे को जीव (3274/4)	161
37.	तुम तो न्यायकारी भगवान (3281/2)	167
38.	कृपा बिन कुछ सकत न होय (3289/8)	171
39.	मेरी भी सुनो प्रभो पुकार (3298/10)	175
	II. द्वितीय सर्ग–धर्म हित विनय	
	(दोहा 3304 ग से 3363 च)	181
40.	बहुत पाप का भार (3306) क	181
41.	सज्जन दुखी महान (3313)	185
42.	तेरी दया अनूप (3322 ख)	190
43.	पाप देश से द्रोह है (3331 ख)	195
44.	एक सहारा तोर (3341 क)	200

45.	प्रभु के चरण आराध (3350)	205
46.	दें मोक्ष भगवान (3363)	210
	III. तृतीय सर्ग-देश हित विनय	214
	(दोहा 3363 च–3418/8)	
47.	आओ ले अवतार (3365 ख)	214
48.	हो योग प्रचार (3374)	219
49.	हो रक्षा तव हाथ (3381 ङ)	223
50.	असुर शून्य हो भारत देश (3390/3)	228
51.	सुन्दर भारत बने हमारा (3406/5)	233
52.	स्वर्गिक सुख हों देश में (3410 क)	239
	IV. चतुर्थ सर्ग-जग हित विनय	247
	(दोहा 3419–3467)	
53.	मानव करे न अत्याचार (3419/3)	247
54.	ऋषि मुनियों से ज्ञान ग्राहें (3429/6)	251
55.	ढूंढन से किसे मिले हैं राम (3438/5)	256
56.	"सेवक" भी तू संग है लाया (3446/9)	261
57.	अनेकों जन थे प्रभु ने तारे (3455/9)	266
58.	मिले योग का सबन सहारा (3466/2)	271
	V. पञ्चम सर्ग-विश्व हित विनय	273
	(दोहा 3467 ख–3481 ख)	
59.	सुखी करो उन को प्रभो (3468)	273
60.	उन जीवों का भी मंगल होय (3471/7)	275
61.	आत्मा सर्व व्यापक देव (3476/8)	278

योग महा दिव्य रामायण

प्रथम सर्ग

आत्म हित विनय

(१) अपना चाकर राखिये । (दोहा 3012)

दो०- महा प्रभु और राम जी, और मुलख जी राज ।
विनती अपने दास की, श्रवण करें जी आज ॥ 3005 क
मेरे सद्गुरु आप हैं, और इष्ट भी आप ।
परमेश्वर भी आप हैं, और सर्वस्व आप ॥ 3005 ख

सेवा में है सेवक आया, इक विनय है संग यह लाया ।
रामायण का विनय यह काण्ड, महा ग्रन्थ का अन्तिम काण्ड ।
इसे लिखावें खुद ही आन, अज्ञ 'सेवक' यह है नादान ।
जिस महिमा को सब लिख हारे, थके ऋषि मुनि अभी तक सारे ।
महिमा उसी का किमि बखान, करता 'सेवक' यह अनजान ।
जैसा भी तुम ने लिखवाया, दास लिपिबद्ध यह कर पाया ।
पुनः 'सेवक' की यही पुकार, विनय काण्ड भी हो स्वीकार ।
इस को विनय का दीजो दान, संग में प्रतिभा का वरदान ।
स्वयं लिखावें लिखे विनीत, तव चरणि रख के दृढ़ प्रीत ।

दो॰- यही विनय तव चरण में, होय प्रभु स्वीकार ।
दया करें इस दास पर, हो यह भव से पार ॥ 3006 क
भव भय हारी तुम प्रभु, सेवक करे अरदास ।
इस निमाने दास के, रहें सदा ही पास ॥ 3006 ख

मेरे अवगुण चित न लाना, किरपा ही मुझ पर कर पाना ।
निज पापों का तुंग पहाड़, सकूं मैं कैसे उसे उखाड़ ।
मेरे पुण्य लघु नख समान, सकें खोद किमि पहाड़ महान ।
विपुल पापों का वन हे नाथ, कटे क्या लघु सुकृत के हाथ ।
तन मन वचन से कीने पाप, दे रहे 'सेवक' को संताप ।
अपनी किरपा से हे स्वामी, दुःख हरो तुम अन्तर्यामी ।
किस किस का दुख किया न दूर, पर्वत पाप के कीने चूर ।
[१]रामरती के पाप दुराये, [२]रक्षा बुढ़िया की कर पाये ।
[३]लीना हरनामदास उबार, किस विध कहें तव दया अपार ।

दो॰- दया दयालो ! आप की, सब भक्तों पर नाथ ।
इस नीमाने दास के, रहें सदा ही साथ ॥ 3007

मेरे प्रभु हैं पाप घनेरे, पुण्य के लागा हूँ न नेरे ।
पापी पाप के मार्ग चालें, यदि प्रभु न उन्हें संभालें ।
मैं तो पापियों का सरदार, गिन पाऊँ नहीं पाप अपार ।
जन्म एक नहीं हैं अनेक, भरा पाप से जो प्रत्येक ।
स्वयं किये हैं भोगूँ आप, सकूँ न सह पर सब संताप ।

---

१. रामरती-दोहा संख्या 366 से आगे
२. बुढ़िया-दोहा संख्या 10 से आगे
३. हरनामदास-दोहा संख्या 340 से आगे

प्रभो करो मुझ पर अब दाया, उस मग चलूँ जो तुम दिखाया ।
[४]राम गोपाल जो मग अपनाया, [५]मुलख राज जिस मग चल पाया ।
[६]ऋषि देवी जिस मग चल पाई, [७]द्रौपदी जो रीत अपनाई ।
'सेवक' चाले उस ही लीक, गहे न पथ वह कभी अलीक ।

दो॰- पथ अलीक न कभी गहूँ, मैं दासन का दास ।
इस निमाने दास के, रहें सदा प्रभु पास ॥ 3008

आप रहें जब मेरे संग, मन रंगे नहीं पाप के रंग ।
शुभ कर्म सभी कर पाये, पाप कर्म न कोई कमाये ।
पाप से रह कर तब वह दूर, सुख को पायेगा जन ज़रूर ।
सुख का साधन प्रभु हैं आप, सदा करे जो आप का जाप ।
आप की कृपा से हे नाथ, पाप त्यागें उस का साथ ।
धर्म कर्म को वह कर पावे, संचय पुण्यों का कर पावे ।
उसे मिले फिर क्यों संताप, "सेवक" पर करें किरपा आप ।
प्रभु की किरपा जो जन पाय, पाप कर्म नहीं उसे सताय ।

दो॰ रहे पाप से दूर यह, दास आप का नाथ ।
इस निमाने दास के, रहें सदा ही साथ ॥ 3009

[८]दोषों से जय राम बचाया, यम व नेम पर उसे चलाया ।
मुझ पर भी किरपा कर पाओ, यम व नेम पर मुझे चलाओ ।
आसन प्राणायाम सिखाय, प्रत्याहार का मग दिखलाय ।
धारणा ध्यान में मुझे लगा, समाधि में निज स्वरूप दिखा ।
ज्ञान की गंगा में नहलाओ, प्रभो ऐसी कृपा कर पाओ ।
षट् कर्मों का दे कर ज्ञान, मुद्रा सिद्ध करा भगवान ।

---

४. रामगोपाल-दोहा संख्या 942 से आगे
५. मुलख राज-दोहा 883 से आगे
६. ऋषि देवी, दोहा 1195 से आगे
७. द्रौपदी-दोहा 1206 से आगे
८. जय राम- दोहा संख्या 183 से आगे

शक्ति चालनी होवे सिद्ध, कुण्डली करे षट्चक्र बिद्ध ।
खेचरी का मैं बंध लगाऊँ, सहस्त्रार में प्राण चढ़ाऊँ ।

दो॰- तेरी किरपा है भयी, हे नाथन के नाथ ।
यह 'सेवक' तो बिक गया, प्रभु तुम्हारे हाथ ॥ 3010 क
प्रभु तुम्हारे हाथ में, इस 'सेवक' की डोर ।
जिधर चलावें यह चले, देखे ओर न छोर ॥ 3010 ख

ओर छोर न प्रभु यह देखे, निशि दिन तव चरणों को पेखे ।
रहे सदा तव ध्यान में लीन, जैसे जल भीतर हो मीन ।
जैसे मुलख राज महाराज, मुझे भी वैसा कीजो आज ।[1]
गुलाब देवी की जो थी भक्ति, सद्गुरु चरणों में अनुरक्ति ।[2]
वैसी मैं भी भक्ति पाऊं, गंगा योग की मैं नहाऊँ।
तपस्विदम्पति जो सुख पाया, निज जीवन को सफल बनाया ।[3]
वह सुख हमें भी दो भगवान, शरण पड़ा सह भार्या आन ।
गुरु सेवा मन साध्वी लाया, वन में था जिस सिंह भगाया ।[4]
उस पर प्रभु तुम कृपा कीन, अमोघ थी आशिष उस को दीन ।
मैं भी वैसी आशिष पाऊँ, कृपा पात्र तेरा बन जाऊँ ।

दो॰ वैसी आशिष मैं गहूँ, तव दासन का दास ।
यह निमाना दास तो, रहे सदा प्रभु पास ॥ 3011

दो भव सागर से प्रभु तार, डूब रहा हूँ मैं मंझधार ।
विषय ग्राह ने मुझे ग्राह्या, बेबस हो उस के वश आया ।
गज पुकार तुम सुन थे आये, तव 'सेवक' अब तुझे बुलाये।
अब आओ तो लूँ मैं जान, तेरे लिए सब भक्त समान ।

---

१. मुलख राज-दोहा सं॰ 901 से आगे
२. गुलाब देवी-दोहा सं॰ 2112 से आगे
३. तपस्विदम्पति-दोहा सं॰ 288 से आगे
४. साध्वी-दोहा सं॰ 295 से आगे ।

[१]भक्त हित बहु देह बनाये, [२]कर्ण सिंह के प्राण बचाये ।
गाड़ी नीचे कुचला जाता, त्राण न तुरन्त यदि वह पाता ।
[३]ठाकुर दास रहता बिन पूत, यदि न पाता तुम से वह पूत ।
उस को चार पूत तुम दीन, उजड़ा गृहस्थ बसा जिस लीन ।

दो॰ तेरी महिम अनन्त है, मेरे मन विश्वास ।
मेरी विनती एक ही, रहूँ सदा तब दास ॥ 3012 क
अपना चाकर राखिये, पड़ा रहूँ तव द्वार ।
अन्य जनों का जिमि किया, करिये मम उद्धार ॥ 3012 ख

(२) मुझे भी कर स्वीकार (3019)

दे चवन्नी भक्त तराया, जौहरी को धनाढ्य बनाया ।
धन की तो नहीं मुझ को चाह, तव भक्ति मैं पाऊं अथाह ।
मीरा को जो भक्ति दीनी, सूरदास जो तुम से लीनी ।
तुलसीदास भया तव दास, वैसा भक्त बनाओ खास ।
[५]रामा पर जो कीनी दाया, [६]हरानन्द जिमी गले लगाया ।
[७]घुग्घु बालक गोद बिठलाया, [८]उस की माँ को दर्श दिखाया ।
[९]कृपालानन्द मीत बनाया, [१०]हीरा गिरि का भ्रम मिटाया ।
किस किस का मैं करूँ बखान कृपा करो मुझ पर भगवान ।

दो॰ मुझ पर भी किरपा करो, हूँ मैं तेरा दास ।
'सेवक' को न त्यागिये, इस को तेरी आस ॥ 3013

---

१. बहु देह–दोहा 676 से आगे
२. कर्ण सिंह–दोहा 680 से आगे
३. ठाकुर सिंह–दोहा 666 से आगे
४. दोहा 662 से आगे
५. दोहा 385 से आगे
६. दोहा 240 से आगे
७. दोहा 1351 से आगे
८. दोहा 1354 से आगे
९. कृपालानन्द–दोहा 760 से आगे
१०. हीरागिरी–दोहा 776 से आगे

तुझे छोड़ मैं किस दर जाऊं, शरण और न कहीं मैं पाऊँ ।
जिस भी शरण ली तुझ से मांग, दिखलाया न तू उस को त्याग ।
विभीषण तेरी शरणि आया, बना लंकेश गले लगाया ।
सुग्रीव को निज शरणि लीना, वानर राज उसे कर दीना ।
अर्जुन ने जब शरण ग्राही, रण में उसे विजय दिलवायी ।
[1]मुलख राज घर छोड़ के आया, अपना रूप तू उसे बनाया ।
[2]हरी राम जब दीना शीष, गले लगाया तू जगदीश ।
[3]राम गोपाल जब शरणि आया, दृढयोगी तू उसे बनाया ।

दो० शरण मुझे भी दीजिये, हे परम जगदीश ।
हरिहरानन्द की तरह, बेशक लीजिये शीश ॥ 3014

रे मन मेरी सीख संभाल, चंचलता दे भाड़ में डाल ।
भागवन्ती सुत राम को देख, तेजोमय वह रूप ले पेख ।
उसी तेज में हो जा लीन, शांति पायेगा तभी नवीन ।
जिस प्रभु के कोमल चरण, का नवकमल के सम है वरण ।
जिस पगकमल के नख की ज्योत, हृदय भक्त के करत उद्योत ।
जिस से होत पाप का नाश, और पुण्य का सदा विकास ।
उन चरणों का कर ले ध्यान, निर्मल चाहता यदि तू ज्ञान ।
उन चरणों का बन मतवाला, भ्रमर जले जिमि दीप ज्वाला ।

दो० जिन चरणों के आश्रित, सकल जगत के प्राण ।
रे मन उन का प्रेम से, कर ले तू भी ध्यान ॥ 3015 क
जिस जिस ने प्रभु चरण का, कीन सदा ही ध्यान ।
प्रभु किरपा से पा लिया, मुक्ति भुक्ति का दान ॥ 3015 ख

१. मुलखराज-दोहा 1970 से आगे २. हरी राम-दोहा 250 से आगे
३. राम गोपाल-दोहा 1569 से आगे

और रूप भी प्रभु का देख, ध्यान में उन का आसन पेख ।
पद्म समान प्रभु का आसन, बैठ जहां हो मन पै शासन ।
प्रभु के उस आसन का ध्यान, करते सदा जो भक्त सुजान ।
वृत्तियों का तब होत निरोध, शत्रु होंय वश काम क्रोध ।
योग का है फिर-खुलता द्वार, जभी बैठे तिमि आसन धार ।
प्रभु का आसन देता सीख, यह जीवन इक कठिन परीख ।
स्थिर आसन जन लेवे धार, उसी में माने सुख अपार ।
दीर्घकाल वह करे अभ्यास, करे निरन्तर सह सत्कार ।
प्राण की सिद्धि इस विध होय, इस मग पर जन चाले कोय ।

दो॰ पद्मासन को निरख कर, सदा धरे जो ध्यान ।
मन उस का प्रभु में रमे, योगी बने सुजान ॥ 3016

कृपा करो हे स्वामी मेरे, सदा रहूँ मैं ध्यान में तेरे ।
जग की ममता से रह दूर, निरखूँ सदा तव पग का नूर ।
पद्मासन में तुम को देख, मन हर रूप तुम्हारा पेख ।
सदा योग की सीख ग्राहूँ, कमल समान जग में रह पाऊँ ।
श्रद्धा से तव रूप निहारूँ, जटा रूप तव मन में धारूँ ।
करूं निरन्तर तेरा ध्यान, मिलता जिस से सकल है ज्ञान ।
इसी रूप को निरखन हारे, भव से पार भये हैं सारे ।
जिस जिस ने प्रभु रूप निहारा, उसे मिला भव पार किनारा ।

दो॰ मुलखराज को जब दिया, अपना दिव स्वरूप ।
वह तो सचमुच बन गया, प्रभु जी का ही रूप ॥ 3017 क
मुलखराज के रूप का, जन करता जो ध्यान ।
मुलख राज के रूप में, मिलत राम का ज्ञान ॥ 3017 ख

हे मन मुलखराज को देख, राम व इन में भेद न पेख।
दो देह पर रूप है एक, स्वरूप भिन्न पर शक्ति एक।
निराकार दो भये साकार, प्रभु लीने ये रूप दो धार।
ब्राह्मण कुल इक था अवतारा, अरोड कुल में दूज आकारा।
भक्त वत्सल ये दोनों रूप, ये योगेश्वर दिव्य स्वरूप।
हे मन इन का कर तू ध्यान, दोनों रूप तू इक लो मान।
इन में योग की शक्ति अपार, योग क्षेम के बखशनहार।
'सेवक' को इन का आधार, पाप निवारो मम करतार।

दो॰ पाप निवारो हे प्रभो, मैं हूँ तेरा दास।
'सेवक' को न त्यागिये, इस को तेरी आस ॥ 3018

जिस को लीना तुम अपनाय, बना तू उस का सदा सहाय।
[1]हरानन्द को तू अपनाया, मारवाड़ में उसे भिजाया।
वहाँ पर जो उस कीनी कार, प्रकटी थी तव शक्ति अपार।
आस्तिक बन गये नास्तिक लोग, वहां विस्तारा हरि ने योग।
प्रभु की शक्ति योग फैलाये, शरणागत को सुखी बनाये।
कर कृपा प्रभु योग फैलाओ, क्लेश जगत के दूर हटाओ।
पाप ताप से जग दुखयारा, मिले योग का इसे सहारा।
इसी हेत प्रभु तव अवतार, विलंब क्यों अब हे करतार।

दो॰ विलंब प्रभु न कीजिये, अपनाओ निज दास।
यह निमाना दास तो, रहे सदा तव पास ॥ 3019 क
जन्म दिया इस जीव को, जिस कार्य के हेत।
तव शक्ति से मिट सके, यह जीव उसी खेत ॥ 3019 ख

१. हरानन्द-दोहा संख्या 401 से आगे

तव शक्ति से हो रहा, जग में योग प्रसार ।
देव सहायी हैं बने, मुझे भी कर स्वीकार ॥ 3019 ग

जिस जिस को अधिकारी चीना, उस से तुम निज कारज लीना ।
दास बना वह तेरा, स्वामी!, उसे बनाया निज अनुगामी ।
वह तो जीव धन्य बहु नाथ !, निमित्त बना राखा निज साथ ।
[१]दास धन्य तव दण्डी स्वामी, बन चिरकाल रहा अनुगामी ।
[२]मुलखराज को मानें धन्य, तेरा भक्त जो बना अनन्य ।
[३]नारायण दास भक्त ललाम, सिमरत जो तव पग अभिराम ।
मान करें हम उस का नाथ, निज जीवन जिस कीन सनाथ ।
[४]लाला हुक्म चन्द जो आर्य, उस ने भी बहु कीना कार्य ।
अहो भाग्य उस का हे नाथ, कार्य किया जिस मिल तव साथ

(३) मूर्ख करता पाप (3026)

दो॰ ले साथ अधिकारी जन, कीना जग उद्धार ।
मुझ को अवसर दीजिये, कर पाऊं तव कार ॥ 3020 क
विनय दास की श्रवण कर, प्रभु देवें आदेश ।
सेवा में मैं रत रहूँ, जिस भी राखें देश ॥ 3020 ख

हे प्रभो मुझ को अपनाइए, निज सेवा में अब लगाइए ।
बिन सेवा है जीवन जाता, क्षण क्षण दिवस बीतता जाता ।
दिन दिन कर मैं मास बिताऊँ, मास मास कर वर्ष गवाऊँ ।
वर्ष बीतन न लागे देर, उस पाछे फिर सभी अंधेर ।
मेरी विंनती बस यह नाथ, प्रति पल राखें चरण के साथ ।

---

१. दण्डी स्वामी-दोहा संख्या 218 से आगे २. मुलखराज-दोहा संख्या 893 से आगे

३. नारायण दास-दोहा सं॰ 1347 से आगे ४. हुक्म चन्द-दोहा सं॰ 1344 से आगे

क्षण प्रति तव सेव कमाऊँ, वर्ष मास दिन इमि बिताऊँ ।
यह वरदान मुझे मिल पाये, तव सेवा में जीवन जाये ।
जीवन पाछे तेरा साथ, भी छूटे नहीं मेरे नाथ ।

दो॰ मुझे मिले वरदान यह, हे योगेश्वर नाथ ।
इस जीवन पश्चात भी, छूटे न तव साथ ॥ 3021

जो तव आया प्रेम से द्वार, दोनों लोक उस लीन सुधार ।
[१]माला देवी का इतिहास, भूल सके यह किस विध दास ।
उस का सूक्ष्म जभी चलि आया, दिव्य लोक तू उसे भिजाया ।
[२]मुलखराज की पत्नी, देव !, कीनी जिस थी मुलख की सेव ।
उस को भेजा जिस तुम लोक, वर्णों किमि उस का आलोक ।
साधन हीन मैं तो हूँ नाथ, कोई साधन न मेरे साथ ।
कीना मैं कुछ नहीं अभ्यास, मुझ को केवल तेरी आस ।
तीन लोकों में न मैं देखूँ, तुम सम और हितैषी पेखूँ ।
मुझे संभालो हे मम नाथ, राखो मुझे निज चरण के साथ ।

दो॰ निज चरणों की शरण में, रख कर हे भगवान ।
इस 'सेवक' को दीजिये, योग क्षेम का दान ॥ 3022

बस मेरी यही विनय पुकार, निराधार के तुम्हीं आधार ।
मुझे सम्भालो हे मम देव, देकर चरण कमल की सेव ।
पुण्य कर्म इस लोक कमाऊँ, तव सेवा में जन्म लगाऊँ ।
मेरा मन निज चरणि लगावो, मेरी मति निज चरणि टिकावो ।
जन्म पाछे भी होवे वास, तव चरणों में रहे यह दास ।
तुझ बिन कौन करे यह काम, मेरे नाथ तुम्हीं हो राम ।

---

१. माला देवी-दोहा 1381 से आगे २. मुलखराज की पत्नी-दोहा 1126 से आगे

युग युग में तुम ले अवतार, भक्तों का था किया उद्धार ।
कभी तुम एक कला को धार, कभी कर बहु कला स्वीकार ।
इस युग में ले कला अनन्त, तारे तुम ने भक्त बे अन्त ।

दो॰ तुम से तरे अनेक जन, मैं भी तेरा दास ।
नीमानों के मान ! सुन, इस की भी अरदास ।।3023 क
गुणगाथा तव सिमर कर, मेरे मन भी चाव ।
करत रहूँ तव भजन मैं, मग्न हो भक्ति भाव ।।3023 ख
प्रसन्न हों जिस भाव से, जानूँ न मैं सोय ।
भजन करूँ किमि आप का, स्वयं बताओ मोय ।।3023ग

भजन प्रभु मैं किमि कर पाऊँ, एक भी गुण न निज में पाऊँ ।
मधुर वाणी न मधुर स्वभाव, दान पुण्य नहीं भक्ति भाव ।
शुभ कर्मों में रुचि नहीं नाथ, सञ्चित पुण्य भी न कुछ साथ ।
साधु संग से रहूँ मैं दूर, अहं भाव में रह कर चूर ।
माया से मैं करत प्यार, लोभ का भूत है सर स्वार ।
क्रोध पिशाच बसे मन मेरे, काम वास के लागे डेरे ।
मोह के जाल का अति पसार, निकलन का नहीं कोई द्वार ।
पांचों चोरों लीना घेर, प्रभो छुडावो लाओ न देर ।
मुझ को केवल एक ही आस, प्रभु कहाऊँ मैं तेरा दास ।

दो॰ सब ही मुझ को कहत हैं, तू है प्रभु का दास ।
दोष युक्त इस दास को, किमि राखोगे पास ।। 3024

विनय प्रभु मेरी स्वीकारो, मेरे अब तुम दोष निकारो ।
दोष रहित कर के हे देव, दीजो मुझ को चरण की सेव ।
हे मन तू भी सोच विचार, विनय करें प्रभु तभी स्वीकार ।

कर कुसंग का यदि तू त्याग, धर्म के मारग पर जा लाग।
करेगा श्रवण यदि मम बात, बोध मिले तुम को साक्षात।
भ्रांति भयेगी तेरी दूर, उदय भयेगा ज्ञान का नूर।
समता और विचार न्याय, विवेक व नीति का समुदाय।
सब का होगा तू अधिकारी, अगर सुने मम शिक्षा सारी।

दो॰ मेरी शिक्षा श्रवण कर, मिले ज्ञान का सार।
रे मन अब तू ध्यान दे, अवसर बार न बार ॥ 3025 क
अच्छी शिक्षा वह सुने, जो जिज्ञासु मीत।
प्राप्त करे वह बोध को, करे मनन ला चीत ॥ 3025 ख

ज्ञानी जन सुन कर यह सीख, करे आचरण वह कर परीख।
रे मन भूलनी न तू बात, ज्ञान की जननी श्रद्धा तात।
श्रद्धावान पुरुष जो होय, शिक्षा का अधिकारी सोय।
जिस को ईश्वर का भय होय, श्रद्धावान मैं जानूँ सोय।
मूर्ख ईश्वर को नहीं मानें, उस का भय न चित में आनें।
ऐसे जन को मिले न ज्ञान, अंधा सके न देख जहान।
ज्ञान सके वह पा मम मीत, ईश्वर दण्ड से जो भयभीत।
शक्ति ईश्वर की जो जाने, न्यायकारी व उस को माने।
वह तो कर सके नहीं पाप, प्रभु का न्याय वह जाने आप।
मूर्ख पाप करता बिन बोध, दण्ड मिलता तो करता क्रोध।
पश्चाताप न मन में लाये, पापी पाप पुनः कर पाये।

दो॰ ज्ञानवान न पाप करे, मूरख करता पाप।
मूर्ख को नहीं बोध हो, पा कर भी संताप ॥ 3026

(४) प्रभु के नाम बिना सुख नाहिं (3032/5)

हे मन पाप कभी न करना, सुन बात मम चित्त पै धरना ।
बड़ों की बात का कर सन्मान, कुल मर्यादा को ले जान ।
आज्ञा मात पिता की मीत, सर्वोत्तम निज हितकर चीत ।
पापी जन यदि तुझे लुभाये, इस के वश तू कभी न आये ।
लोभी प्रेरे द्रव्य कमाओ, लूट लूट कर घर भर पाओ ।
उस की बात न धरनी चीत, डरो प्रभु के दण्ड से मीत ।
कामी कहे कुकर्म कमाओ, उस की बात में न तुम आओ ।
उस की बात न धरनी चीत, डरो प्रभु के दण्ड से मीत ।
क्रोधी करता मार कुटाई, बनो न संगी उस का भाई ।
कामी क्रोधी लोभी जोय, नाश की ओर प्रेरे सोय ।

दो॰ उन की शिक्षा जो सुने, अथवा करता संग ।
नाश का मार्ग वंह गहे, चढ़े पाप का रंग । 3027 क
अंहकार में डूबकर, सुसीख सुने न नेक ।
उसी घमण्डी पुरुष से, दूर रहे प्रत्येक ॥ 3027 ख
भूल से भी न भूलना, हे मन मेरी बात ।
माया से जो मोह करे, नहीं तव मित्र तात ॥ 3027 ग
काम क्रोध मद लोभ से, रह कर हे मन दूर ।
प्रभु भजन में रहत रत, सो जन साचा सूर ॥ 3027 घ

जो उपदेश कथन में आये, निज भक्तों को प्रभु बतलाये ।
इस मारग पर चलने वारे, रहत सदा सुखी जन सारे ।
उलट इसी से यदि चल पायें, दैहिक दैविक दुख ही आयें ।
नहीं बनता फिर को सहायी, सीख न गुरु की थी सुन पाई ।

जैसा कर्म मनुज कर पावे, काल वही कुछ सन्मुख लावे ।
गुरु उपदेश से होय विमुख, दुरावे कोई न उस का दुख ।
कौन सके दे उस का साथ, उस का भाग्य तो गुरु के हाथ ।
जब तक सन्मार्ग न ग्राहे, तब तक दुख से न बच पाये ।

दो॰ तन मन के जो पाप हैं, तन मन झेलें आप ।
आत्मा के गुरु मीत हैं, उसे बचावें आप ।। 3028

तन से कीने जो जो पाप, उन का तन पाये फल आप ।
जिस अंग से जन करता पाप, उसी अंग का दुःख पाता आप ।
हाथों से जो पाप कमावे, हाथों का दुःख वह जन पावे ।
पैरों से जो करता पाप, उस के पाओं सहें संताप ।
जिन की आँखें किसे दुखावें, वे आँखों के दुख को पावें ।
कानों से जो करता पाप, सुनता निन्दा गुरु की आप ।
सुनता वा चुगली की बात, कान का रोग लगेगा तात ।
करे दांतों से जो अपराध, दांत पायें तब दुख अगाध ।
करता जिह्वा से जो दोष, कटु बचन कहे कर के रोष ।
अप शब्दों को जोय उचारे, जिह्वा के दुख आवें सारे ।

दो॰ जितने तन के अंग हैं, रहें सभी निष्पाप ।
प्रभो बचावो पाप से, हमें डरावें पाप ।। 3029 क
पाप मूल है दुःख का, दुःख चाहे नहीं को ।
बचा रहे जो पाप से, जीव सुखी रहे वो । 3029 ख

प्रभु जी ने है स्पष्ट बताया, शास्त्र वचन है जगत सुनाया ।
अवश्य कर्म का फल जन पावे, जैसा करे वैसा ही पावे ।
शास्त्रोक्त यह नेम है भाई, ईश्वर न्याय टले न राई ।

ईश्वर के जो न्याय को मानें, धर्मी पुरुष वही हम जानें ।
ईश्वर का नहीं जिस को भय, अधर्मी उसी का होता क्षय ।
तन के पाप हैं कीन बखान, मन के भी तुम पाप लो जान ।
उन पापों का फल भयंकर, जलता मन फल उन का पा कर ।
दैहिक ताप की औषध सरल, मानसिक ताप भयंकार गरल (जहर) ।

दो॰ मन से करता पाप जो, जले नरक की आग ।
उसे बचावे न कोई, यही परम दुर्भाग ॥ 3030 क
देह यहां ही मर मिटे, यहीं तक उस का दुख ।
जन्म जन्मान्तर में मन, दे प्राणी को दुःख ॥ 3030 ख

मन का दुख तभी जन पावे, यदि वह मन में पाप कमावे ।
नहीं किसी से वैर कमाओ, द्रोह किसी से मत कर पाओ ।
असत को मन में सत न मानो, सत को ही तुम सत कर जानो ।
ऐसा मन में लोभ न आये, चोरी को जिमि मन ललचाये ।
काम शत्रु है मन का भारी, वश कीनी उस सृष्टी सारी ।
उस से सावधान रह पाये, चक्र चौरासी में न आये ।
माया का जो चक्कर भारी, वृतियां उस में फंसें सारी ।
उस फंदे से मुक्ति दूभर, चैन न मिलता मन को तिल भर (पलभर) ।

दो॰ कथन किये ये पाप कुछ, कर के सूक्ष्म परीख ।
शांति की अभिलाष हो, ग्रहण करो यह सीख ॥ 3031

सुनो और भी कुछ मम मीत, चित्त शुद्धि की सीखो रीत ।
सृष्टि का यही है व्यवहार, करता मलिन है मन संसार ।
मन की शुद्धि नहीं कर पायें, रोगी मन को तभी बनायें ।
तन को तो हम जल से धोयें, प्रभु ध्यान से मन को धोयें ।

भूले न इस बात को कोई, प्रभु भजन से मन शुद्ध होई ।
मन मलिन दुख का आगार, शुद्ध मन हो आनन्द भण्डार ।
नित्य करे जन प्रभु का ध्यान, राखे नहीं मन मलिन सुजान ।
समझ लेवो पर तुम मम मीत, कार्य यह सुगम नहीं मन चीत ।
तन की शुद्धि सुगम है भाई, चित की शुद्धि कठिन कमाई ।
चंचल मन न पकड़ में आये, जीव किमि तब उसे नहलाये ।
क्षण एक में फिसल वह जाये, और न पकड़ में शीघ्र आये ।

दो॰ इस कारण तुम जान लो, चित्त की शुद्धि हेत ।
गुरु की ही तुम शरण लो, दें मन्त्र अभिप्रेत ॥ 3032

हे मन सिमर प्रभु का नाम, जो है सभी सुखों का धाम ।
बिना प्रभु के नाम के भाई, होगी दूर न तव खोटाई ।
चंचलता भी नहीं हो दूर, सदा रहे विक्षिप्त ज़रूर ।
इस कारण तू प्रति क्षण भाई, प्रभु के नाम से कर मिताई ।
प्रभु के नाम बिना सुख नाहीं, डूब मरेगा माया माहीं ।
माया ठगनी है मम मीत, मत करनी तू इस से प्रीत ।
चरण प्रभु में होय बसेरा, प्रभु का नाम रटे मुख तेरा ।
प्रभु किरपा का अमृत पान, मिलता प्रभु से उत्तम दान ।

(५) राम योगेश्वर हैं अवतार (3039/9)

दो॰ दान प्रभु जो करत हैं, उस से कर संतोष
परम सुखी जन होत है, और न उपजत रोष 3033

यह सन्तोष परम सुखदायी, पाप मिटे इस से सब भाई ।
प्रभु बसे इस विध चित्त बीच, भयभीत करे न जन को मीच ।
जिस के मन उपजे संतोष, जानो वह जन सुख का कोष ।

वह जन परम तपस्वी भाई, जिस संतोष में सिद्धि पाई ।
उस का इन्द्रिन पर अधिकार, मन भी वश हो सब प्रकार ।
कभी न वह नर पाप कमावे, दुख न उस के निकट भी आवे ।
सत्पुरुषों का होवे संग, और फिर भक्ति का होय रंग ।
शुद्ध भक्ति से मिलता ज्ञान, भाग्यशाली वह जन पुमान ।

दो॰ ऐसा अवसर तब मिले, प्रभु जब होंय दयाल ।
इस निमाने दास को, भी लें प्रभु संभाल ॥ 3034

मैं चाहूँ रहूँ तव ही दास, प्रभो सुनो पर मम अरदास ।
सभी चाहें मुझ पर अधिकार, वश करते मुझे बहु प्रकार ।
इन्द्रियों ने है घेरा डाला, विषयों का प्रलोभन घाला ।
दे दे लोभ मुझे भरमावें, जैसे तैसे वश कर पावें ।
उन्हें कहूँ "मैं प्रभु का दास", तब करते वे इमि अरदास ।
"हमें हृदय में देवो स्थान, और करो तुम प्रभु का ध्यान ।
हम भी सहचर होंगे तेरे, प्रभु चरणों के हम भी चेरे ।"
करते कपट अनेकों रीत, जिमि उपजे मम चित्त प्रतीत ।

दो॰ मैं प्रभो! निः सहायी हूँ, करूँ यही अरदास ।
अपनी चरणी राखिये, हूँ न और का दास ॥ 3035 क
बचा हुआ हूँ आप का, धर हृदय में रूप ।
'सेवक' को संभालिये, गिरूँ न अघ के कूप ॥ 3035 ख

केवल आप का रूप सहाय, जांनूँ न कोई और उपाय ।
वेद पढ़े नहीं शास्त्र जाने, साधु जन भी नहीं सन्माने ।
उपाय एक भी न कर पाया, जिस से ग्रहण करूँ तव दाया ।
व्रत व तीर्थ नहीं मैं कीने, तपस्या के न साधन चीने ।

कर्मकाण्ड को मूल न जानूँ, ज्ञान की वार्ता न पहचानूँ ।
कीना मैं वैराग्य का त्याग, जप में भी नहीं मन मम लाग ।
काम क्रोध मद लोभ अधीन, कीना मुझे अहंभाव ने दीन ।
मेरा संबल एक ही नाथ, आप की कृपा है मम साथ ।
जिस पै आप हो जांय दयाल, न पाप ताप का वहां सवाल ।

दो॰ मो पर प्रभु दयाल हैं, मैं सब गुण से हीन ।
मुझे भरोसा नाथ का, जिन को प्रिय हैं दीन ॥ 3036 क
मुझ समान को दीन न, तुम सम दीन दयाल ।
इसी भरोसे हूँ पड़ा, भागवंती-सुत लाल ॥ 3036 ख

तुम समान नहीं दीन दयाल, अधम दीन मैं बहु बेहाल ।
मैं पापी तुम हो पापारी, मैं दोषी तुम दोष निवारी ।
मैं अनाथ तुम हो हितकारी, मैं दुखिया तुम हो दुखहारी ।
मेरा तेरा संबंध पुरातन, यह तो इक है प्यार सनातन ।
सुख के प्रभो तुम्हीं हो धाम, हो शरणागत पूरण काम ।
जन्मों का श्रम हरने हारे, खोलो मुक्ति के तुम द्वारे ।
हरते तीन ताप तुम भारे, चल आये जो तेरे द्वारे ।
ऐसे भक्तों के रखवारे, राम लाल हो प्रभु अवतारे

दो॰ राम लाल की शरण में, हूँ मैं आया दास ।
मम विनय स्वीकार कर, स्वीकारें यह दास ॥ 3037

प्रभु चरणों पर मैं बलिहारी, हरते जो विपदा बहु भारी ।
प्रभु देखो इस जन की ओर, निज चरणों में बख्शें ठोर ।
दूसर कोई न आप समान, शरणागत जहां पावे मान ।
प्रभु जी केवल आप का ध्यान, सर्व विघ्नों का करता हान ।

चमत्कार कर भक्तन हेत, ऊसर को करें आप सुखेत
भाग्य विधाता आप हैं नाथ, भाग्यहीन को करें सनाथ ।
भक्ति ज्ञान का बहे स्त्रोत, आत्मबोध का हो उद्योत ।
परमानन्द उसे मिल जाये, तेरी शरणी जो चलि आये ।

दो॰ तेरी शरणी आय जो, पावे परमानन्द ।
अपनावो इस दास को, 'सेवक' अति मतिमन्द ॥ 3038 क
दया प्रभु जी आप की, और आप के कर्म ।
शिक्षा प्रभु जी आप की, सभी धर्म के मर्म ॥ 3038 ख
मेरे मन में हैं गढ़े, स्मरण करूँ दिन रात ।
'सेवक' अपना जान कर, अपनावो जग त्रात ॥ 3038 ग
आप समान न दूसरा, को मिला जग बीच ।
कौन सका हरिराम को, डाल समाधि बीच ॥ 3038 घ
वाम मार्ग के गर्व को, कीना किस ने चूर ।
सत्पथ पर सबन लगाय, भ्रांती कीनी दूर ॥ 3038 ङ

नागों से किस भक्त बचाये, नास्तिक जन किस सत्पथ लाये ।
अनेकों किस थे देह बनाये, दुर्घटना से भक्त बचाये ।
मन्दिर का किस दोष दुराया, प्रेत रुहों को शांत कराया ।
किस मुख से को करे बखान, दिव्य कर्म तुम कीन महान ।
किस अवधूता को था तारा, जस पुर का कुम्हार उबारा ।
सूक्ष्म देह था किस बनाया, बंद गुफा से निकल जो धाया ।
संवाई के किस भक्त तराये, ग्राम्य जन किस गले लगाये ।
ये सब कर्म आप के नाथ, कर स्मरण जन बनत सनाथ ।

दो॰ दिव्य कर्म जो आप ने, कीने इस जग आन ।
सिमर सिमर बहु जनन का, हो रहा कल्याण ॥ 3039 क.

'सेवक' का मन थिर नहीं, चंचलता इस बीच ।
तारे आप अनेक जन, तारो यह भी नीच ॥ 3039 ख
चरण स्पर्श तेरा प्रभु, देता जन को तार ।
स्पर्श चरण का दान कर, कर मेरा उद्धार ॥ 3039 ग

स्पर्शे जिस जिस ने तव चरणा, सुगम भया उस को जग तरणा ।
तव चरणों में है तिलसिम* एक, समाधिस्थ किये जिस जन अनेक ।
किस किस भक्त का करें बखान, प्रभु भक्तों से भरा जहान ।
कलियुग में तव भया है आन, सत युग से बढ़ दीना दान ।
सतयुग त्रेता द्वापर माहिं, योग स्थिति जो देखी नाहीं ।
ऐसा योग तू आ प्रचारा, मिला जिसे तव चरण सहारा ।
आत्मस्थिति को उस जन पाया, भूली उस को जग की माया ।
राम गोपाल को जग ने देख, मुलखराज बंद नेत्र पेख ।
जग ने लीना था चित धार, रामयोगेश्वर हैं अवतार ।

(६) पर-धन देखूं धूल समान (3047)

दो॰ आये राम योगेश्वर, कलियुग में अवतार ।
जिन के चरण स्पर्श से, भक्त लगें भवपार ॥ 3040

आप समान को दूजा नाहीं, जिस की शरणी में जन जाहीं ।
अनंतकला तुम ले जग आये, कौन देव समता कर पाये ।
किस ने भक्तों के भय टारे, चिन्ता से किस दास उबारे ।
शोक में डूबे किस उतराये, मृत्यु से किस दास बचाये ।
अनेकों संशय किस निवारे, मुक्ति के किस खोले द्वारे ।

* तिलसिम-जादू

जीवन की किस खुशी दिखाई, कहां से शांति जन ने पाई ।
जीवन का किस मग दिखलाया, को मम विनय वचन सुन पाया ।
बिनती किस मेरी स्वीकारी, रोग व पीड़ा किस नीवारी ।
जिस ने किये ये सारे काम, वे ही मेरे प्रभु हैं राम ।

दो० राम प्रभु का क्या कहें, वे जग पालन हार ।
विनय उन्हीं से दास की, विनय करें स्वीकार ॥ 3041

भीड़ पड़े कभी जन पे आय, बनें प्रभु तभी स्वयं सहाय ।
आय यदि कभी अज्ञान दवाय, प्रभु से ज्ञान तभी मिल पाये ।
लोभ करे यदि उसे अधीर, प्रभु की दया निवारे पीर ।
काम चलावे यदि निज तीर, प्रभु की शक्ति बंधावे धीर ।
जन को क्रोध देवे संताप, दूर करें प्रभु उस का ताप ।
मोहित करे न जग की माया, सदा भक्त पै प्रभु की दाया ।
अहं का राक्षस यदि दबावे, शक्ति प्रभु की तभी बचावे ।
प्रभु की कृपा दास पहचाने, शब्द नहीं जिमि सभी बखाने ।

दो० प्रभु कृपा इस दास पर, हो रही दिन रात ।
विनय यही अब दास की, रहें सदा साक्षात ॥ 3042 क
क्रोध काम मद लोभ से, जो करते रखवार ।
सर्वेश्वर उन नाथ का, मैं म़ानूँ उपकार ॥ 3042 ख

प्रभु उपकार मैं कथ न पाऊँ, शब्द नहीं जो लिख दिखलाऊँ ।
अनेक बार वे बने सहायी, असंख्य बार मम लाज बचायी ।
प्रतिपल धर्म की दिग दिखलाई, बार कई मम जान बचाई ।
द्रौपदी के जो बने सहायी, उन की किरपा मैं भी पाई ।
हरी राम जिन सिद्ध बनाया, दर्शन उन का मैं भी पाया ।

जिन राम रती के अघ निवारे, मेरे भी उन दोष निकारे ।
जय राम को जिन राखा साथ, "सेवक" माथ पै उन का हाथ ।
बसंती का जिन पुत्र बचाया, उन की "सेवक" पर भी दाया ।

दो॰ प्रभु कृपा नहीं कथ सकूँ, वह तो शब्दातीत ।
पर ब्रह्म भगवान के, पग रज में मम प्रीत ॥ 3043

अहैतुक कृपा प्रभु जी कीनी, निज चरणों में प्रीती दीनी ।
इस का मूल्य मैं किमि चुकाऊँ, क्या वस्तु मैं भेंट में लाऊँ ।
हर इक वस्तु पै उस की छाप, भेंट धरूँ किमि कुछ मैं आप ।
तुम से ही तो सब कुछ पाया, है यह 'सेवक' तुम अपनाया ।
तन मन धन व जीव तुम्हारा, सभी को केवल तव सहारा ।
कौन वस्तु जो रही है शेष, चरण तुम्हारे होवे पेश ।
राखा तुम नहीं कुछ भी शेष, तेरी वस्तु किमि हो तव पेश ।
चरण पड़ा यह जीव जो तेरा, प्रभो कहो 'यह सेवक मेरा' ।
ऐसा कथ इस को अपनाओ, कर के दया चरणि रख पाओ ।

दो॰ अपनाओ इस दास को, चरण पड़ा हूँ देव ।
विनय दास की श्रवण कर, दो चरण की सेव ॥ 3044 क
प्रभो मुझे वरदान दो, करूँ न मैं अभिमान ।
किसी को पीड़ा न मिले, मुझ से हे भगवान ॥ 3044 ख
मन वचन और कर्म मम, होंय सदा निर्दोष ।
जड़ चेतन के कर्म में, देखूँ न कुछ दोष ॥ 3044 ग
दोष देखूँ मैं अपना, नहीं अन्य का दोष ।
सृष्टी सारी ईश की, मुझे लगे निर्दोष ॥ 3044 घ

कर्म ऐसे प्रभो कर पाऊँ, तन मन से न किसे दुखाऊँ ।
मन से सब का हित ही चाहूँ, तन से सेव रूप हो जाऊँ ।
धन दौलत जो तुझ से पाऊँ, सभी जगती के हित लगाऊँ ।
अपना स्वार्थ कभी न देखूं, परस्वार्थ ही सदा उलेखूँ ।
सकल प्राणी सुख को पावें, आयें दुखी सुखी हो जावें ।
'सेवक' की यही विनय पुकार, करिये किरपा हे करतार ।
दोष मेरे न लाइये चित्त, त्यागें न मोहे किसी निमित्त ।
दया बसे मम मन में दयाल, जग का हित चाहूँ बिन सवाल ।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, मेरी विनय पुकार ।
हित सबन का चित्त बसे, करें प्रभो स्वीकार ॥ 3045

विनीत विनय चरणी इक लाया, करो प्रभो सेवक पर दाया ।
सत का मग न भूल से त्यागे, चाहे जान दाँव पै लागे ।
मन में सत को ही स्वीकारे, लेश असत न चित्त में धारे ।
सत द्वारा हो मम मन शुद्ध, निर्मल भी होय मेरी बुद्ध ।
प्राण करें प्रभु तेरा जाप, अहं मिटावें प्रभु जी आप ।
तेरा ही प्रभु सत स्वरूप, अन्तर में रहे मेरे गूप ।
वाणी मेरी सत न त्यागे, मधुर वचन हों सत अनुरागे ।
ये ही दो गुण बखशो नाथ, विनय करूँ मैं जोड़ के हाथ ।

दो॰ मेरी विनय पुकार को, सुनिये हे भगवान ।
मन वचन और कर्म में, हो सत गुण प्रधान ॥ 3046

सत्य बात जो मन में आये, मम मुख वचन वही कह पाये ।
तदनुरूप ही हो मम काम, यह वरदान मैं मांगूँ राम ।
झूट के मग न चालूँ भूल, झूट को जानूँ विषधर शूल ।

सत्य वचन से बाणी शुद्ध, झूट वचन से होय अशुद्ध ।
ऐसी शक्ति दीजिये नाथ, त्यागूँ न कभी सत का पाथ ।
सत ही रहे सदा मम साथ, त्याग करूँ असत्य का पाथ ।
पर बिन किरपा तेरी नाथ, सत्य का मग न लागे हाथ ।
स्वयं बतावें स्वयं चलावें, असत मार्ग से स्वयं बचावें ।

दो॰ रक्षा प्रभु जी कीजिये, करे विनय यह दास ।
सतरूप प्रभु आप में, सदा रहे विश्वास ॥ 3047 क
विनय प्रभु इक और भी, आप करें स्वीकार ।
परधन देखूँ धूल सम, ऐसा व्रत लूँ धार ॥ 3047 ख

(७) मुझे बचाओ हे मम नाथ (3053/10)

पर धन देख न मन ललचावे, उस की ओर न दृष्टि जावे ।
हरन करूँ न किसी का माल, ऐसा व्रत मैं दृढ लूँ धार ।
परायी वस्तु छूना पाप, व्रत यह पाल सकूँ मैं आप ।
माया मुझे न प्रभु लुभाये, चोरी में न मुझे फंसाये ।
चोरी जानूँ नरक द्वार, मेरा प्रभु तुम करो उद्धार ।
माया जाल न मुझे लुभाये, चौरासी में यह न फंसाये ।
बार बार मम विनय पुकार, माया करे न मुझे खवार ।
वही जन माया से बच पाया, जिस पै प्रभु कीनी तुम दाया ।

दो॰ तव किरपा बिन हे प्रभो, मेरा नहीं निस्तार ।
माया रूप पिशाचनी, ग्रस्ती बहु प्रकार ॥ 3048

मेरी इक विनय प्रभु और, मन भटके नहीं ठौर कुठौर ।
विषयों का नहीं हो प्रभाव, शुद्ध रहें मम चित्त के भाव ।

परब्रह्म में राखो लीन, रहे तव चरणों मे यह दीन ।
ब्रह्माकार वृत्ति हो जाय, ब्रह्मचर्य को पाल दिखाय ।
ब्रह्मचर्य का नेम महान, मुझे मिले इस का वरदान ।
निज शरणी यह 'सेवक' जान, ब्रह्मचारी तेरा भगवान ।
ब्रह्मचर्य है योग का मूल, धर्म का है यह खास असूल ।
तुम से शिक्षा यह है पायी, ब्रह्मचर्य की करूँ कमायी ।
ब्रह्मचर्य की सिद्धि नाथ, 'सेवक' की तेरे ही हाथ ।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, रहूँ ब्रह्म में लीन ।
परब्रह्म प्रभु आप हैं, तुझ में रहूँ विलीन ॥ 3049

बिन तुझ मुझे प्रिय कुछ न लागे, तव चरणी मम मन अनुरागे ।
माया जगत की मैं न जोड़ूँ, माया से तो नाता तोड़ूँ ।
संग्रह करूँ न व्यर्थ पदार्थ, जग की माया से क्या स्वार्थ ।
करिये ऐसी बुद्धि प्रदान, विनय मेरी है यह भगवान ।
परिग्रह का कर पूरण त्याग, अपरिग्रह व्रत सकूँ मैं लाग ।
नश्वर से न हो मम प्रीत, अनश्वर में मम लागे चीत ।
नश्वर जग से लूँ मुख मोड़, प्रभो तव चरणि लूँ चित्त जोड़ ।
ऐसी बुद्धि करिये प्रदान, परिग्रही न बनूँ भगवान ।

दो॰ किरपा करिये नाथ जी, सुनिये विनय पुकार ।
पाँच यमों को धार मैं, योग करूँ स्वीकार ॥ 3050
योग करूं स्वीकार मैं, यम नेम लूं पाल ।
प्रभु चरणों की भक्ति मैं, करत रहूँ हर हाल ॥ 3050 ख
विनय यही स्वीकारिये, प्रभु जी होय दयाल ।
दया निधान दया करो, सुधरे जिमि मम हाल ॥ 3050 ग

योग नियम जो आप बतायें, प्रभु जी उन पर मुझे चलायें ।
पाल सकूँ प्रत्येक मैं नेम, मिले मुझे तुझ से जिमि क्षेम ।
पूर्ण शौच का नियम बनाऊँ, तन को सदा शुद्ध रख पाऊँ ।
मन मेरा नहीं होय मलीन, तव कृपा को पाये यह दीन ।
बुद्ध भी मेरी होवे शुद्ध, बनूँ तव कृपा पाय प्रबुद्ध ।
शौच कर्म सदा कर पाऊँ, यौगिक साधन सब अपनाऊँ ।
करें साधन मम तन मन शुद्ध, और उजागर होय मम बुद्ध ।
शुद्ध बुद्ध निरञ्जन-होय जोय, सहज ही मुक्ति पावे सोय ।

दो॰ दयानाथ जी कीजिये, सुनिये विनय पुकार ।
तन मन मेरा शुद्ध हो, और शुद्ध आचार ॥ 3051 क
मम ऐसा व्यवहार हो, सब लोगन के साथ ।
बिक पाऊँ न मैं कभी, क्रोध लोभ के हाथ ॥ 3051 ख

क्रोध मुझे न करे परेशान, करे न लोभ मुझे हैरान ।
जो कुछ प्रभु जी तुझ से पाऊँ, उस में मैं संतुष्ट रह जाऊँ ।
शुकर करूँ मैं सदा तुम्हार, अखिल विश्व का जो दातार ।
घीघने यदि तुम दे पाओ, अथवा सूखे चने चबाओ ।
भूखा भी न क्यों रह पाऊँ, तेरा शुकर ही सदा मनाऊँ ।
संतोष से सुख बड़ा न मानूँ, तव इछा सर्वोत्तम जानूँ ।
ऐश्वर्य निरख न मन ललचाये, धन का लोभ न जन कर पाये ।
सुख आये अहंकार न आये, दुख आये पर पाप न आये ।

दो॰ निर्मल मन ऐसा भये, तव चरणी विश्वास ।
सभी अवस्था में रहे, प्रभु मुझे हर श्वास ॥ 3052 क
प्रभु भजे हर श्वास यह, धैर्य न छोड़े लेश ।
दृढ़ से दृढ़तर चित्त में, श्रद्धा बढ़े हमेश ॥ 3052 ख

जो कुछ जीवन में मिले, किरपा का फल सोय ।
बिन किरपा न चाहूँ कुछ, यही नेम मम होय ॥ 3052 ग

माया करे न मन परेशान, चित्त बसो तुम ही भगवान ।
माया से चित्त होय विमुख, तेरे ध्यान में माने सुख ।
मम विनय प्रभु कर स्वीकार, मिले संतोष का धन अपार ।
तोष से मन जब हो भरपूर, जग का धन तब लागे धूर ।
जग की धूर न चित्त में आये, निर्मलता ही उस में छाये ।
ऐसी करिये मुझ पै दाय, गुण संतोष का मुझ में आय ।
ऐसी मेरी विनय है नाथ, यह गुण दे कर करो सनाथ ।
धन दौलत का ना अभिलाषी, चाहूँ न रत्नों की मैं राशि ।
यश की भी है नहीं अभिलाष, स्वर्ग की भी है मुझे न आश ।
मेरी बस यह विनय पुकार, रहूँ संतोषी हर प्रकार ।

दो॰ वर यही प्रभो दीजिये, माया से रह दूर ।
चित्त बसे संतोष मम, विनय करो मंजूर ॥ 3053 क
विनय करो मंजूर मम, लोभ न आये चित्त ।
जिस भी हालत में रहूँ, समझूँ वही निज हित ॥ 3053 ख

जिस हालत में राखो नाथ, निज किरपा का दे कर हाथ ।
उसी हाल में रहूँ संतुष्ट, लुभा सके न लोभ यह दुष्ट ।
मुझे लोभ ने बहु भरमाया, सब से प्रबल लोभ की माया ।
लोभ से ही काम है जाया, क्रोध लोभ से ही उपजाया ।
लोभ ही जन को मोह में डाल, बना अभिमानी करत खवार ।
लोभ की लतिका बड़ी विशाल, यह छायी त्रिलोक त्रिकाल ।
घनी से घनितर होती जाय, लाभ लोभ को सदा बढ़ाय ।

लोभ के वशीभूत संसार, बचा न इस से को नर नार ।
इस के देव भी हैं अधीन, मैं किस गिनती में हूँ दीन ।
मुझे बचावो हे मम नाथ, रक्षक बन पसारिये हाथ ।

(८) दृढ़ करो प्रभो ध्यान मम (3061)

दो॰ दया करें प्रभु आप ही, निः सहाय यह दास ।
श्रवण करें अब नाथ जी, "सेवक" की अरदास ॥ 3054 क
सर्वोत्तम संतोष धन, मिलता जब भगवान ।
अन्य धन सभी तब लगें, मुझ को धूल समान ॥ 3054 ख

लोभ दुरा संतोष दिलाओं, यह विनय प्रभु जी सुन पाओ ।
किस के करूँ मैं और निहोर, अन्य न तीन काल हितु मोर ।
तुझ समान दाता को देव, पूरण काम करे बिन सेव ।
लीना संकट ने जब घेर, आप बहुड़े लायी न देर ।
मुझे लोभ से प्रभो बचाओ, इस मन को संतोष दिलाओ ।
संपत देख न यह ललचाये, दैवी संपत ही यह चाहे ।*
दैवी संपत की हो चाह, धन दौलत की न हो परवाह ।
धन दौलत नहीं मांगूँ नाथ, दैवी संपत सदा हो साथ ।

दो॰ दैवी संपत दीजिये, विनय करूँ मैं खोल ।
*नव दश गुण मुझ में रहें, कथन करूँ बिन बोल ॥ 3055

---

* दैवी संपत-गीता XVI 1-5:-
(1) निर्भयता (2) अन्तः करण की शुद्धि (3) ध्यान योग की दृढ़ स्थिति (4) सात्विक दान में प्रवृति (5) इन्द्रिय संयम (6) यज्ञ (पूजा आदि) (7) स्वाध्याय (8) तप (9) सरल स्वभाव और व्यवहार (10) अहिंसा (11) सत्य (12) अक्रोध (13) त्याग (14) तेज = वह शक्ति जिस के प्रभाव से सन्मुख आने पर विषयासक्त और नीच प्रवृति वाले मनुष्य भी प्राय : अन्यायाचरण से रुक कर श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं । (15) क्षमा (16) धैर्य धृति (17) शौच (18) अद्रोह-किसी से शत्रु भाव न होना । (19) नातिमानिता (अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव।)

---

* नव दश गुण-अर्थात उपर्युक्त दैवी संपत के उन्नीस गुण, निर्भयता आदि ।

अहिंसा जीवन का हो नेम, सत्य से ही हो मेरा प्रेम ।
मेरा हो अक्रोध स्वभाव, त्याग का जीवन पर प्रभाव ।
तेज भरो मुझ में प्रभु ऐसा, बने दुष्ट भी धर्मी जैसा ।
क्षमा शील मैं प्रभु बन पाऊँ, धैर्य गहूँ मैं दृढ़ हो जाऊँ ।
तन मन मेरा सदा हो शुद्ध, शुद्ध प्रभो ! हो मेरी बुद्ध ।
शत्रुता नहीं किसी निमित्त, सभी से मित्रता मम चित्त ।
मन में न अंहकार समाये, मान रहित यह मन रह पाये ।
मेरा जीवन होय निर्भय, मेरे पाप सभी होंय क्षय ।
किसी भी दिशा से होय न भय, हर दिक से मैं रहूं निर्भय ।
पूर्व व पश्चिम उत्तर जानूँ, दखन में निज मीत पहचानूँ ।
आकाश व पाताल के जीव, जहां तलक सृष्टि की सीव ।
मेरा शत्रु होय न कोई, हर प्राणी मम मित्र होई ।

दो० निर्भय मुझ को कीजिये, इस त्रिलोकी मांझ ।
प्रभु सिमरूँ मैं प्रेम से, नित्य प्रात : सांझ ॥ 3056 क
नित्य प्रातः सांझ मैं, ध्यान धरूँ मन लाय ।
किरपा मुझ पर कीजिये, हे प्रभो ! सुख दाय ॥ 3056 ख
मम विनय स्वीकारिये, दीना नाथ दयाल ।
अन्तकरण हो शुद्ध मम, भजन करूँ सब काल ॥ 3056 ग

तेरा ध्यान धरूँ सब काल, तेरा नाम जपूँ हर हाल ।
पूजा तेरी करूँ प्रति पल, निरखूँ रूप तेरा सब थल ।
तेरी महिमा का आभास, प्रभो ! पाऊँ मैं हर इक श्वास ।
तेरे दर का बनूं भिखारी, विनय यही मेरी अघहारी ।
तुझे त्याग मन कहीं न जाये, मुख मेरा गुण तेरे गाये ।

मेरी बुद्धि में रम जाओ, अपना ज्ञान मुझे दे पाओ ।
मेरा ध्यान बनाइये दृढ़, विश्वास मेरा भी हो सुदृढ़ ।
मेरी विनय यही है नाथ, दैवी संपत लागे हाथ ।

दो॰ दैवी संपत पाय कर, योग करूँ मन लाय ।
दैवी संपत के बिना, परिश्रम निष्फल जाय ॥ 3057

तेरी किरपा से भगवान, बने सदा दृढ़ मेरा ध्यान ।
मन मेरा अति चंचल नाथ, पकड़ आये न मेरे हाथ ।
कर कर यत्न तो मैं हूँ हारा, तेरा मिला अब प्रभु सहारा ।
अब तो वश यह मन आ जाये, दृढ़ ध्यान में वह टिक पाये ।
अपनी चंचलता दे त्याग, तव पग में वह कर अनुराग ।
तव पग शांति का मुख्य धाम, किसे न मिला है यहां विश्राम ।
हरणाम दास इस पग को पा, उस लीन तपस्या का फल पा ।
उसे मिली तब शांति ऐसी, शब्द सकें न कथ जिस जैसी ।

दो॰ चित्त हरणाम दास का, स्थिर भया जिस काल ।
* प्रभु किरपा पहचान कर, मुख खोला तत्काल ॥ 3058 क
* रामरती का स्थिर किया, इक पल में तुम चित्त ।
मेरे चित्त को भी स्थिर, करिये किसी निमित्त ॥ 3058 ख

और सुनो प्रभु मेरी बात, विनय मेरी यह है नत गात ।
परोपकार में बीते काल, स्वार्थ की नहीं चालूँ चाल ।
दान पुण्य में होय प्रवृत्ति, ऐसी बने प्रभु मेरी वृत्ति ।

---

* हरणाम दास साधु ने वर्षों से सिद्धि हेतु मौन व्रत धारण कर रखा था । परन्तु जब श्री प्रभु जी की कृपा होने पर उस का चित्त स्थिर हो गया तब उस ने मौन व्रत का परित्याग कर दिया । देखें-दोहा संख्या 353 से आगे ।

* देखो दोहा संख्या 367 से आगे ।

सत्विक दान करूँ सब काल, सत्पात्र को मैं करूँ निहाल ।
कुपात्र को नहीं देवूँ दान, ऐसा मिले प्रभु मुझ को ज्ञान ।
तन मन धन जो प्रभु यह मेरा, लागे मुझे सभी यह तेरा ।
इन को जनहित्त में ही अर्पूं, तव जीवों की सेव समर्पूं ।
अहंभाव न चित्त मम आये, सब तव सेवा में लग पाये ।

दो॰ प्रभु जी जो कुछ तुम दिया, व्यय हो ऐसी रीत ।
दान पुण्य में कर रमे, मन रमे तव प्रीत ॥ 3059 क
विनय यही स्वीकारिये, स्वार्थ से रहूँ दूर ।
परहित में तन मन लगे, स्पर्श न करे गरूर ॥ 3059 ख

इक विनय मैं और कर पाऊं, निज तन संयम में प्रभु लाऊँ ।
मम दृष्टि देखे तव ही रूप, चित्त भीतर भी तव स्वरूप ।
श्रवण सुनें तव ही गुणगान, अथवा तव उपदेश महान ।
रसना रस भजनों का लेवे, मम कर चरणकमल तव सेवे ।
मम पग की हो एक ही चाह, तव दर आय जहां सुख अथाह ।
श्वास प्रश्वास जपे तव नाम, कण्ठ में ध्वनि वही अभिराम ।
इडा पिंगला गुण तव गायें, प्राण सुषुम्ना में चलि जायें ।
कुण्डली इमि चेत में आये, द्वार दशम में वह चढ़ पाये ।

दो॰ द्वार दशम ले जाय कर, राखूँ वहीं टिकाय ।
कुण्डली संग ध्यान मम, तव चरणि टिक पाय ॥ 3060

दीन दयाल विनय मम सोय, प्राणों पर मम संयम होय ।
हृदय को मम प्राण चलाये, जठराग्नि को समान बढ़ाये ।
अपान करे मम मल का शोध, व्यान से स्पर्श का होय बोध ।
राखे जीव उदान संभार, मानव देह का जो आधार ।
विनय करो प्रभु मम स्वीकार, प्राण जो शक्ति का आधार ।

मेरे मन के रह वशीभूत, कर्म करे सभी तन के सूत।
बुद्धि भी प्रभो दीजो ऐसी, मन पर होय प्रभावी जैसी।
बुद्धि को मिले तुझ से ज्ञान, हर दम करे जो तेरा ध्यान।

दो॰ दृढ़ करो प्रभो ध्यान मम, निज चरणों के बीच।
मम विनय स्वीकारिये, उबरे 'सेवक' नीच ॥ 3061 क
दस इन्द्री इस दास की, मन बुद्धि भी साथ।
संयम में ये हों सभी, 'सेवक' भये सनाथ ॥ 3061 ख

मेरी विनय सुनिये मम नाथ, कर स्वीकार करो सनाथ।
मेरा जीवन हो यज्ञ रूप, यज्ञेश्वर हो तव स्वरूप।
आप के अर्चन ही प्रभु हेत, कर्म सकल करूँ ध्यान समेत।
कर्म करूँ सभी तव निमित्त, अर्पूं चरणी तन और चित्त।
मेरा तन मन तेरे अर्पण, "इदं न मम" कथ करूँ समर्पण।
तव रूप यह जगत है सारा, यज्ञ मण्डप संसार हमारा।
श्रम निज की मैं डाल आहूति, यहां पसारूँ गंध संभूति।
मधुर वचन हो साम संगीत, सत्य वचन मम यजुर की रीत।

(९) मैं जानूँ निज मन का हाल (3069/9)

दो॰ ऐसी बुद्धि दीजिये, आहुत कर दूँ प्राण।
यज्ञेश्वर के सामने, स्थित हो योग ध्यान ॥ 3062

इक विनय प्रभु और हमारी, स्वीकारो तुम हे असुरारी।
जीवन के प्रतिपल में देव, स्वाध्याय निरत रहूँ तव सेव।
तेरे ग्रँथ का कर के पाठ, व्यतीत करूँ मैं पहर जो आठ।
तेरे कर्म तेरे उपदेश, ज्ञान के सभी संकेत विशेष।
तेरे ग्रंथ बतलावें खोल, ज्ञान विज्ञान का भेद अडोल।

परिवारिक नीति का उपदेश, सभी समाजिक कर्म विशेष ।
जन गण का व्यवहार आचार, राजनीति का खोल के सार ।
कृष्ण चन्द्र जो गीता गाई, युद्ध नीति जो उस अपनाई ।
पतंजलि लिखे जो सूत्र योग, पढ़ें ध्यान से जिन को लोग ।
जो गुरु शिष्य का दिव्य संबंध, वेदों में जिमि मिले निबंध ।

दो॰ दिव्य रामायण में लिखि, सारी शिक्षा देव ।
पालन उस का कर सकूँ, और लगूँ तव सेव ॥ 3063 क
विद्याधन तुम ने दिया, स्वाध्याय के हेत ।
पढ़ सुन कर उस पर चलूँ, रह कर सदा सचेत ॥ 3063 ख

पाठ करूँ प्रभु नित्य प्रात, पाठ करूँ प्रभु बैठ के रात ।
पाठ करूँ प्रभु सब केसंग, पाठ करूँ एकांत निसंग ।
पाठ करूँ मैं होय विभोर, मिले पाठ में दर्शन तोर ।
मन पाठ में लीन हो सारा, ग्रहण करूँ उपदेश तुम्हारा ।
पढ़ूँ पाठ में जो मम नाथ, करूँ आचरण विश्व के नाथ ।
कृपा आप की ऐसी चाहूँ, विनय आप से यह कर पाऊँ ।
मम आचरण बनाओ शुद्ध, सुधरे मेरी तन मन बुद्ध ।
तव कृपा बिन न बनेगा काम, स्वीकार विनय हो मेरी राम ।

दो॰ मम विनय स्वीकारिये, मांगूँ बारं बार ।
मन वचन और कर्म मम, लें तव शिक्षा धार ॥ 3064 क
तेरी शिक्षा से प्रभो, हो मेरा कल्याण ।
तेरे वचनों पर चलूँ, माँगू यह ही दान ॥ 3064 ख
पढ़ सुन कर यदि हे प्रभो, चलूँ न उस पै देव ।
नहीं पाप से बच सकूँ, देवों के अधिदेव ॥ 3064 ग

जीवन अपना तप में घालूँ, अपने मन के खोट निकालूँ ।
इन्द्रिय संयम मैं कर पाऊँ, वासना के न वश में आऊँ ।
रसना का नहीं रस लुभाये, दृष्टि दोष मुक्त हो जाये ।
कान का रस न करे हैरान, कृत्रिम गंध न चाहे घ्रान ।
पांव चालें नहीं पथ कुपथ, वाणी सके न असत्य को कथ ।
हाथों से न अधर्म कमाऊँ, सदाचार को लक्ष्य बनाऊँ ।
मात पिता गुरु जन की सेव, यही धर्म हो मेरा देव ।
इस सेव में श्रम नहीं मानूँ, मुख्य कर्म निज का मैं जानूँ ।
इस विध तप में बीते काल, विनय करूँ प्रभु करो संभाल ।

दो० मम विनय स्वीकारिये, तप में बीते काल ।
जीवन यात्रा सफल हो, करिये दया दयाल ॥ 3065

तप इस जीवन का आधार, तप ही जगती का आधार ।
तप ही धर्म कर्म का मूल, सुकर्मों का तप मुख्य असूल ।
तप से भगीरथ लाया गंग, तप से ज्ञान की बहती गंग ।
तप से राम रावण संहारा, तप से कृष्णा ने कंस पछाड़ा ।
तप से वृत्रासुर को जीत, भये निर्भय सब देव सभीत ।
तप से त्रिपुर का कर संहार, जग का कीना शिव उद्धार ।
प्रभु जगती में योग पसारा, तप का ही उन लीन सहारा ।
तप का मार्ग मुलख अपनाया, विश्व सकल में योग फैलाया ।

दो० सकल विश्व में हो गया, योग धर्म प्रचार ।
राम प्रभु ने यह किया, कर तप को स्वीकार ॥ 3066

मैं भी विनय यही कर पाऊँ, तप में जीवन सकल बिताऊँ ।
ऐसा तप जो जग हित होय, जग में योग फैलावे जोय ।

समर्थ मुझे प्रभु इमि बनावें, यम का पालन नित्य करावें ।
नियमों पर भी मुझे चलावें, मुद्रा प्राणायाम सिखावें ।
लगाऊँ आसन सांझ प्रात, करूँ ध्यान मैं तव साक्षात ।
ऐसा तप कर सकूँ मैं देव, मिलें समाधि में सभी देव ।
और मिले तुझ से वह ज्ञान, ऋतंभर जिस का है अभिधान ।
तप करूँ मैं ज्ञान के हेत, मोक्ष लाभ ही हो अभिप्रेत ।

दो॰ ऐसा तप मैं कर सकूँ, मुक्ति जिस का लक्ष्य ।
अपनी चरणी राखिये, सेवा के उपलक्ष्य ॥ 3067 क
दैवी संपत पाय कर, हो मम उत्तम भाव ।
मम सरल व्यवहार हो, सरल मेरा स्वभाव ॥ 3067 ख

जीवन का मम हो इक लक्ष्य, विनय करूँ यही तव समक्ष्य ।
सिरफ मेरी है यही पुकार, मिले तव चरणों का आधार ।
भक्ति तेरी में बीते काल, दया ऐसी तुम करो दयाल ।
मन माया में रमे न लेश, तव चिंतन में रहे हमेश ।
हर इक मेरा श्वास हो राम, जपता रहे बस तेरा नाम ।
एक भी क्षण न ऐसा जाये, जब तुम्हें मम मन विसराये ।
तेरी पूजा तेरा जाप, ध्यान भजन संगीत आलाप ।
तेरे ग्रंथों का मैं पाठ, करता रहूँ पहर मैं आठ ।

दो॰ भजन पाठ में हे प्रभो, बीते मेरा काल ।
काटो जग जंजाल को, यह विनय राम लाल ॥ 3068

यह विनय मम प्रभो स्वीकारो, इस 'सेवक' की ओर निहारो ।
दया की दृष्टि अपनी डाल, करो 'सेवक' को प्रभो निहाल ।
कांच से कांचन जन हो जाय, दया दृष्टि यदि प्रभु की पाय ।

चरण प्रभु के सुख के मूल, बेद शास्त्र कथें यही असूल ।
त्रिकाल किसी भी सुख न पाया, विमुख प्रभु से जो रह पाया ।
भक्ति बिना नहीं विपत्ति नाश, सभी ऋषियों का यह विश्वास ।
उसी भक्ति का भिक्षुक दास, दृढ़ करो प्रभो मम विश्वास ।
इक पल भी तव पग न त्यागूँ, आजीवन इस मग पै लागूँ ।

दो॰ आजीवन सिमरन करूँ, आजीवन रह दास ।
आजीवन तव जन रहूँ, यह मेरी अरदास ॥ 3069

मेरा मन विश्वास न माने, रहत सदा विषय रस साने ।
विषयों के यह पाछे धावे, इन्द्रिन का यह दास कहावे ।
यद्यपि दुःख घनेरे पावे, विषय संग न त्याग दिखावे ।
करिये ऐसी किरपा देव, त्याग विषय ले तुझ को सेव ।
रहे निरन्तर संग तुम्हारे, तुम भी प्रभो ! न होना न्यारे ।
रहे जगत में जग से न्यारा, तव चरणों का गहे सहारा ।
मेरा प्रभो न और सहारा, तव चरण का मिला आधारा ।
मन वच कर्म से हिं गही टेक, तव चरणों की ही प्रभु एक ।
मैं जानूँ निज मन का हाल, लोभ ने इस को कीन बेहाल ।

(१०) दान मोक्ष का दीजिये (3076)

दो॰ चित्त लोभ के वश भया, स्थिर भये न लेश ।
विनय दास की एक यह, किरपा करें विशेष ॥ 3070 क
कामादी जो शत्रु हैं, करें न वे प्रहार ।
तव चरणों में वास हो, मेरा हर प्रकार ॥ 3070 ख

काम शत्रु से मुझे बचाओ, क्रोध रिपु से मुझे छुड़ाओ ।
लोभ के बन्धन में न आऊँ, मोह गर्त से निकल दिखाऊँ ।

'अहं' से राखो मुझ को दूर, ग्रहण करूँ तव पग की धूर ।
मम विनय प्रभु है तुम पाहिं, क्रोध करूँ न किसी के ताहिं ।
बुरा भला को कुछ कह पाये, क्रोध मेरे न मन में आये ।
ऐसी बात भी न कथ पाऊँ, क्रोध किसी के चित्त जगाऊँ ।
क्रुद्ध यदि हो कोई नर नार, शांत करूँ प्रिय वचन उचार ।
इमि क्रोध का दानव नाथ, नष्ट भये हम बनें सनाथ ।

दो॰ क्रोध का प्रतिकार जोय, त्रिविध मेरे नाथ ।
*पालन इस का कर सकूँ, मिले सिद्धि इक साथ ॥ 3071 क
काम क्रोध अहंकार, लोभ मोह कर शांत ।
तव चरणों का ध्यान हम, बैठ करें एकांत ॥ 3071 ख

हे नाथ मम चित्त यह आये, जीवन मेरा किमि चलि पाये ।
मुझे अहं का है घुन लागा, अहंकार में सदा हि पागा ।
अहं करे सभी गुणों का क्षय, चित्त भये नहीं तुझ में लय ।
माया में ही मन रम पावे, कामादि न त्याग दिखलावे ।
तीन गुणों का मनहिं बसेरा, अहं से बचा न गुण को मेरा ।
धर्म कर्म जो भी हो पाये, अहं भाव भी संग हि आये ।
थोड़ी विद्या जो पढ़ पाऊँ, कर गर्व विद्वान कहलाऊँ ।
विद्या से जन विनय को पाय, मुझ में तो अहंकार हि लाय ।

दो॰ जिस विद्या को पाय जन, विनय शील हो नाथ ।
वह यहां अहंकार को, लाती है निज साथ ॥ 3072

---

* क्रोध के प्रतिकारार्थ तीन उपाय :-
(1) किसी के द्वारा झूठा कलंक लगाये जाने पर भी क्रोध न करना ।
(2) क्रोध दिलाने वाली बातें न कहनीं ।
(3) क्रोध में आये हुए मनुष्य को शांत करना ।

अहंभाव से मुझे बचाना, गर्व न मेरे मन में लाना ।
धन पाय नहीं आय गरूर, दोषों से प्रभो राखो दूर ।
करूँ न वित्त का कभी गरूर, धन के मद से रहूँ मैं दूर ।
तेरे न्याय से रहूँ सतर्क, चित्त मेरा न त्यागे तर्क ।
सुना है प्रभु मैं तेरा न्याय, जो विद्वान गर्व में आय ।
त्याग देह जब यहां से जाय, महामूर्ख की वह योनि पाय ।
धन का करे जो गर्व पुमान, मर कर जाय जब अन्य जहान ।
महा दरिद्र होय वह दीन, धन मद करत है सबन मलीन ।
प्रभो मेरी है विनय पुकार, दूर रहे मद हर प्रकार ।

दो॰ मम विनय स्वीकार हो, मद से राखो दूर ।
विद्या अथवा वित्त का, हो न कभी गरूर ॥ 3073 क
मेरा मन बलवान हो, करूँ न बल का मान ।
तव चरणों का दास ही, मैं रहूँ बिन मान ॥ 3073 ख

बल का करता है जो मान, मर कर जाय वह जब पुमान ।
दुर्बल देह उसे मिल जाये, रोग ग्रस्त सदा रह पाये ।
अहंकारी मैं न बन पाऊं, अकिंचन रह तव चरण ध्याऊँ ।
इस जग में मैं रहूँ सुखारी, जन्मान्तर भी न बनूँ दुखारी ।
इस विध लोभ काम जो पापी, मोहादी जो जगत व्यापी ।
मेरे सुख का करें न नाश, हो तव चरण में दृढ़ विश्वास ।
जिधर प्रभो हो तव इस्थान, पग मम करें उधर प्रस्थान ।
मन में धार के तेरा रूप, ध्यान मग्न सदा रहूँ गूप ।

दो॰ ध्यान तेरा हि चित्त में, सदा रहे मम नाथ ।
यह विनय स्वीकारिये, दीन जनों के नाथ ॥ 3074

सुना सदा है जग से नाथ, दीनों के तुम रहते साथ ।
मैं हूँ दीन तुम दीन दयाल, सुलझ गया अब कठिन सवाल ।
हमारा तुमरा नात अटूट, तव चरण सकेंगे न अब छूट ।
यह तो साक्षी है इतिहास, दीनों के तुम रहते साथ ।
1. *ब्राह्मण का तुम पुत्र बचाया, शूली से था उसे छुडाया ।
2. *नाग जाति से भक्त बचाये, बलि देने को जो थे लाये ।
3. *कीना भक्तों का था त्राण, हस्ति आये जब लेने प्राण ।
4. *भूल सकें नहीं वह इतिहास, मारवाड़ जो कीना खास ।

दो॰ मारवाड़ प्रदेश में, रहे हरि के साथ ।
नास्तिक कीने आस्तिक, कीना नगर सनाथ ।। 3075 क

कटर विरोधी धर्म के, धार्मिक भये विशेष ।
मन्दिर का निर्माण कर, भये हरी के पेश ।। 3075 ख

इस विध 'सेवक' दीन के, भी सहायक होय ।
विनय दास की श्रवण कर, सुखी करें प्रभु मोय ।। 3075 ग

इस दीन से नात अटूट, त्रिकाल सके न संग यह छूट ।
आदि काल से चलि यह आया, इस में भ्रांति की नहीं छाया ।
इसी नात का करूँ निहोरा, प्रभु से दान मांगू न थोरा ।
प्रभु देने में सभी समर्थ, समझा मैं इस भेद का अर्थ ।
जो मागूँ सब कुछ मिल पाये, क्यों दास संकोच मन लाये ।
प्रभो अब मोहे दीजो दान, पूर्णकाम करिये भगवान ।

---

1. * देखो दोहा संख्या 328 से आगे ।
2. * देखो दोहा संख्या 486 से आगे ।
3. * देखो दोहा संख्या 508 से आगे ।
4. * देखो दोहा संख्या 402 से आगे ।

विनय मेरी कर के स्वीकार, दान मोक्ष का दो करतार।
तुम से हि जन दान यह पावे, अन्य दाता न को दिख पावे।

दो॰ दान मोक्ष का दीजिये, विनय करो स्वीकार।
चौरासी के फेर से, हूँ दुखी करतार ॥ 3076 क
* तीन ताप संसार के, मुझे सताते नाथ।
भौतिक तापों से दुखी, मैं भया इक हाथ ॥ 3076 ख
दैवी ताप भी हे प्रभो, छोड़ें न संग मोर।
ताप अध्यात्मिक जानूँ, देंय विछोड़ा तोर ॥ 3076 ग
ताप त्रय के कारणे, रहूँ दुखी हर काल।
वश में इन के हूँ पड़ा, छूट सकूँ न दयाल ॥ 3076 घ

भौतिक ताप दें तन को पीड, पड़ें अनेकों क्षण क्षण भीड़।
एक दुराऊँ दूजी पाऊँ, इसी चक्र में पिसता जाऊँ।
सुने न मेरी कोई पुकार, किसे पुकारूँ मैं करतार।
किसे बताऊँ अपनी पीड़, किसे दिखाऊँ पड़ी जो भीड़।
अपमा दुख है सभी के पास, अन्य को क्या दे को आश्वास।
मैं तो तुझे पुकारूँ नाथ, विनय सुनो और करो सनाथ।
गिरा दुखों के अंध मैं कूप, सुख की जहां पे लेश न धूप।
कब तक रहूँगा इस में ग्रस्त, प्रभो बढ़ाइये अपना हस्त।

दो॰ किरपा के निज हाथ को, प्रभो बढ़ा कर आप।
दूर करो संताप मम, मम विसार के पाप ॥ 3077 क

---

* भौतिक ताप = शारीरिक दुख रोग आदि
दैविक ताप = मानसिक दुख चिन्ता आदि
आध्यात्मिक ताप = आत्मा का जन्म मरण का चक्र

हूँ पड़ा मँझधार में, पापों के प्रभाव ।
विनय प्रभो स्वीकारिये, चरण बढ़ावो नाव ॥ 3077 ख

बिना आप के को दुख टारे, मंझधार से कौन निकारे ।
विनय दास की को स्वीकारे, दूर करे को अघ बहु भारे ।
आये शरणी हैं हम सारे, हैं सभी हम दास तुम्हारे ।
पाप कर्म ने दुख में डारे, प्रभु बचाओ लाओ किनारे ।
अपने कर्म हि हैं हत्यारे, तेरे बैठे प्रभो सहारे ।
तुम हो रक्षक नाथ हमारे, मात पिता धन बल बहु भारे ।
किस विधी गुण गायें तिहारे, शारद नारद भी हैं हारे ।
'नेति नेति' कह वेद पुकारे, विनय सुनो मम प्रभु प्यारे

(११) दृढ़ हो मम विश्वास (3079)

दो॰ विनय करूँ मैं नाथ जी, तुम करनी स्वीकार ।
भौतिक ताप प्रबल बहु, हो उन से निस्तार ॥ 3078 क
दैविक भी प्रभु ताप हैं, मन को देते खेद ।
कैसे उन से बच सकूँ, तुम ही जानो भेद ॥ 3078 ख

चित्त को करते हैं ये खिन्न, ये तो दुख ही है प्रभु भिन्न ।
इस दुख को जन सके न देख, इस की औषध सके को लेख ।
यह तो अन्तकरण का रोग, इसे सकूँ नहीं मैं प्रभु भोग ।
इस की औषध तेरे पास, मिले उसे जिस चित्त विश्वास ।
देना मुझे प्रभु भक्ति दान, मेरा हो इस दुख से त्राण ।
हैं इस रोग के रूप अनेक, इस का कारण भी नहीं एक ।
रोग करे चित्त पर आघात, बुद्धि पर भी इसी का घात ।
विनय मेरी प्रभु हो स्वीकार, दैविक ताप से हो उद्धार ।

दो॰ ऐसी भक्ति दीजिये, दृढ़ हो मम विश्वास ।
आधी दैविक ताप से, मुक्त करो यह दास ॥ 3079

चिन्ता जो जन के मन आवे, मति में भ्रांति जो रह पावे ।
'सेवक' को उन से दो त्राण, यही विनय इस की भगवान ।
जो भूत अभिमान का भारी, जब प्रहार करे भयकारी ।
उस से इस को तभी बचाना, तीव्र ताप से इसे छुड़ाना ।
दैविक ताप का अन्तर वास, करत दुखी जो हर इक श्वास ।
उसी ताप से प्रभो बचावो, विनती 'सेवक' की सुन पावो ।
नहीं दास का और सहारा, इसे मिला बस तेरा द्वारा ।
इस द्वार से रिक्त न जाऊँ, बार-बार विनती कर पाऊँ ।

दो॰ तेरे दर पै आय कर, खाली मुड़ा न कोय ।
यही आस 'सेवक' लिये, करत विनय है तोय ॥ 3080

और इक विनय करो मंजूर, आत्मिक ताप भी कर दो दूर ।
जीवात्मा तव चरणि समाये, भटक चौरासी में न पाये ।
मानव देह तुम दे कर नाथ, तुछ इस जीव को कीन सनाथ ।
भूल गया पर तव उपकार, करे मनमानी सब प्रकार ।
आत्म रूप इस दीना भूल, याद रहा निज रूप न मूल ।
जगत के मोह रहा भुलाना, गुरु का भी इस कहा न माना ।
इसे मन मानी करत खवार, किमि तरे भवसागर पार ।
माया के यह मोह भुलाना, मुक्ति का नहीं मार्ग जाना ।

दो॰ अब मेरी अरदास है, और विनय पुकार ।
माया के फंद काट कर, पाऊँ मोक्ष द्वार ॥ 3081 क
अज्ञान के आवरण ने, आवृत कीन ज्ञान ।
विनती मेरी है प्रभो, दूर करो अज्ञान ॥ 3081 ख

दूर करो प्रभो मम अज्ञान, ऐसा दीजो मुझ को दान ।
आत्म रूप को यह पहचान, फंसे न फिर यह जग में आन ।
असंख्य बार जगत में आया, भिन्न-2 योनि में उपजाया ।
जड़ योनि जब इस ने पाई, अचर योनि जो है कहलाई ।
तिनका, झाड़ी यह बन पाया, पादप वृक्ष का रूप धराया ।
कीट पतंगे तन मम खाते, पशु पक्षी भी थे चर जाते ।
इस के वश की नहीं थी बात, सहता यह सब का उत्पात ।
दुख पाता कुछ कर न पाता, आत्मिक ताप निज बल दिखाता ।

दो॰ उस योनि को स्मरण कर, उपजत मन संताप ।
मम विनय स्वीकारिये, हरो प्रभो सब ताप ॥ 3082

जड़ योनि को फिर नहीं पाऊँ, तमो गुणी क्यों जीव कहाऊँ ।
यही सोच तव चरणी लागा, हूँ तव चरणों का अनुरागा ।
मर कर जीव किधर है जाता, भेजो जिधर उधर जा पाता ।
मेरा तुझ मे नाथ निहोरा, ख्याल दास का रखना थोरा ।
चौरासी में न फिर घुमाना, जड़ योनि में न कभी गिराना ।
न ही बनाना कीट पतंग, चुन चुन खाते जिन्हें विहंग[1] ।
कीट योनि भी अधम हि जानूँ, जड़ से भी यह बदतर मानूँ[2] ।
कीटों के हैं भेद अनन्त, जायें न योनि इस में सन्त ।
जन अधम इस योनि में जावें, अपने कर्मों का फल पावें ।

दो॰ अपनी शरणी दास को, राखो हे भगवान ।
बच कर चाले पाप से, तापों से हो त्राण ॥ 3083

सुनो विनय मम मेरे नाथ, जन्म मरण है तुमरे हाथ ।

1. विहंग = पंक्षी 2. बदतर-अधिक निकृष्ट

चमत्कारी सब तेरे काम, मेरी विनती यही मम राम ।
चौरासी से मुझे बचाओ, इन योनियों में न भटकाओ ।
1. *चौपाया न मुझे बनाना, नभचर योनि नहीं दिलवाना ।
मैं चौपाया जब बन पाया, था मानव ने मार हि खाया ।
नभचर मेरा था जब रूप, विचरत सुखी नभ में था गूप ।
मानव ने तब गोली दाग, मार गिराया मुझ को बेलाग ।
2. *ऐसी योनि प्रभो न पाऊँ, जालिम के जो हाथ में आऊँ ।

दो॰ मम विनय स्वीकारिये, दो ऐसी न जून ।
हिंसक जहां पाछे पड़े, पीने को मम खून ।। 3084

3. *जलचर योनि में नहीं जाऊं, उससे तो मैं भय बहु खाऊँ ।
वहां तो नित्य होत हैं पाप, अपनी संतति खाते आप ।।
4. *अण्डजयोनि से मुझे छुडाओ, 5.*स्वेदज योनि से भी बचाओ ।
6.*जेरज योनि में मैं न जाऊँ, 7.*उद्भिज योनि से बच पाऊँ ।
8. *चार खान में जन्मूँ नाहिं, करो कृपा मुझ पर गुरु साईं ।
मेरी विनय करो स्वीकार, देव योनि भी न मो स्वीकार ।
मैं तो केवल वह गति चाहूँ, सदैव ही तव चरण समाऊँ ।
जन्म जन्म जो लागा ताप, मेरा हरो प्रभु वह संताप ।

दो॰ मम ताप को प्रभु हरो, है निहोर नत माथ ।
धुरि चौरासी चक्र की, है तुम्हारे हाथ ।। 3085 क

---

1. * चौपाया = चार पाओं पर चलने वाले पशु । गाय आदि नभचर = आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि ।
2. * जालिम = अत्याचारी
3. * जलचर योनि = जल में रहने वाले जीव मछली आदि बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खाती हैं ।
4. * अण्डज = अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, सर्प आदि ।
5. * स्वेदज = पसीने से पैदा होने वाली जुएं, लीखें आदि ।
6. * जेरज = जेर से पैदा होने वाले पशु, मनुष्य आदि ।
7. * उद्भिज = भूमि से फूट कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि ।
8. * चार खान = अण्डज, स्वेदज, जेरज, उद्भिज ।

चक्र चौरासी तोड़ो, मुझे बंधावो आस ।
बुरी तरह हूँ पिस रहा, मैं निमाना दास ॥ 3085 ख

कृपा कर तू दीना नर देह, दया तुम्हारी समझो येह ।
भक्ति भाव से सिमरें तव पग, तेरा रूप ही दीखे सब जग ।
नर तन देव योनि से बढ़ कर, जिस में तुम मिले हो आ कर ।
तव किरपा से सफल बनाऊँ, लौट न जगती में फिर आऊँ ।
मानव तन का यही निशाना, आवागमन से मुक्ति पाना ।
मानव तन तुम से मैं पाया, करो प्रभो अब इतनी दाया ।
ऐसे योग का पाऊँ दान, हो यह अन्तिम तन भगवान ।
इस तन में रह कर लूँ योग, लागें भले न जग के भोग ।

(१२) तीन ऋणों से मुझे छुडाओ (3086/5)

दो॰ योग कमाई मैं करूँ, भोगों से मुख मोड़ ।
शरण प्रभु की में रहूँ, सारे बंधन तोड़ ॥ 3086 क
तीन ताप से मुक्त हो, इस विध मेरे नाथ ।
कृत कृत्य मम जन्म हो, मुक्ति लागे हाथ ॥ 3086 ख

प्रभो सुनो इक और पुकार, करनी कर कृपा स्वीकार ।
*मैं हूँ जीव ऋणी जग आया, तीन ऋणों का बोझ उठाया ।
इसी बोझ ने मुझे दबाया, हूँ मैं प्रति पल पीड़ सताया ।
ऋणी जीव किमि रहे सुखारी, तन मन से वह रहे दुखारी ।
तीन ऋणों से मुझे छुडाओ, उऋण करो मुझे प्रभो बचाओ ।
पैत्रिक दैविक आर्ष ये ऋण, इन्हीं तीनों से करो उऋण ।

---

* तीन ऋण = 1. पितृ ऋण 2. देव ऋण 3. ऋषि ऋण

मात पिता का ऋण बहु भारी, कौन सके कथ गाथा सारी।
सृष्टि ब्रह्मा से उपजाई, वह ब्रह्मा है जग की माई।

दो॰ ब्रह्मा जग की मात है, विष्णु जग के तात।
ब्रह्मा से जग ऊपजा, तात विष्णु साक्षात ॥ 3087 क
मैं दोनों को पूज कर, जन्म सुधारूँ नाथ।
वही विधि बतलाईये, ज्ञान सभी तव हाथ ॥ 3087 ख
*वेदों में उपदेश है, भव तुम मातृ देव।
और लिखा है हे प्रभो, रहो बन पितृ देव ॥ 3087 ग

नियम इसी को तभी निभाऊँ, कृपा तव यदि प्रभु पा जाऊँ।
बारबार प्रभु मम अरदास, पैत्रिक ऋण जो है प्रभो खास।
उस ऋण से मैं होउं उऋण, पितरों का नहीं रहे सर ऋण।
सदाचारी मम जीवन होय, व्यसनों में न काल जो खोय।
सेवा मात-पिता हो नेम, कुल मर्यादा से हो प्रेम।
उज्जवल हो जिमि वंश का नाम, मुझे प्रेरो करूँ वही काम।
ऐसा करूँ न लेश भी काम, जिस से कुल मम हो बदनाम।
मात पिता की मिले आसीस, उस से किस वरदान की रीस।*2

दो॰ मात पिता की जो मिले, हृदय से आसीस।
जीवन जानूँ धन्य निज, करो कृपा जगदीश ॥ 3088 क
जानो तुम सब रहस को, जिमि उतरे मम ऋण।
विनय यही इस दास की, करिये मुझे उऋण ॥ 3088 ख

---

1. * श्रुति का कथन ''मातृ देवो भव, पितृ देवो भव '' में शिक्षा मिलती है कि हम अपनी माता और अपने पिता को देवता मान कर उन की पूजा, सेवा करें।

2. * रीस = तुलना

एक विनय मैं और सुनाऊँ, देव ऋण प्रभो मैं चुकाऊँ ।
देवों का मुझ पर उपकार, जग जीवन के वही आधार ।
देव यज्ञ मैं नित कर पाऊँ, इमि उन्हें आराध दिखाऊँ ।
देव शक्ति दिव्य रूप को धार, रक्षा कर रही सब प्रकार ।
देवों को जिस नहीं आराधा, पग पग उस के मग में बाधा ।
हो मम जीवन का इक लक्ष्य, प्रतिष्ठित हों मम देव समक्ष ।
सब देवों की करूँ आराध, पृथ्वी नीर अग्नि निर्बाध ।
बायु देव को करूँ प्रसन्न, लाभ स्वास्थ्य करें सभी जन ।
पंचम देव आकाश को जान, जिस का गुण है शब्द महान ।
इन पांच को जभी आराधूँ, देव यज्ञ को तभी मैं साधूँ ।

दो० पांच देव आराध कर, होय ऋणों से मुक्त ।
गुरु किरपा को पाय कर, रहूँ योग में युक्त ॥ 3089 क
मम प्रभो अरदास यह, हो विनय स्वीकार ।
रहूँ सदा तव चरण में, हे जगत आधार ॥ 3089 ख
ऋषियों ने जो है दिया, जग को ज्ञान भण्डार ।
उस का करूँ प्रसार मैं, जग हेतु करतार ॥ 3089 ग
ज्ञान से वञ्चित न रहूँ, मैं हूँ ऋषि संतान ।
आर्ष ज्ञान को ग्रहण कर, हूँ ऋण मुक्त भगवान ॥ 3089 घ

(१३) करिये दूर क्लेश मम (3089 ङ)

एक विनय अब और भी, सुनिये मेरे नाथ ।
* करिये दूर क्लेश सब, मम डोरी तव हाथ ॥ 3089 ङ

---

* पांच क्लेश = 1. अविद्या, 2. अस्मिता 3. राग 4. द्वेष 5. अभिनिवेश ।

अविद्या अस्मिता राग द्वेष, पांचवां क्लेश जो अभिनिवेष ।
इन से मुझे छुडावो नाथ, डोर 'सेवक' की तेरे हाथ ।
विनय मेरी कर के स्वीकार, करो अविद्या गर्त से पार ।
अविद्या जन को इमि दबावे, लेश विवेक न जिमि कर पावे ।
सत्य असत्य में भेद न देख, सांप को जिमि ले रस्सी पेख ।
अथवा रस्सी जाने साँप, और जाय वह देख के काँप ।
सत्य सनातन ही जग जान, भूलयह करता को अनजान ।
ले असत्य को सत वह मान, सत को जाने असत्य पुमान ।

दो० जो असत्य को सत्य ही, लेता मान पुमान ।
अविद्या से वह जानिये, ग्रस्त भया अनजान ॥ 3090 क
ग्रस्त भया अनजान हूँ, अविद्या से भगवान ।
रक्षा प्रभु जी कीजिये, दास निमाना मान ॥ 3090 ख

सत्य असत्य में भेद न जानूँ, धर्म अधर्म को किमि पहचानूँ ।
मीत अमीत पहचान न पाऊँ, धोखे में इस विध आ जाऊँ ।
शत्रु को सदा गले लगाऊँ, दूर से मित्र को ठुकराऊँ ।
अविद्या ने इमि लीना घेर, कुकर्म करन में लगे न देर ।
क्या करूँ क्या नहीं कर पाऊँ, किंकर्तव्य विमूढ़ कहाऊँ ।
मेरी विनय यही भगवान, मिले अविद्या ग्रस्त को त्राण ।
अविद्या हो परम भयदायी, अन्धा गिरे नरक की खाई ।
सब क्लेशों की है यह मूल, अस्मिता द्वेष राग मत भूल ।
अभिनिवेश की जननी जान, अविद्या सर्व दुखों की खान ।

दो० विनय यही स्वीकारिये, मेरे प्राणाधार ।
क्लेशों के जंजाल में, गिरूँ न हे सरकार ॥ 3091

अविद्या है परम दुखदायी, अस्मिता कम न उस से राई ।
अस्मिता दोष से करो त्राण, विनय मेरी सुन कर भगवान ।
अस्मिता को जानूँ अभिमान, वा उसे अहंकार लूँ मान ।
अहंकार से न हो कल्याण, अनेकों इस के हैं प्रमाण ।
रावणादि का भया विनाश, जब अहंकार फिलाया पाश ।
अविद्या बीज रूप लूँ जान, अहंकार को लूँ पादप मान ।
इस पौदे के फूल विषैले, जिन की दुर्गन्ध इत उत फैले ।
इस पै फल भी लगें अनूप, जिन में * काल छिपा है गूप ।

दो० मुझे बचाओ नाथ जी, 'क्लेष' अति दुख दायी ।
इसी दोष के कारणे, थी लंका जल पायी ॥ 3092 क
इक पर और क्लेश भी, दूर करो भगवान ।
राग जिसे सब जानते, जान मुझे अनजान ॥ 3092 ख
फंस गया जग आन मैं, पिंजर में जिमि मूष ।
दुखी मुझे बहु कर रहा, माया का प्रदूष ॥ 3092 ग
माया का अनुराग यह, दृढ़ भयंकर पाश ।
जन्म जन्म इस में पड़ा, अब हूँ भया हताश ॥ 3092 घ
दया निधि अब दया करो, काटो माया पाश ।
मुक्त करो इस पाश से, लगी तुझी पर आश ॥ 3092 ङ
क्लेश पांच दुख रूप हैं, दुख दें बहु प्रकार ।
मानूँ पर मैं राग को, पांचों में सरदार ॥ 3092 च

राग जगत से मैं बहु कीना, इसी हेतु है यह तन लीना ।
अब दीजो मुझे ऐसा ज्ञान, निर्लिप्त रहूँ जग नश्वर मान ।

* काल = मृत्यु

नश्वर जग से करूँ न राग, तव चरणों में हि हो अनुराग ।
मम चित्त में हो तेरा रूप, बुद्धि में तत्व ज्ञान हो गूप ।
तेरे ध्यान में रहूँ निरन्तर, विवेक में मेरे हो न अन्तर ।
यही विनय है मम करतार, प्रभो करिये इस को स्वीकार ।
प्रभो राग से मुझे बचाना, द्वेष भाव से भी छुड़वाना ।
द्वेष किसी से क्यों कर पाऊँ, निज सम सब को देखन चाहूँ ।

दो॰ आत्मवत सभी जगत को, देखूँ मैं बिन लाग । *
ऐसी दृष्टि दीजिये, न द्वेष होय न राग ॥ 3093

द्वेष है अग्नि का इक रूप, जल रहे इस से जन व भूष ।
द्वेष की अग्नी बुझ न पाये, लाख बुझावें बढ़ती जाये ।
मानव की यह दुश्मन जान, दावानल से अधिक महान ।
वंशों को यह करत तबाह, प्रचण्ड जभी हो रूप अथाह ।
वंशों के इस वंश जलाये, राज्य भी इस ने बहु नशाये ।
मन एकाग्र किमि हो पाये, द्वेष अग्नि जब चित्त समाये ।
धर्म कर्म और योग ध्यान, इन सब की यह रिपु पहचान ।
हुआ मैं इस से बहुत हताश, प्रभो तव कृपा पै टिकी आस ।

दो॰ तव किरपा पै है टिकी, इस जीवन की आस ।
द्वेष की अग्नि शांत हो, मेरी यह अरदास ॥ 3094 क
मम विनय स्वीकार हो, करिये यह उपकार ।
द्वेष राग को त्याग मैं, तव पग लूँ मन धार ॥ 3094 ख
मन मेरे से दूर हो, द्वेष राग की धूल ।
निर्मलता उस में बसे, कुपथ गहे न भूल ॥ 3094 ग

* विन लाग = विना लगाव के अर्थात अनासक्त भाव से ।

दो॰ बस मेरी अरदास यह, विनय करो स्वीकार ।
द्वेष राग जो मन बसे, उस से हो निस्तार ॥ 3094 घ
प्रभो विनय इक और भी, है मेरे करतार ।
*अभिनिवेश जो क्लेष है, हो उस से निस्तार ॥ 3094 ङ

काल से सर्व जगत है भीत, अभिनिवेश की विस्तृत रीत ।
अगले क्षण क्या करे विधाता, इस से सब जग है भय खाता ।
त्रस्त रहें सब इस ही रीत, निर्भय वह जिसे प्रभु से प्रीत ।
करूँ मैं तव चरणों से प्रीत, विनय मेरी प्रभु यही विनीत ।
तव किरपा को चित्त में धार, डरूँ न यम से हे करतार ।
यम के हो तुम स्वामी नाथ, जन्म मरन सब तेरे हाथ ।
तव किरपा जब हो भगवान, मृत्यु करे मम लेश न हान ।
मेरे सर जब तेरा हाथ, मृत्यु का नहीं यम दे साथ ।
तेरी इच्छा जब हो नाथ, देह त्यागे तभी मम साथ ।

दो॰ तेरी इछा के बिना, आये न मृत्यु पास ।
मुझे भरोसा है परम, मैं हूँ प्रभु का दास ॥ 3095

प्रभु का दास न भय को खाये, पकड़ मृत्यु को गले लगाये ।
जिस मृत्यु से डरते लोग, उसे न उस का लेश भी सोग ।
उसे नहीं मृत्यु से हो भीत, भक्त की मृत्यु से भी प्रीत ।
मृत्यु का वह भय नहीं जाने, पाप कर्म से भय वह माने ।
उसे डरावे केवल पाप, पाप को जाने वह अभिशाप ।
पुनः पुनः मम विनय यह नाथ, त्याग करूँ मैं पाप का साथ ।

---

* अभिनिवेश = मृत्यु का भय

तन मम नश्वर है भगवान, इस का रक्षक आप को मान ।
इस से करूँ धर्म के काम, और जपूँ तव हर दम नाम ।

दो॰ राम नाम हर दम जपूँ, हो न चित्त में भीत ।
जब चाहो तुम ले चलो, राम बसे मम चीत ॥ 3096 क
मृत्यु से नहीं भय लगे, ऐसा बने स्वभाव ।
जौन मौत से जग डरे, मुझे उसी का चाव ॥ 3096 ख

विनती मेरी है यह नाथ, मन त्यागे न तेरा साथ ।
जीवन होय या मृत्युकाल, करनी दास की स्वयं संभाल ।
तेरी शरणी ही रह पाये, मृत्यु से नहीं भय को खाये ।
देह को नश्वर ही कर मान, निज स्वरूप की कर पहचान ।
अजर अमर निज का हो बोध, उपजे न कभी चित्त में क्रोध ।
क्रोध इसे निज पर ही आये, पाप कर्म जब यह कर पाये ।
भय इसे जब पाप से लागे, तब पाप को जन यह त्यागे ।
है मेरी बस यही अरदास, रहे तव शक्ति पर विश्वास ।

(१४) भय लागे नहीं मौत से (3103)

दो॰ शरण तुम्हारी में प्रभु, रहें सदा जो लोग ।
डरें मौत से न कभी, न व्यापे मन सोग ॥ 3097

भक्त मृत्यु को वर ही जाने, जीवन की इक छाया माने ।
व समझे इस को मोक्ष द्वार, ग्रहण करे जिमि गल का हार ।
वह दृढ़ता प्रभु मैं भी मांगूं, भय त्यागूँ तब चरणि लागूँ ।
ऐसी दृढ़ता को बिन पाये, क्षुद्र जीव किमि मुक्ति ग्राहे ।
तव संकेत से मृत्यु आती, भक्त के मन न भय उपजाती ।
जिस का चित्त हो भय से भीत, उसे नहीं प्रभु शक्ति प्रतीत ।

मैं तो हूँ उस दर का दास, मृत्यु का जहां रुकता श्वास ।
सुनो प्रभो मम यह अरदास, मौत से डरे न तव यह दास ।

दो॰ विनय यही स्वीकारिये, हे दीनन के नाथ ।
पड़ूँ अन्त तव गोद में, नहीं काल के हाथ ॥ 3098

नहीं सके कोई मृत्यु टाल, सब से प्रबल जग में है काल ।
जीव तो काल के है अधीन, भटकत जन्म जन्म होय़ दीन ।
जीव की इच्छा चाले नाहीं, पुतली हाथ काल के माहीं ।
संग्रह का है अन्त विनाश, फंसे सभी काल के पाश ।
होत मिलन का अन्त वियोग, मरन है निश्चित जानें लोग ।
उन्नति का है पतन विधान, कुछ भी स्थिर नहीं इस जहान ।
प्रभो करो इस दास पे दाय, अस्थिर जगत में न भ्रमाय ।
मृत्यु से नहीं भय यह खाय, योग युक्त हो काल बिताय ।

दो॰ योग युक्त रह काल सब, भय खाये न लेश ।
विनय यही स्वीकारिये, राखो शरणि हमेश ॥ 3099

तेरी शरण रह कर नाथ, जीवन सौंपे तेरे हाथ ।
बिके न कभी काल के हाथ, नश्वर जगत का करे न साथ ।
फल लगा जो डाल में होय, गिरेगा पक कर इक दिन सोय ।
जन्म के पाछे मृत्यु होय, मृत्यु पाछे जन्म वह गोय ।
अवश्यंभावी ऐसा नाश, क्यों प्रभो मैं होऊँ हताश ।
दृढ़ करिये मम ऐसा चित्त, डरूँ न काल से किसी निमित्त ।
दृढ़तम भवन भी गिर ही जाय, काल से को भी बच न पाय ।
ऐसे ही है जन निः सहाय, जरा मरन से बच नहीं पाय ।

दो॰ ज़रा मरन की सीख को, लूँ मैं मन में धार ।
शरण गहूँ प्रभु आपकी, रक्षक तुम करतार ॥ 3100

इक विनय प्रभु यह कर पाऊँ, जन्म मरन में बहुर न आऊँ ।
देख चुका बहु भव मैं नाथ, इसी जन्म में भया सनाथ ।
मिले भाग्य से पग तुम्हारे, है भरोस लगायें किनारे ।
श्रद्धा मम मन है उपजाई, जीवन पड़े न बीच खटाई ।
अलौकिक शक्ति तुम है लाई, भक्तों को जो बनत सहाई ।
उसी शक्ति पर कर विश्वास, पड़ा चरण में है तव दास ।
वे तो चरण दृढ़ नौक समान, भव सागर से पार ले जान ।
जैसा कैसा जन चढ़ जाये, वह नौका तो पार लगाये ।

दो॰ इसी भाव से हूँ पड़ा, मैं पापी तब चरण ।
तेरी शक्ति से प्रभो, जन्म न हो बहु मरन ॥ 3101 क
जीवन के क्षण जा रहे, लौटे न पल एक ।
दीजिये प्रभु जी अपने, चरण कमल की टेक ॥ 3101 ख
नदी नीर जो बह गया, लौट आये न नाथ ।
बीती रात न आ सके, अजब लगे सब गाथ ॥ 3101 ग
मरणान्तक यह देह है, बने मृत्यु का ग्रास ।
रहना प्रभु जी साथ मम, जब निकलेगा श्वास ॥ 3101 घ
मृत्यु पाछे होत क्या, समझ आये न मोय ।
अगला पथ है कौन सा, जान पाय न कोय ॥ 3101 ङ
शरण गही इक आप की, ले चलो जहां चीत ।
* रहबर हो तुम मिल गये, है न मम मन भीत ॥ 3101 च

---

* रहबर = मार्गदर्शक , गाईड (Guide)

मेरी डोरी तेरे हाथ, त्यागूँ कभी न तेरा साथ ।
कीनी जीवन काल संभाल, प्रभु संभालें अंत भी काल ।
मेरे मन है दृढ़ विश्वास, करेंगे प्रभु न मुझे निराश ।
काल की देखी गति न जाये, नदी वत आयु बहती जाये ।
शोषत काल आयु को ऐसे, जल ग्रीष्म में सूरज जैसे ।
मृत्यु चाले संग ही संग, सभी जीवों का है वह अंग ।
मुझ को निज चिन्ता है देव, क्या करूँ मैं अन्य की सेव ।
आयु क्षीण होय प्रति पल, निमेष निमेष हि जा रही ढल ।

दो॰ जीवन के पल जा रहे, व्यर्थ बिताऊँ काल ।
नियम प्रभु के भूल मैं, उलटी चालूँ चाल ॥ 3102 क
उलटी चालूँ चाल मैं, प्रतिदिन मेरे नाथ ।
दिन का इक भी प्रहर तो, दे न मेरा साथ ॥ 3102 ख

किसी प्रहर न आतम ध्याऊँ, भूलनहार भूल ही जाऊँ ।
प्रहर क्या इक मुहूर्त भी देव, लगे न प्रभु जी तेरी सेव ।
बात मुहूर्त की न कथ पाऊं, इक नाडी न प्रभु को ध्याऊँ ।
नाडी से भी लघु जो काल, उसी लघु का भी यही हाल ।
उस से भी जो सूक्ष्म होय, काष्ठा मात्र न सिमरूँ तोय ।
ऐसा भाग्य मम है विपरीत, क्षण मात्र भी न उपजत प्रीत ।
प्रभो मुझे निज दास बनाओ, निमेष* मात्र तो चरणि लगाओ ।

* निमेष = इतना समय जितने में आंख को झपका जाता है । समय की गणना निम्नलिखित सूक्ष्म भागों में की गई है । सब से छोटा भाग प्रमाणु है :-

2 परमाणु = १ अणु   3 अणु = १ त्रसरेणु   4 त्रसरेणु = १ त्रुटि
१०० त्रुटि = १ बेध   ३ बेध = १ लव   ३ लव = १ निमेष (आंख का झपकना)
३ निमेष = १ क्षण (एक सैकिण्ड के बराबर)   ५ क्षण = १ काष्ठा   १५ काष्ठा = १ लघु
१५ लघु = १ नाडी (दण्ड)   २ नाडी = १ महूर्त (एक घण्टा)   ३ महूर्त = १ प्रहर
८ प्रहर = १ दिन

इतने से भी मम कल्याण, काम सुधारे तेरा ध्यान ।

दो॰ ध्यान तुम्हारा हि करूं, तभी बने मम काम ।
भय लगे नहीं मौत से, दृष्टि में रहे राम ॥ 3103

तव ध्यान में जीवन जाये, विघ्न न उस में प्रभु आ पाये ।
सब जानें मन कितना चंचल, हों विक्षेप हि उस में प्रतिपल । *
सब विघ्नों को कर के दूर, दास लगाओ चरणि ज़रूर ।
यह तुम्हारा विरद है नाथ, रहो तुम हर दम जन के साथ ।
और योगयुक्त करने हेत, विघ्न निवारें करें सचेत ।
मेरी विनय यही भगवान, हो मम रक्षा सभी स्थान ।
देह मेरा रहे व्याधि हीन, स्त्यान करे न प्राण को क्षीण ।
क्षीण दीन जब जन हो जाये, योग युक्त किस विध हो पाये ।

दो॰ रोगों से रह मुक्त तन, होय योग में युक्त ।
स्त्यानादि जो विघ्न कहे, सब से रह कर मुक्त ॥ 3104 क
तेरी किरपा के बिना, संभव न यह नाथ ।
विनय यही स्वीकारिये, करिये मुझे सनाथ ॥ 3104 ख

---

* चित्त के निम्नलिखित विक्षेप हैं :-

1. व्याधि (disease)
2. स्त्यान (langour)
3. संशय (indecision)
4. प्रमाद (carelessness)
5. आलस्य (sloth)
6. अविरति (sensuality ; want of non-attachment)
7. भ्रांति (mistaken notion)
8. दर्शन अलब्ध भूमिकत्व (missing the point)
9. अनवस्थित्व (instability)

मेरी एक विनय है नाथ, तव किरपा बिन न बनूँ सनाथ ।
रह रह कर मन संशय आयें, योग मार्ग से सभी हटायें ।
सकूँ न उन को कर मैं दूर, उन समक्ष हो ज्ञान भी चूर ।
तेरी किरपा जब हो पाये, चित्त में संशय इक न आये ।
योग में संशय विघ्न महान, संशय करत जीवन की हान ।
इस से मुझे बचावो नाथ, बिके न चित्त संशय के हाथ ।
जो शिक्षा मैं तुझ से पाऊँ, श्रद्धा सहित उसे अपनाऊँ ।
बिन श्रद्धा न उपजे ज्ञान, यह उपदेश है तव भगवान ।
संशय मिटें श्रद्धा उपजाये, 'सेवक' यही विनय कर पाये ।

(१५) योग मार्ग के विघ्न निवारो (3105/1)

दो॰ संशय लेश न मन बसे, श्रद्धा में मन चूर ।
तव चरणों की भक्ति हो, मुक्ति नहीं तब दूर ॥ 3105 क
यह विनय स्वीकार हो, अटल बने विश्वास ।
श्रद्धा जब मन में बसे, मुक्त होय तब दास ॥ 3105 ख

योग मार्ग के विघ्न निवारो, दया दास पै प्रभो कर डारो ।
इक विघ्न प्रभो और महान, सदा फंसूँ मैं बन अनजान ।
प्रमाद नाम से वह विख्यात, विघ्नकारी वह है साक्षात ।
चित्त पर उस का जब प्रभाव, जन का आलसी बने स्वभाव ।
करना चाहे न कुछ भी काम, भूले ईश्वर का भी नाम ।
आज का छोडे कल पै काम, कल फिर ले नहीं उस का नाम ।
टालमटोल करे सब काल, समय की लेश न करे संभाल ।
इसी दोष से मुझे बचाओ, प्रमादी प्रभु न मुझे बनाओ ।
व्यर्थ जाये प्रमाद से काल, प्रमादी सदा रहत बेहाल ।

दो॰ योग साधन न कर सकूँ, बन प्रमादी नाथ ।
विघ्न निवारो यह प्रभो, मम जीवन तव हाथ ॥ 3106 क
प्रभो साथी प्रमाद का, आलस उस का नाम ।
उस से भी रक्षा करो, बिगाड़े न मम काम ॥ 3106 ख
विनय यही स्वीकारिये, आलस से रह दूर ।
योग करूँ मैं ध्यान से, श्रद्धा से भरपूर ॥ 3106 ग
आलस करता नाश है, बना बनाया काम ।
राखो मुझ को दूर ही, इसी दोष से राम ॥ 3106 घ

आलसी बन कर हे भगवान, इस जीवन की न मम हो हान।
योगार्थ यह देह है पायी, आलस ने है व्याधी लायी।
ब्रह्ममुहूर्त नहीं उठ पाया, और न तुझ को मन में ध्याया।
मुझे नींद ने सदा दबाया, अथवा पड़ा पड़ा सुस्ताया।
यत्न किया पर कार न आया, तव किरपा बिन को छुट पाया।
किरपा करिये दीनानाथ, दोष यह छोड़े मेरा साथ।
यदि आलस को न जन त्यागे, सफलता किमि हाथ में लागे।
आलस से हो काल का नाश, आलस जन को करत हताश।
आलस से जन होत खवार, बाधा योग में दे वह डार।

दो॰ आलस बाधक योग में, विनय करूँ मैं नाथ ।
त्यागूँ आलस योग हित, छूटे न तव साथ ॥ 3107 क
एक विनय है और भी, सुनिये दीन दयाल ।
अविरति दुश्मन योग की, लेती चित्त संभाल ॥ 3107 ख

उस से प्रभु जी मुझे बचाना, विरक्तता का गुण समझाना ।

बिन वैराग्य न योगी होवे, माया सब कुछ जन का खोवे ।
मायावी का लगे न ध्यान, मायावी को मिले न ज्ञान ।
मायावी रहे सदा क्षुब्ध, मायावी जन होता लुब्ध ।
मायावी न शांति पावे, भ्रांति मायावी चित्त आवे ।
मायावी हो योग से दूर, मायावी चित्त बसे गरूर ।
नहीं सकता वह कर अभ्यास, जो फंसा माया के पाश ।
मेरी यही विनय भगवान, माया से मम करिये त्राण ।

दो॰ माया से मैं बच सकूँ, ऐसा होय विराग ।
सेवक केवल मांगता, प्रभु चरणी अनुराग ॥ 3108

प्रभु चरणों में हो अनुराग, जग से लेश न हो मम राग ।
पर द्रव्य को माटी मानूँ, परतिरया को माता जानूँ ।
आत्मवत सब जगत को देखूँ, योग साधन सम कुछ न लेखूँ ।
जीवन भर मैं रहूँ विरक्त, और सदा गुरु चरणि अनुरक्त ।
योग साधन हो मेरा काम, प्रतिश्वास में भजन हो राम ।
ऐसा अवसर तब ही आये, 'सेवक' जब तव किरपा पाये ।
इस ' सेवक' को करो निहाल, मेरी विनय यही जगपाल ।
तेरे बिना न और सहारा, तव कृपा बिन न मिले किनारा ।

दो॰ तव किरपा बिन न मिलत है, योग मार्ग हे नाथ ।
सुनिये सेवक की विनय, करिये इसे सनाथ ॥ 3109 क
एक विनय मम और है, सुनिये दीन दयाल ।
भ्रम में मम चित्त न पड़े, और न हो बेहाल ॥ 3109 ख

भ्रांति योग में विघ्न महान, दूर राखो इस से भगवान ।
सतपथ में भी जावें डोल, किंकर्तव्य विमूढ़ अडोल ।

इक पग चालें फिर भरमायें, निश्चय कर पुनः चल पायें ।
स्थिर न रहे हमारी बुद्ध, सूझे न कोई मार्ग शुद्ध ।
विनय मेरी करिये स्वीकार, जिमि किमि मेरा होय उद्धार ।
ऐसी स्थिति में राखो नाथ, दृढता से चल पाऊँ पाथ ।
योग का मार्ग तुम बतलाया, मैंने उस को है अपनाया ।
भ्रांति भये न कभी भी लेश, श्रद्धा भये परिपक्व हमेश ।
मेरी विनय यह बारंबार, करिये कृपा कर स्वीकार ।

दो॰ 'सेवक' की पुकार है, करें इसे स्वीकार ।
भ्रांति आये न लेश भी, मेरे मंन सरकार ॥ 3110 क
एक विनय है और भी, करूँ चरणि अरदास ।
दर्शन का प्रभु दान दो, जान निमाना दास ॥ 3110 ख

दर्शन में जो विघ्न अनेक, दूर करो प्रभो वे प्रत्येक ।
मेरा मन वहीं पहुँचाओ, उसी भूमि पर ले कर जाओ ।
जहां पर तेरा हो साक्षात, दर्श करूँ नित्य सायं प्रात ।
उसी भूमि पै स्थिर हो वास, चित्त में स्थिरतर हो विश्वास ।
तेरा दर्शन सुख का मूल, दूर करे वह चित्त का शूल ।
बिन दर्शन हो जीवन ऐसा, नीर बिना नीरद हो जैसा ।
अथवा शून्य आकाश समान, अन्धकार से भरा जहान ।
अथवा उस सरिता का तीर, बूंद भी दीखत जहां न नीर ।
दयानिधान दया कर पायें, दर्शन देकर धन्य बनायें ।

दो॰ दर्शन पाऊँ नाथ जी, जीवन की इक साध ।
मेरा जीवन सफल हो, तेरे चरण आराध ॥ 3111

जिन्दगी बीत चली गुरुदेव, मिली नहीं तव चरण की सेव ।
तेरे संग सदा रह पाऊँ, इक पल भी मैं दूर न जाऊँ ।

चित्त मेरे में तेरा वास, नेत्र मेरे हों तव आवास ।
वाक सदा ही तुझे पुकारे, शीश टिके तव चरण सहारे ।
हाथों का बस एक हो काम, स्पर्श करें तव चरण ललाम ।
मेरे पग पहुँचें तव धाम, पैरों का बस यही हो काम ।
बुद्धि त्यागे तर्क वितर्क, श्रद्धा में होय लेश न फर्क ।
मेरी विनय सुनो भगवान, मिलो तुम्हीं जब निकलें प्राण ।
विनय यही है, यही पुकार, हो तुम्हीं मम प्राणाधार ।

दो० मम विनय स्वीकारिये, दो दर्शन भगवान ।
तव दर्शन बिन जीव यह, बसे जिमि शमशान ॥ 3112 क
वास करे शमशान यह, गहे न सुख का लेश ।
तड़प तड़प कर यह जिये, कैसा विकट क्लेश ॥ 3112 ख

तेरा दर्शन प्रभु मैं पाऊँ, निज जीवन को सफल बनाऊँ ।
'सेवक' सदा मन यही मनावे, प्रभु दर्शन को निशिदिन पावे ।
जो दर्शन बहु भक्तन पाया, और सबन के चित्त सुहाया ।
उस दर्शन को मैं भी पाऊँ, प्रतिक्षण चाह यही मन लाऊँ ।
रामा ने जो दर्शन पाया, राम रत्ती जिस में मन लाया ।
जो था हरिहरानन्द देखा, मनहर रूप मुलख जो पेखा ।
अयोध्या की अवधूता नार, का जिस दर्शन कीन उद्धार ।
ऋषि देवी जो दर्शन पाया, वैधव का सभी दुख भुलाया ।
विनय मेरी स्वीकार हो नाथ, वही दर्शन दे करो सनाथ ।

(१६) दर्शन बिन जन चैन न पावे (3115/4)

दो॰ दर्शन मुझ को दीजिये, करिये मुझे सनाथ ।
मेरी गति मति हे प्रभो, है तुम्हारे हाथ ॥ 3113

काशी का ब्रह्मचारी नाथ, तुझे देख वह भया सनाथ ।
जसपुर का कुम्हार युवान, कृतार्थ भया पा दर्श महान ।
काँठ राज की रानी देव, पा दर्श उस कीनी सेव ।
जल भीतर जिस समाधि लायी, वहीं पर उस दिव दृष्टि पायी ।
दर्श तुम्हारा कर वह आया, और चरण में शीश झुकाया ।
राजा रणसिंह को हम जानें, जो आप की शक्ति पहचाने ।
उस के गुरु ने तुम को देखा, समाधि में पहचान उलेखा ।
'योग दिवाकर चढ़ है पाया, आश्रम में दिव तेज समाया ।'
जो स्वरूप तू उसे दिखाया, देखूँ मैं भी करिये दाया ।

दो॰ तव दया को पाय कर, देखूँ मैं तव रूप ।
दिव दर्शन प्रभाव से, चित्त भये तद्रूप ॥ 3114 क
मम विनय स्वीकारिये, विनय करूँ दिन रात ।
तेरे दर्शन के बिना, बने न मेरी बात ॥ 3114 ख
कृतार्थ भये हैं बहु जन, तव दर्शन को पाय ।
प्रभो मुझे बतलाइये, क्या मैं करूँ उपाय ॥ 3114 ग

भक्त अनेकों को तुम तारा, दे कर दर्शन उन्हें उबारा ।
हाथी गेट आया जो साध, दिया दर्श तू उसे अगाध ।
मुरादाबाद थे भक्त अनेक, कृतार्थ भये उन में कुछ एक ।
चांदपुरी के साधक नाथ, तव दर्शन पा भये सनाथ ।

अमृतसर की क्या कहें बात, वहां पर बसते तुम साक्षात ।
लवपुर में भी भक्त तराये, दर्शन कर वे धन्य हो पाये ।
अब मैं हिमचल की कहूँ बात, समाधि में बहु जन साक्षात ।
ग्राम्य जनों को तुम अपनाया, दर्शन का तुम दान लुटाया ।
१. *किरटी में है जिनका वास, सभी धन्य हैं वे तव दास ।
२. शथला और *शमाथल माँझ, समाधि में रहें प्रातः सांझ ।

दो० उन जनों को स्मरण कर, मन मेरा कह पाय ।
सब को दर्शन देय जो, मम विनय सुन पाय ॥ 3115

शिमले में रहें भक्त बहुतेरे, समाधियों में जो सांझ सवेरे ।
चायल में भी भक्त अनेक, पूजा पाठ करे हर एक ।
मन में हर इक यही मनावे, दर्श प्रभु के नित्त कर पावे ।
दर्शन बिन जन चैन न पावे, दर्शन कर कर नहीं अघावे ।
३*जनेडघाट के भक्त प्यारे, प्रभु का दर्शन पाने वारे ।
उन को मिल कर जन बहुतेरे, बनते प्रभु के दास घनेरे ।
४* कुमारसैन की धरत महान, जन बसें वहां अनेक सुजान ।
कई भक्त रहें ध्यानासीन, भक्ति प्रभु में हर दम लीन ।
उस धरती के नर बहु नार, प्रभु सेवा का रहें व्रत धार ।

दो० प्रभु सेवा वा ध्यान में, बीते उन का काल । दयाल
धन्य भाग उन का कहूँ, जिन पर प्रभु ध्याल ॥ 3116 क
कोटगढ़ के सन्मुख है, इक सुन्दर प्रदेश ।
जहां रहें ये भक्त जन, समाधि स्थित हमेश ।. 3116 ख

---

१. * तथा २. * कोटगढ़ (ज़िला शिमला) के ग्राम
३. * जनेडघाट = ज़िला शिमला, हिमाचल प्रदेश में ४. * कुमारसैन = ज़िला शिमला, हिमाचल प्रदेश में

उन के दर्शन मैं किये, मन में भया विचार ।
मुझ पर भी प्रभु कीजिये, ऐसी दया अपार ॥ 3116 ग
प्रभु विनय स्वीकारिये, मम जीवन आधार ।
ध्यान समाधि में रहूँ, तव पग मन में धार ॥ 3116 घ
प्रभु कृपा का अन्त नहीं, ग्राम्य जनों के माँझ ।
स्थल एक की और कहूँ, जो कुल्लू के माँझ ॥ 3116 ङ
सतलुज नद के पार हैं, सुन्दर ये प्रदेश ।
ग्राम अनी तहसील के, भक्त जनों के देश ॥ 3116 च

थलीन आदि जो ग्राम कहायें, वहां भक्त जन बहु बस पायें ।
समाधि में वे रहें चिरकाल, ऐसा देखा उन का हाल ।
खान पान सब जाये छूट, ऐसी गूढ़ समाधि अटूट ।
होये भाग्य से उन का मेल, दुर्गम देश न जाये रेल ।
उन के दर्शन जो कर पाये, प्रभु भक्त जन वही हो जाये ।
सतलुज के इस पार फिर आय, अन्य गाओं में तब जन जाय ।
*रामपुर तहसील में पेखें, प्रभु भक्तों को जा कर देखें ।
कुमसु ज्योरी आदि ग्राम, प्रभु प्रेम के सुन्दर धाम ।
भक्ति भाव में रहें अनेक, समाधि गूढ़ में भी को एक ।
उन को जो जन मिल कर आये, उस का जन्म धन्य हो जाये ।

दो॰ गूढ़ समाधि जोय मिले, तव भक्तों को नाथ ।
कृपा मुझ पर भी भये, मम जीवन तव हाथ ॥ 3117 क
इस से आगे ले चलो, किन्नर थल में नाथ .
वहां भी तेरे भक्त हैं, नित गायें तव गाथ ॥ 3117 ख

* रामपुर-रामपुर बुशहर (ज़िला शिमला)

अनन्य भक्ति सभी कर पायें, संग दोष को सदा दुरायें ।
चित्त में उन के तुम हो नाथ, भाग्य भक्त का तेरे हाथ ।
एकाग्र वृत्ति जो उन पायी, निरख वही मम बुद्धि चकरायी ।
इतना दुर्गम दूर प्रदेश, तव भजन वहां होत हमेश ।
प्रभु शक्ति से सभी हो पाये, जन परिश्रम न लेखे आये ।
तेरे भक्त रहते बहु ठोर, देखे पुरहमीर की ओर ।*१
गाँव गाँव में उन का वास, प्रातः सांझ चढ़ावें श्वास ।
उन गाँओ को किमि गिन पाऊँ, टिक्कर मुख्य गाँव बतलाऊँ ।
डिम्मी डुँगी और भी ग्राम, सभी के न कथ पाऊँ नाम ।

दो॰ उन गाओं में भक्त जो, लगता उन का ध्यान ।
प्रभु विनय स्वीकारिये, मुझ को भी दो ध्यान ॥ 3118

विनय देव यही कर पाऊँ, तव दर्शन की भिक्षा चाहूँ ।
तव दर्शन मम प्राणाधार, करिये मम विनय स्वीकार ।
जिस भक्त तव दर्शन ग्राह्या, और समाधि स्थित हो पाया ।
भक्त वही तव किरंपा जाने, योग शक्ति तव वह पहचाने ।
निरख सके तव दिव्य वह रूप, व्यापक सृष्टि में जो गूप ।
उसी रूप को निरखन हारे, देश देशान्तर जन हैं प्यारे ।
मैं भी उन जैसा बन पाऊँ, बारंबार यह विनय सुनाऊँ ।
करिये इस को प्रभो स्वीकार, मेरी तव दर यही पुकार ।

दो॰ मेरी यही पुकार है, बार बार मम नाथ ।
दर्शन मुझ को दीजिये, करिये मुझे सनाथ ।. 3119

२*कांगड़ा में भी जन घनेरे, दर्शन पावें सांझ सवेरे ।

---

१. * हमीरपुर = हिमाचल प्रदेश का प्रसिद्ध प्रांत ।
२. * कांगड़ा = हिमाचल प्रदेश का एक बहुत प्रसिद्ध प्रांत ।

वहां पर नूरपुर तहसील, भक्त बसें वहां भक्ति शील।
ग्राम ग्राम में उन का वास, चढ़े ध्यान में उन का श्वास।
होश्यारपुर नगर जो प्यारा, वह मैं मानूँ योग द्वारा।
समाधि स्थित बहुत हो पाये, नाम न उन के यहां गिनाये।
इसी नगरी जो आश्रमं खास, प्रभु करें वहां सदा निवास।
अधिकारी जन समाधि पावें, बहु जन निरख निरख विस्मावें।
कई दिवस और कई मास, समाधि में रहें प्रभु के दास।

दो॰ प्रभु कृपा जो यहां भये, जानूँ उसे विशेष।
प्रभो मुझे भी बख्शिये, अपना दर्शन लेश ॥ 3120 क
ऐसा दर्शन दीजिये, जग को जाऊँ भूल।
बसूँ आप के चरण में, बन पाओं की धूल ॥ 3120 ख
विनय करो स्वीकार मम, हे योगेश्वर राम।
दासन के इस दास को, दो दर्शन अभिराम ॥ 3120 ग

जो भी आश्रम इस आ जाता, सीख योग की वह जन पाता।
शांत होत है उस का चित्त, होत क्षिन्न न किसी निमित्त।
देश विदेशी जन चलि आते, ध्यान भजन में कुछ लग जाते।
स्वाध्यायशील कुछ हों प्रवीण, समाधि में कई होते लीन।
हठ योग में कई सिद्धहस्त, मुद्रा शांत में ही कुछ मस्त।
सेव धर्म ही कुछ सन्मानें, कुछ जन कीर्तन को बहु मानें।
करते बैठ रामायण पाठ, प्रभु जी का यहाँ सुन्दर ठाठ।
प्रभु की कृपा का नहीं अन्त, प्रभु सेवक जग में बे-अन्त।

(१७) आंखों में तव रूप समाये (3121/6)

दो॰ प्रभु सेवक बे अन्त हैं, प्रभु की दया अपार ।
इस 'सेवक' को भी प्रभो, है तेरा आधार ॥ 3121 क
अपने चरणों की शरण, में राखो भगवान ।
यही विनय इस दास की, दर्शन का दो दान ॥ 3121 ख
जिस किसी भी रूप में, राखो अपने साथ ।
यह विनय स्वीकारिये, सब कुछ तेरे हाथ ॥ 3121 ग
१ * इस आश्रम में रह रहे, देह तीसरा धार ।
मम सेवा स्वीकारिये, दास की यह पुकार ॥ 3121 घ
२ *अमृतसर में आप रहे, साल पचास व एक ।
३ *उसी देह को त्याग फिर, सुमेरु की ले टेक ॥ 3121 ङ
४ * था वही देह दूसरा, काक लिखा जो लेख ।
सत्य किया उस वचन को, नाडी ग्रन्थ उलेख ॥ 3121 च
गुरु की सेवा में रहे, कुछ काल प्रयन्त ।
देह तीसरा फिर धरा, हो न जिस का अन्त ॥ 3121 छ
होश्यारपुर में आश्रम, निर्मित कीना आप ।
५ कल्प अन्त तक रूप यह, हरे विश्व सन्ताप ॥ 3121 ज

---

१. योग साधन आश्रम 3-माडल टाऊन होशियारपुर ।

२. अमृतसर में श्री प्रभु जी 51 वर्ष की आयु तक रहे ।

३. 51 वर्ष की आयु में श्री प्रभु जी ने एक प्राकृत शरीर का परित्याग कर दिया और दूसरे शरीर की रचना कर सुमेरु पर्वत पर चले गए ।

४. * काक = ऋषि काक भुषुण्डी ।

५. * इकावन वर्ष की आयु में यह शक्ति अपने पार्थिव देह को त्याग देगी, और मेरु गिरि के स्वर्ण शिखिर पर ईश्वरीय अविनाशी पूर्णता के अभेद रूप में वास करेगी । इसी शक्ति का तीसरा देह प्राणि मात्र के उद्धार के लिए कल्पांत तक अनश्वर रहेगा । '' महर्षि काक भुषुण्डी रचित कौमार नाडी ग्रन्थ से उद्धृत ॥

'सेवक' को अपनाय कर, और देय कर दर्श ।
जोड़ा 'सेवक' सेव में, 'सेवक' के मन हर्ष ॥ 3121 झ
विनय यही प्रभु चरण में, हो न सेव में तोट ।
और प्राप्त सदा रहे, चरण शरण की ओट ॥ 3121 ञ

मेरी मुख्य यह विनय पुकार, मानूँ न मैं सेव से हार ।
रूप अलौकिक जो तुम धारा, 'सेवक' का अब वही सहारा ।
अन्तकरण में दर्शन पाऊँ, मन ही मन तुम को मैं ध्याऊँ ।
मन ही मन मैं यही मनाऊँ, प्रतिक्षण तेरा दर्शन पाऊँ ।
विघ्न न आये दर्श में लेश, दर्शन में रहूँ लीन हमेश ।
आंखों में तव रूप समाये, कानों में तव गूंज गुंजाये ।
मन में तेरा ही हो ध्यान, बुद्धि ग्राहे तेरा ज्ञान ।
हाथ पांव तव सेवा लागें, अन्य कर्म निःशंक त्यागें ।

दो० तेरे दर्शन से प्रभो, बढ़ कर न को दान ।
सदा बसो मम चित्त में, यही चाहूँ वरदान ॥ 3122 क
यही चाहूँ वरदान मैं, समक्ष रहो सब काल ।
जीवन का न भरोस है, अन्त आय किस काल ॥ 3122 ख

निज परम सौभाग्य मैं जानूँ, तव दर्श वरदान मैं मानूँ ।
इस्थिर रहे तव दर्शन नाथ, पाया दान न निकले हाथ ।
अनवस्थित हो न मेरा चित्त, भटके नहीं यह किसी निमित्त ।
जगत की माया न भरमाये, वासना माँझ उलझ न पाये ।
मोह के जंगल में न भूले, वित्त की मस्ती में न झूले ।
यश की होय न इसको चाह, निन्दा स्तुति से बे परवाह ।
ध्यान से डिगे न मेरा चित्त, सखा सहोदर तुम हो मित्त ।
मात पिता तुम गुरु हो प्यारे, स्थिर रहे मन तेरे सहारे ।

दो॰ मन की स्थिरता का प्रभो, दीजो मुझ को दान ।
विनय यही स्वीकारिये, जिमि हो मम कल्यान ॥ 3123 क
मन को स्थिर मैं जब करूँ, शत्रु करें प्रहार ।
मन मेरा अति दुर्बल, सह सके नहीं मार ॥ 3123 ख

काम की मार यह न सहारे, काम को केवल शंकर मारे ।
प्रश्न यही अब मुझे सतावे, स्थिरता कामी मन किमि पावे ।
इसी आश मैं टिका हूँ नाथ, मेरा भाग्य बदा तव हाथ ।
तुम चाहो सब कुछ कर पाओ, अस्थिर चित्त को स्थिर बनाओ ।
काम के वश ये मन न आवे, चरण तेरे जब सदा ध्यावे ।
प्रभु इक और भी शत्रु मेरा, ध्यान में बाधक जो घनेरा ।
उसको कहते हैं सब क्रोध, दे सके कौन उस को बोध ।
वह तो अग्नि रूप भगवान, भस्म करे जन का सब ज्ञान ।
क्षुब्ध करे वह मन को ऐसे, टिक सके नहीं क्षण भी जैसे ।
उसी क्रोध से प्रभो बचाओ, मेरा मन निज चरणि टिकाओ ।

दो॰ तेरे चरणों में प्रभो, टिका रहे मम चित्त ।
काम क्रोध जो हैं रिपु, हरें न यौगिक वित्त । 3124

इन रिपुओं से मुझे बचाओ, दर्श प्रतिदिन ही दे पाओ ।
दर्शन बिन जो बीते काल, पीड़ा से मैं रहत बेहाल ।
उस काल रहे चित्त विक्षिप्त, माया में रह कर के लिप्त ।
अनवस्थित हो न मेरा चित्त, होय विक्षिप्त न किसी निमित्त ।
लिप्त रहे तव चरणी मांझ, प्रातः से ले कर यह साँझ ।
इक क्षण भी न होय वियुक्त, इमि करो इसे योग में युक्त ।
सभी उपद्रव करिये दूर, हो विनय प्रभो मम मंज़ूर ।
तव रूप मम मनहिं समाय, एक भी पल वह न विलगाय ।

दो॰ एक भी पल न विलग हो, मन से तेरा रूप ।
रूप तेरे को मैं प्रभु, राखूँ मन में गूप ॥ 3125 क
एक विनय पर और है, उस पर भी दें ध्यान ।
लालच इस संसार में, करत मुझे हैरान । 3125 ख

लोभी कूकुर जिमी लुभावे, मन विषयों के पीछे धावे ।
कभी न हो उस को संतोष, ऐसा चित्त का है यह दोष ।
उसी दोष को प्रभो निवारो, मन निर्दोषी यह कर डारो ।
इस के लोभ न आवे पास, जग वैभव से सदा उदास ।
जग की माया लागे धूल, लोभ करे नहीं उसका मूल ।
तेरे दर्शन की हो प्यास, मेरी यही विनय है खास ।
इस को करें यदि स्वीकार, मानूँ जन्म जन्म उपकार ।
मन में तड़प होय बस एक, दर्श मिले तव पल प्रत्येक ।
लोभ न जग का इसे लुभावे, प्रतिपल दर्शन तव कर पावे ।

दो॰ रहे लोभ से दूर ही, मन मेरा भगवान ।
तेरे दर्शन की इसे, ही हो चाह महान ॥ 3126 क
अपराधी इक और भी, जानूँ शत्रु नाथ ।
मोह नाम से कहत हैं, बिकूँ न उस के हाथ ॥ 3126 ख
काम क्रोध व लोभ रिपु, तीनों ये बलवान ।
प्राक्रम में इन से बड़ा, शत्रु मोह, भगवान ॥ 3126 ग

प्रभो मोह से मुझे बचाओ, मोह पाश से मुझे छुडाओ ।
जब से हूँ इस जग में आया, तब से इस ने घेरा पाया ।

सूरज को जिमि मेघ लुकावे, प्रभु दर्शन को मोह दुरावे ।
करिये प्रभु इस मोह को दूर, जो कर सकूँ तव दर्श ज़रूर ।
मम मन स्थिर तभी हो पाये, हृदय माँझ जब मोह न आये ।
मोह संमोहन में जब डाले, जन को माया के वश घाले ।
प्रभु दर्शन न स्थिर हो पाये, निष्फल जन का परिश्रम जाये ।
प्रभो बचाइये दे निज हाथ, कभी बिकूँ न मोह के हाथ ।

दो॰ मोह से राखो दूर ही, दो निज चरणि प्यार ।
तव दर्शन प्रतिपल करूँ, स्थिरता मन में धार ॥ 3127 क
अस्थिर हो न मन मेरा, करो विनय मनजूर ।
मेरे मन में तुम रहो, सभी विघ्न हो दूर ॥ 3127 ख
काम क्रोध व लोभ हैं, और मोह बलवान ।
है इन सब का शिरोमण, अहंकार भगवान ॥ 3127 ग

जिस मन अहंकार का वास, वहां पर दर्शन की न आस ।
योग का इस को शत्रु जानूँ, इस को महान विघ्न हि मानूँ ।
प्रकटे चित्त में जिस ही काल, दर्शन लुप्त भये तत्काल ।
अहंकार से जग उपजाया, अहंकार से उपजी माया ।
अंहकार अज्ञान का रूप, विघ्नों का प्रत्यक्ष स्वरूप ।
अहंकार जब चित्त समाये, प्रभु दर्शन तब लेश न भाये ।
अहंकारी का ऐसा रूप, जैसे रावण भया था भूप ।
अथवा जैसा कंस नरेश, समझ सका न प्रभु को लेश ।
दर्शन से अहंकारी दूर, वह तो गर्व में रहता चूर ।

दो॰ प्रभु विनय स्वीकारिये, हो दूर अहंकार ।
स्थिर रहे मन दर्श में, हे जीवन आधार ॥ 3128 क

अनवस्थित मन न हो मम, रहे अचल सब काल ।
रूप आप का ग्रहणाकर, शांत रहे हर हाल ॥ 3128 ख

मैंने प्रभु विक्षेप बखाने, मम मन में जो रहत समाने ।
उन के सन्मुख कोई न शूर, तव कृपा से ही होवें दूर ।
विक्षेप सभी को करें अधीन, शूर भी हों उन सन्मुख दीन ।
दया तुम्हारी यदि हो पाय, टिकने तब विक्षेप न पाय ।
मैं तव किरपा को ही मानूँ, अन्य उपाय न कोई जानूँ ।
वस अब दया का ही दो दान, शांत मेरा मन हो भगवान ।
जब आयें विक्षेप डरान, संग में ही 'सहभुव' वे लान ।
*सहभुव उन के संगी नाथ, पीडित करते जीव अनाथ ।
कृपा होगी यदि तव दयाल, हो 'सेवक' का न बांका बाल ।
'सहभुव' के मैं भेद बताऊँ, विनय आप से फिर कर पाऊँ ।
उन के न मुझे वश में लाना, उन से मुझे सदा बचाना ।

(१८) दृढ़ता से गहूँ तेरे चरण (3130/5)

दो॰ सहभुव चार विशेष हैं, दुःख है उन में एक ।
'दौर्मनस्य' है दूसरा, भयदायक हर एक ॥ 3129 क
'अंगमेज्यत्व' तीसरा, इस को लें पहचान ।
चौथा 'श्वास-प्रश्वास' हि, ये लो चारों जान ॥ 3129 ख

जब विक्षेप का हो प्रभाव, दुखी भये जन का तब भाव ।
सुख का श्वास न उस को आये, पीड़ित हो कर जन कुरलाये ।

सहभुव (योग दर्शन I-31) चार है :- (1) दुख (distress) (2) दौर्मनस्य (despair, dejection) (3) अंगमेज्यत्व (Shakiness, nervousness) (4) श्वास प्रश्वास (disordered inbreathing and outbreathing)

मन में उस के खुशी न आये, लाख यत्न चाहे कर पाये ।
नस नाडी हों शिथिल महान, यह विक्षेप की है पहचान ।
उखड़ा उखड़ा होवे श्वास. यही चिह्न विक्षेप का खास ।
इन चिन्हों से हो पहचान, जभी विक्षिप्त को हो पुमान ।
ये विक्षेप संग उपजायें, विक्षेप के सहभुव कहायें ।
कष्ट प्रदाता ये महान, इन से कैसे पाऊँ त्राण ।

दो॰ **त्राण मिले किस विध मुझे, किस विध मन हो शांत ।**
किस विधि यह चित्त मेरा, होय पुनः न भ्रांत ॥ 3130 क
अन्य उपाय न सूझता, बिन किरपा हे नाथ ।
मम विनय स्वीकार कर, करिये मुझे सनाथ ॥ 3130 ख
विनय यही तव चरण में, बार बार भगवान ।
सहभुव वा विक्षेप ये, सकें न कर परशान ॥ 3130 ग

व्याधि से प्रभो मुझे बचाओ, समीप मेरे स्त्यान न लाओ ।
संशय से प्रभो राखो दूर, अप्रमादी मैं बनूँ ज़रूर ।
आलस मेरे पास न आये, अविरति नहीं मोहे सताये ।
भ्रांति करे नहीं मुझ को भ्रांत, दर्शन कर मैं रहूँगा शांत ।
दृढ़ता से गहूँ तेरे चरण, अनवस्थित होय न मेरा मन ।
राखो मुझ से दुख को दूर, मन रहे सदा सुखी जरूर ।
दुख से कांपे नहीं शरीर, उखड़े श्वास नहीं हो अधीर ।
मेरी विनय सुनिये भगवान, करिये मेरा सदैव त्राण ।
योग मार्ग में विघ्न अनेक, तन मन अपना उन में एक ।
उपद्रवकारी यही महान, करिये रक्षा हे भगवान ।

दो॰ **तेरी रक्षा पाय कर, विघ्न न आये एक ।**
मम विनय स्वीकारिये, इक तेरी ही टेक ॥ 3131 क

मम विनय प्रभु आप से, बार बार हे नाथ ।
जीवन मेरा सफल कर, दे कर निज तुम हाथ ॥3131 ख

*सकल कोष इस जीव के, सब का हो यह काम ।
जिमि चौरासी से बचूँ, प्राप्त करूँ तव धाम् ॥ 3131 ग

पांच कोष तुम ने दिये, है अन्नमय एक ।
कहें प्राणमय दूसरा, कर्म करे प्रत्येक ॥ 3131 घ

कहें मनोमय तीसरा, जिस की शक्ति अपार ।
चौथा है विज्ञानमय, मानव तन आधार ॥ 3131 ङ

अन्तिम है आनन्दमय, सुख का जो है सार ।
इन कोषों में जीव को, बांधा तुम करतार ॥ 3131 च

एक विनय है आप से, मुक्त करो हे नाथ ।
इन कोषों से छूट मैं, रहूँ आप के साथ ॥ 3131 छ

हिरण्यमय ये कोष हैं, सुन्दर है आकार ।
जीव देह में आय कर, करता इन से प्यार ॥ 3131 ज

यही महान विडंबना, यही अविद्या सार ।
जीव घिरा अज्ञान से, करता तन से प्यार ॥ 3131 झ

---

* जीव के पांच कोष
(1) अन्नमय कोष
(2) प्राणमय कोष
(3) मनोमय कोष
(4) विज्ञानमय कोष
(5) आनन्दमय कोष

तन ही अन्नमय कोष कहाय, बंधा जीव जब इस में आय ।
इसे ही जाने स्थिर आवास, और बनता विषयों का दास ।
इस दुर्गत से प्रभो बचाओ, इस बंधन से मुझे छुड़ाओ ।
तन में आ मैं दुख बहु पाये, रोम रोम मम मुझे दुखाये ।
बारबार ही रोग सताये, एक क्षण भी चैन न आये ।
व्याधि लगी हैं मुझे अनेक, लागे और जब छूटे एक ।
लागे यह तन मुझ को भार, व्याधि करे जब इसे लाचार ।
कौन कहे है तन सुख मूल, यह तो सकल दुखों का मूल ।

दो॰ दुख के सागर देह को, कहें अन्नमय कोष ।
चौरासी के चक्र में, जीवन पड़ा सदोष ॥ 3132 क
विनय यही है नाथ जी, पड़ूँ न बारंबार ।
दुखी देह की कैद में, हो विनय स्वीकार ॥ 3132 ख

अगिनत तन इस जीव ने पाये, बढ़ चढ़ कर सब दुख हैं लाये ।
अब तो हो मम विनय प्रवान, बहुर न मिले यह देह भगवान ।
जहां तक याद मुझे है नाथ, पीड़ा ने नहीं छोड़ा साथ ।
पीड़ा पाछे पीड़ा पाऊँ, नाथ बिना मैं किसे सुनाऊँ ।
मेरा रक्षक नहीं को और, और न मेरा कहीं भी ठौर ।
पीड़ा की यह गाथा नाथ, निरन्तर चल रही मम साथ ।
इस गाथा को करो सम्पूर्ण, खेल चौरासी का हो पूर्ण ।
जल रहा हूँ मैं दुख की आग, क्या लिखा यही मेरे भाग ।
भाग्य विधाता जग करतार, दुख ही दुख क्या जीवन सार ।
सकल दुखों का देह है मूल, मैं न पाऊँ फिर इस को भूल ।

दो० बहुर जन्म नहीं हो मम, बहुर न पाऊँ देह ।
बहुर न आऊँ जगत में, विनय मेरी बस यह ॥ 3133 क
दुख पूर्व विस्मरण भये, इस भव के हैं याद ।
कांपत मम कंकाल है, कर के उन को याद ॥ 3133 ख
इसी देह के कारणे, भया हूँ बहु खवार ।
देहों की यह शृंखला, टूटे कब करतार ॥ 3133 ग
आस मुझे इक आप की, किसी की है न और ।
ठुकराइये न दास को, जिस को और न ठौर ॥ 3133 घ
प्रभो निमाना दास यह, है पड़ा मंझधार ।
गिडगिडाय कर कर रहा, विनय करो स्वीकार ॥ 3133 ङ

मंझधार से पार लगाना, बहुर जन्म से मुझे बचाना ।
ऐसी देह न पाऊँ बहुर, पीड़ देत जो सब ही ठउर ।
पांच कोष से मुक्त कराओ, चौरासी से मुझे बचाओ ।
तन जो अन्नमय कोष कहाय, वह तो दुख पै दुख दे पाय ।
*कोष प्राणमय दूसर नाथ, रहता तन के जो है साथ ।
उस बिन तन नहीं होय सजीव, सुखदुख के अनुभव की नीव ।
वहन करावे वह सब पीर, होत निः सहाय जन भी धीर ।
उसने जाल विखेर विशाल, दीना जीव को बंधन डाल ।
प्राण अपान समान व्यान, उदान पांच में बंटा प्राण ।
पांचों ने है घेरा डाल, जीव को कीना परम निढ़ाल ।

---

* **Nervous system.**

दो॰ जीव पड़ा इस जाल में, होवे कैसे मुक्त ।
एक युक्ति ही सूझती, होय योग में युक्त ॥ 3134

प्रभो करो मुझे योग से युक्त, इसी विधि मैं सकूँ हो मुक्त ।
पर इक और भी बंधन नाथ, वह भी खुले बस तेरे हाथ ।
वह तो जीव को इमि जलाये, एक भी क्षण जिमि सुख न पाये ।
वह तो मनोमय है प्रभु कोष, भरे हैं जिस में सारे दोष ।
वह तो कोष है दृढ़तम नाथ, प्रमाथी वा बलबत्तर साथ ।
उसे सका न कोई भी तोड़, तव किरपा बिन मुख को मोड ।
मेरी विनय है तेरे पास, तव चरणों में हो विश्वास ।
दौड़ धूप हो चित्त की शांत, मन की दूर हो सकल भ्रांत ।

दो॰ मम विनय स्वीकार कर, करिये मन मम शांत ।
बंधन काटो जीव का, दूर सकल हो भ्रांत ॥ 3135

प्रभु जी मन है बहुत हठीला, चले न इस संग को भी हीला ।
कृपा आप की यदि हो पाये, 'सेवक' के वश तब ही आये ।
वश आये तो हो निस्तार, बन्धन से हो मम उद्धार ।
ऐसी किरपा अब कर पाओ, इस बन्धन से मुझे छुडाओ ।
मन का पाश पिचाश समान, मुझे बचाओ दया निधान ।
चंचल मन की तरंग अनेक, जो भयंकर एक से एक ।
वृत्तियों का वे नाम धरायें, वश किसी के जो नहीं आयें ।
क्लिष्ट अक्लिष्ट सबन के भेद, सब पहुंचावें जन को खेद ।
उन सबन से मिले जो त्राण, ऐसी किरपा करो भगवान ।

दो॰ वृत्तियों का निरोध हो, मन मेरा हो शांत ।
तेरी किरपा जब भये, तभी दूर हो भ्रांत ॥ 3136 क

वृत्तियों के निरोध बिन, है संभव न योग।
तव किरपा को पा सकूँ, करो मुझे इस योग ॥ 3136 ख

क्लिष्ट वृत्ति दे दुख भयंकर, अक्लिष्ट वृत्ति भी है न सुखकर।
इन दोनों से मुझे छुडाओ, निरोधावस्था में ले जाओ।
अथवा होय एकाग्र शांत, तव ध्यान में बैठ एकांत।
मेरा मन हो तव अधीन, विषयों में नहीं पड़ हो दीन।
शक्तिशाली यह मन जो नाथ, विषयों ने इसे कीन अनाथ।
अधः पतन यह घोर महान, जीव की होती इस से हान।
इसी हानि से प्रभो बचाओ, मन मेरा निज चरणी टिकाओ।
'सेवक' का हो तभी कल्याण, नहीं तो दुखी रहें ये प्राण।

(१९) शिव संकल्प हो मेरा चित्त (3139/4)

दो॰ मम विनय तव चरणों में, मन को करो अधीन।
विषयों के जंजाल में, पड़ कर न हो दीन ॥ 3137

तेरी रचना है यह चित्त, टिकता नहीं यह किसी निमित्त।
दूर दूर यह भागा जाये, हो जन जागा या सो पाये।
इधर उधर यह उड़ ही जाये, जन को नींद में सोया पाये।
जागृत में बेशक हो होश, तो भी चित्त दिखावे जोश।
इस का दिव्य ऐसा प्रभाव, कथा न जाये इस का स्वभाव।
ज्योतियों में सर्वोत्तम ज्योत, कथन करें किमि वह उद्योत।
अनादि पखेरू है यह खास, बिना पंख ही उड़े आकाश।
इस की गति की कहें क्या बात, घूमे क्षण में लोक यह सात।

दो॰ विनय यही स्वीकारिये, करिये मन यह शांत।
जन्म मरण में डालता, रह कर सदा भ्रांत। 3138 क

रह कर सदा भ्रांत यह, करता जीव खवार ।
यही नरक में ले चले, इस का क्या इतबार ॥ 3138 ख
जितना है यह बलवत, उतना ही शैतान ।
विनय करूँ मैं आप से, मुझे बचाओ आन ॥ 3138 ग

शैतानी से इसे हटाओ, शिव संकल्प में प्रभु लगाओ ।
तव चरण का कर के ध्यान, यह सके पा तत्त्व ज्ञान ।
इस मन से ही भक्त तिहारे, इस मन से ही मुनिवर सारे ।
इस मन से ही तत्त्व ज्ञानी, इस मन से ही योगी ध्यानी ।
इस मन से ही वीर यशस्वी, इस मन से ही परम मनस्वी ।
इस मन से ही वेद ज्ञाता, इस मन से ही वर प्रदाता ।
इस मन से परमारथ साधें, इस मन से जन तुझे अराधें ।
इस मन को जो कर ले शुद्ध, वेद कहें वह जन प्रबुद्ध ।

दो० बुद्ध वही इस जगत में, जिस का मन हो शुद्ध ।
यही विनय तव चरण में, मन मेरा हो शुद्ध ॥ 3139

बुरी बात न चित्त में आये, मन सदा शिव भाव ही ध्याये ।
मन जानूँ इक देव विशेष, जीव संग जो रहत हमेश ।
ऐसी दया प्रभो कर पायें, दिव्य भाव ही इस में आयें ।
शिव संकल्प हो मेरा चित्त, तव किरपा हो इसी निमित्त ।
विरोध भाव न निज में लाये, सब सम मित्र भाव रख पाये ।
दिव्य गुणों का हो आगार, वास करे प्रभो तेरे द्वार ।
तेरा संग न त्यागे लेश, रहे तव चरणि स्थिर विशेष ।
अनन्य भाव से तुझे ध्यावे, त्याग तुझे यह कहीं न जावे ।

दो० यह विनय स्वीकारिये, चित्त उजागर होय ।
मेरे मन में हो प्रभो, दूषित भाव न कोय ॥ 3140 क

ऐसा होवे चित्त यह, सब का चाहे हित्त ।
वैर भाव न कभी करे, कोसे किसी निमित्त ॥ 3140 ख
ज्ञान का प्रतीक चित्त, और धृति का रूप ।
अन्तर ज्योति बसत है, घट में दिव्य अनूप ॥ 3140 ग

चित्त की शक्ति को पहचानें, हम इसे इक देव ही मानें।
जीव के रहत सदा ही संग, सदा प्रकाशित इस का अंग।
मेरी विनीत विनय यह नाथ, पड़े न विषयों के यह हाथ।
दिव्य वस्तु क्यों होय मलीन, शक्ति पुंज चित्त हो न दीन।
सकल जीवों में जिस का वास, और न जिस बिन कर्म हो खास।
उस मन को प्रभो दो वरदान, शिव संकल्पी करो भगवान।
अजर अमर है जिस का रूप, जिस में बसत अतीत अनूप।
वर्तमान का साक्षी जोय, भविष्यत का भी ज्ञाता होय।
विनय करूँ प्रभो उसी निमित्त, शिव संकल्प हो मेरा चित्त।

दो॰ मेरे मन को हे प्रभो, करिये शिव संकल्प ।
चंचलता को त्याग दे, पाप करे न अल्प ॥ 3141

भूत भविष्यत सारे काल, वर्तमान का जाने हाल।
करूँ विनय मैं उसी निमित्त, शिव संकल्प हो मेरा चित्त।
होता बन जिस यज्ञ रचाया, जीवन का विस्तार कराया।
करूँ विनय मैं उसी निमित्त, शिव संकल्प हो मेरा चित्त।
चारों वेदों का जो ज्ञान, आधुनिक वा जो है विज्ञान।
जिस में सकल समाया नाथ, है गति जीव की जिस के हाथ।
करूँ विनय मैं उसी निमित्त, शिव संकल्प हो मेरा चित्त।
कारज बिना जिस न हो पाये, सब परिश्रम विफल हो जाये।

दो॰ जीव मात्र की चेतना, का जो है आधार ।
प्रभो उसी मम चित्त में, होवें शुद्ध विचार ॥ 3142 क
वास करे जो देह में, अजर अमर बलवान ।
तीव्र गामी चित्त मम, शुद्ध रहे भगवान ॥ 3142 ख
शुद्ध रहे यह मन सदा, हे मेरे भगवान ।
बैठ रहा जो देह इस, जिमि रथ में रथवान ॥ 3142 ग

प्रभो मेरी यह विनय पुकार, चित्त रहे शुद्ध सब प्रकार ।
*इस में तीन विकार महान, किमि वे दूर हों हे भगवान ।
सदा से संगचलि हैं आये, इस कारण मन चैन न पाये ।
है असमंजस यही महान, छूटे यह संग किमि भगवान ।
मन का मल किमि हो दूर, और किमि विक्षेप हो दूर ।
किस विध आवरण हटे महान, मेरी उलझन यही भगवान ।
तीन विकार ये हैं दुखदायी, कर किरपा तुम बनो सहायी ।
जब तक किरपा हो नहीं नाथ, इन का छूटे न कभी साथ ।

दो॰ तव किरपा से छूटता, मल विक्षेप का साथ ।
आवरण भी न रह सके, तव किरपा हो नाथ ॥ 3143

मल ने मन को कीन मलीन, रोग ग्रस्त जिमि जन हो दीन ।
शक्तिवान अशक्त हो जाये, रोग जभी आ उसे दबाये ।
शक्तियों से बढ़ शक्ति मानूँ, मन को प्रबल परम मैं जानूँ ।
मल ने मन को रोगी कीन, भया है दीनों से अतिदीन ।
मन का मल जब ही धुल पाये, मन का बल तब सबन लखाये ।
मन का मल पर धुल तब पाये, तव किरपा जब जन पा जाये ।

* मन के तीन विकार = मल, विक्षेप, आवरण

बिन कृपा नहीं बनती बात, बात यह है सब को साक्षात।
'सेवक' पर भी किरपा कीजो, मन इस का निर्मल कर दीजो।

दो॰ मन निर्मल जब होत है, बन जाता तब काम।
तेरी कृपा बिन प्रभो, किसी न पाया राम ॥ 3144 क
किरपा तब जब होयगी, होगा निर्मल चित्त।
प्रभु का दर्शन कर सके, 'सेवक' इसी निमित ॥ 3144 ख
निर्मल मन में दर्श हो, मिले प्रभु का ज्ञान।
भ्रांत बुद्धि की दूर हो, लेय सत्य पहचान ॥ 3144 ग
प्रभु विनय स्वीकार कर, बुद्ध करो मम शुद्ध।
सद्गुरु चरणों में सदा, रहे युक्त मम बुद्ध ॥ 3144 घ

बुद्धि शुद्ध ही स्थिरता पाये, बुद्धि स्थिर जन मुक्त कराये।
बुद्धि स्थिर मम हो भगवान, स्थित प्रज्ञ ही सुखी पुमान।
स्थित प्रज्ञ के लक्षण जोय, कर किरपा मुझे दीजो सोय।
प्रज्ञा स्थिर जब जन की होवे, स्थित ज्ञान को तभी वह गोवे।
स्थित प्रज्ञ जब जन हो पाये, विषय वास न चित्त में आये।
मुझे भी ऐसा वर दो नाथ, त्यागे वासना मन का साथ।
कामना सकल होय निर्मूल, जग की माया लागे धूल।
आत्म तोषी मैं हो जाऊँ, यही प्रभो तव किरपा पाऊँ।

(२०) माया प्रभो न मुझे लुभाये (3146/1)

दो॰ आत्मतोषी कीजिये, दया करो भगवान।
विनय यही स्वीकारिये, स्थिरता का दो दान ॥ 3145 क
स्थिरता का दो दान जी, रहे न लेश क्लेश।
सुख की स्पृहा विगत भये, उपजे राग न लेश ॥ 3145 ख

उपजे राग न लेश मन, क्रोध काम हो दूर।
निर्भय मुझ को कीजिये, विनय करो मंजूर ॥ 3145 ग
स्थित प्रज्ञा के लक्षण, जो जगत विख्यात।
उन सब का ही दान मैं, ग्रहण करूँ साक्षात ॥ 3145 घ
यदि होवे शुभ की प्राप्ति, अथवा होय अशुभ।
सब काल यह मन प्रभो, समरस रहे अक्षुभ ॥ 3145 ङ

प्रभो विनय मैं यही सुनाऊं, यदि तेरी मैं किरपा पाऊँ ।
फूलूँ मैं नहीं पाकर शुभ, उदास होऊँ न देख अशुभ ।
दोनों में रहे चित्त समान, किरपा करिये यही भगवान ।
तेरी किरपा को पा जाऊँ, योग मार्ग को मैं अपनाऊँ ।
मुझे भुलाना नहीं मम नाथ, मम जीवन तन्तु है तव हाथ ।
किसी से मैं न भय को मानूँ, तव शक्ति सर्वोत्तम जानूँ ।
भक्त वह जो भय नहीं खाये, निर्भय ही तो भक्त कहाये ।
जिस के चित्त में भय का वास, उसे न तुझ पै है विश्वास ।
तेरा भक्त हूँ मैं भगवान, क्यों फिर भय करे परेशान ।
प्रभु चरणि लग हो सब भय दूर, विनय 'सेवक' की हो मंजूर ।

दो० निर्भय मुझ को कीजिये, हे मेरे भगवान।
स्थित प्रज्ञ मैं बन सकूँ, यही मिले वरदान ॥ 3146

राग जगत का नहीं सताये, माया प्रभो न मुझे लुभाये ।
किस के वश यह माया आये, सत से कोसों दूर भगाये ।
राग सदा मम मन भरमाये, बुद्धि किमि तब स्थिरता पाये ।
राग विराग का शत्रु होय, बुद्धि देत विवेक को खोय ।
तब विवेक जन को मिल पाये, मन वैराग्य को जब ग्राहे ।

बिन वैराग्य मन सूना होय, राग ग्रसा पीड़ा को गोय ।
जब से हूँ इस जग में आया, राग के वश मैं बच न पाया ।
राग चौरासी का हि कारण, मम विनय प्रभु करो निवारण ।

दो॰ प्रभो राग को वरजिये, दान करो वैराग ।
'सेवक' की है यह विनय, तव पग हो अनुराग ॥ 3147 क
एक दोष है और भी, करता अस्थिर बुद्ध ।
क्रोध सभी हैं जानते, योगी जन प्रबुद्ध ॥ 3147 ख
योगी जन प्रबुद्ध जो, उन की सीख महान ।
क्रोध शत्रु से दूर ही, साधक रहे सुजान ॥ 3147 ग
क्रोध को अग्नि कहत हैं, उस का धूम्र जोय ।
मलिन करे वह बुद्धि को, सोच सके न सोय ॥ 3147 घ
राजस गुण से ऊपजा, पापों से भरपूर ।
क्रोध रिपु से मन मेरा, रहे सदा ही दूर ॥ 3147 ङ
क्रोध काम जब आन कर, करते हैं प्रहार ।
दुर्बल मेरी बुद्ध है, सह सकत नहीं वार ॥ 3147 च

मम बुद्धि को प्रभो संभालो, अस्थिरता से इसे बचालो ।
बह जाये न मोह की धार, गिर पाये न काम की मार ।
यह जले न क्रोध की आग, लोभ से बढ़े न इस का राग ।
अंधी न अंहकार से होय, ऐसी स्थिरता को यह गोय ।
ज्ञान तभी जन को हो पाये, बुद्धि में जब स्थिरता आये ।
उसी साधक को मिलता ज्ञान, स्थिर राखे जो बुद्धि सुजान ।
होत अस्थिरता से है हान, ज्ञानी की स्थिर बुद्धि पहचान ।
कठिन काम यह है भगवान, माँगू अतः मैं तुम से दान ।

दो॰ स्थिर बुद्धि का दान दो, और साथ विज्ञान ।
ज्ञान कोष प्रबुद्ध हो, यही विनय भगवान ॥ 3148 क
यही विनय भगवान है, ज्ञान कोष के हेत ।
ज्ञान बिना जीवन विफल, जैसे ऊसर खेत ॥ 3148 ख

जीवन मेरा विफल न होय, तव चरणि लग ज्ञान को गोय ।
हानि लाभ में रहे समान, करे नहीं शुभ अशुभ परशान ।
स्थिर बुद्धि की यही पहचान, दीजिये मुझ को भी वरदान ।
बुद्धि स्थिर जब जन ले पाय, दुख दर्द नहीं चित्त समाय ।
है बुद्धि का स्वभाव निराला, क्षण भीतर हो लुप्त उजाला ।
इक क्षण संशय में हो लीन, भ्रांत में इक क्षण होत विलीन ।
इक क्षण अविवेकी हो पावे, इक क्षण वह तर्क में जावे ।
वितर्क में हो इक क्षण विलीन, इक क्षण विवेकी हो प्रवीन ।

दो॰ तर्क अतर्क वितर्क में, वा संशय में लीन ।
भ्रांति में भी डूब कर, होती बुद्धि क्षीन ॥ 3149 क
क्षीन अवस्था से प्रभो, इसे बचावो आन ।
स्थिर अवस्था देय कर, युक्त करो भगवान ॥ 3149 ख
स्थिर अवस्था लाभ कर, इन्द्रिय संयम होय ।
सब अंगों को वश करे, उत्तम योगी सोय ॥ 3149 ग
उत्तम योगी सोय है, स्थित समाधि होय ।
उसकी उपमा कूर्म है, अंग सिकोड़े जोय ॥ 3149 घ
अंग सिकोड़े कूर्मवत, रह विषयों से दूर ।
ऐसी अवस्था दें प्रभु, जग रहूँ जग दूर ॥ 3149 ङ

प्रभु करो मम विनय स्वीकार, मम जीवन का करो उद्धार।
अन्नमय कोष मनोमय कोष, प्राण और विज्ञानमय कोष।
सभी में जीवन का हो सार, देखूँ आनन्द कोष अपार।
आनन्द कोष आत्म का रूप, आत्मा की यहां ज्योति अनूप।
आत्मा ईश्वर का है रूप, स्वप्रकाशक जो परम अनूप।
ज्योति दिव्य सब घट प्रकाशक, सकल कोष दुख दर्द विनाशक।
तन प्राण मन बुद्धि उजागर, यह कोष आनन्द का सागर।
प्रभु कृपा से वास हो मेरा, इसी कोष में सदा बसेरा।

दो॰ इसी कोष में वास हो, रहूँ सदा सानन्द।
यही विनय है दास की, पुरवो परमानन्द ॥ 3150

मेरी विनय सुनो भगवान, तुम से इस पल मागूँ दान।
आनन्द कोष होय मम वास, रहे आनन्द सदा मम पास।
भूमि ऊपर स्वर्ग समाया, वह कोष आनन्द कहलाया।
पुण्य जनों का उस में वास, योग साधन में रत जो खास।
तन मन प्राण और जो बुद्ध, जिस साधक के होवें शुद्ध।
भाग्यवान वह पुरुष कहावे, इसी कोष में स्थिरता पावे।
प्राप्त करे वह परम आनन्द, सन्मुख उस के सभी सुख मन्द।
वर्णन उस का किमि हो पावे, सो जाने जो उस को पावे।

दो॰ उसी कोष में मैं रहूँ, हे मेरे प्रभु राम।
बिना कृपा की आपके, संभव न यह काम ॥ 3151 क
उसी तथ्य को जान कर, 'सेवक' धरता ध्यान।
प्रभु किरपा जिस विध भये, होवे मम कल्याण ॥ 3151 ख

झाड़ बुहार के अपना चित्त, तव मूरत वहां करूँ स्थित।
चित्त में रहे न कुछ विशेष, मूर्त बिना तव और जो शेष।

यह विनय जो होय मंज़ूर, सिद्ध भये मम योग ज़रूर ।
धारूँ चित्त में मैं तव रूप, धारणा जो है परम अनूप ।
उस सम और न धारणा ध्यान, करे जो जन का हित महान ।
अन्य उठे यदि कोई सवाल, उसे निकारो प्रभु तत्काल ।
धारणा में जो विघ्न विशेष, दूर समूल हो बचे न लेश ।
योग धारणा जीवन दायी, प्रभु धारणा मुक्ति प्रदायी ।
योग धारणा सुख की दाता, प्रभु धारणा मोक्ष प्रदाता ।
योग धारणा ज्ञान की मात, प्रभु धारणा से हो साक्षात ।
योग धारणा से मिले ध्यान, प्रभु धारणा से जन कल्याण ।
योग धारणा से शक्ति बोध, प्रभु धारणा से मन का शोध ।

दो० **करूँ धारणा नेम से, और प्रभु का ध्यान ।**
चित्त एकाग्र होय मम, मिले प्रभु से ज्ञान ॥ 3152 क
मिले प्रभु से ज्ञान जब, धारणा होय स्थिर ।
चित्त रहे प्रभु रूप में, रहूँ काल इमि चिर ॥ 3152 ख
रहूँ काल इमि चिर प्रभु, प्रयास बिना मैं नित ।
तव कृपा जब हो प्रभो, होय एकाग्र चित्त ॥ 3152 ग

बिन प्रयास ही लागे ध्यान *, बिन प्रयास ही मिलत ज्ञान ।
बिन प्रयास ही प्रभु लखाये, बिन प्रयास हि सन्मुख आये ।
बिन प्रयास सुन पावे बात, बिन प्रयास होवे साक्षात ।
बिन प्रयास दिव रूप लखाये, बिन प्रयास सद्गुरु की दाय ।
बिन प्रयास ही देव मिलाप, बिन प्रयास मन्त्र का जाप ।

---

* धारणा और ध्यान में इतना भेद है कि धारणा में यत्नपूर्वक इष्ट के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया जाता है परन्तु ध्यान अवस्था की प्राप्ति होने पर बिना प्रयास चित्त इष्ट के स्वरूप में स्थिर रहता है ।

बिन प्रयास लोकान्तर वास, बिन प्रयास ही चाले श्वास।
बिन प्रयास सुनें दिव नाद, बिन प्रयास उपजे आह्लाद।
बिन प्रयास होवे रोमाञ्च, प्रभु कृपा से आये न आञ्च।

(२१) दूसर रूप न सन्मुख आये (3156/8)

दो॰ धारें प्रभु को चित्त जब, सुख का जो आवास।
प्रभु के दिव प्रसाद को, पावें बिन प्रयास ॥ 3153 क
प्रभु ध्यान जन जब करे, हो अन्तर प्रवेश।
अन्तर की सब शक्तियां, होवें प्रकट विशेष ॥ 3153 ख

विनय प्रभो मेरी यह खास, तव चरणि होय दृढ़ विश्वास।
बिन विश्वास न धारणा होय, श्रद्धा से चित्त दृढ़ता गोय।
धारणा करूँ मैं मन रख रूप, शक्ति पुञ्ज जो योग स्वरूप।
रूप इसी आकर्ष महान, मन भ्रमर, प्रभु कमल समान।
एक बार जब मन में आये, चित्त हठी प्रभु चरणि समाये।
चित्त रमे नहीं और स्थान, और नहीं प्रभु रूप समान।
मन के पट प्रभु जभी आयें, सब दृश्य ही लुप्त हो पायें।
धन्य जीव जो प्रभु को ध्यावें, योग धारणा को कर पावें।

दो॰ योग धारणा सफल हो, लें जो प्रभु मन धार।
मन न प्रभु बिन वश भये, अनुभव का यह सार ॥ 3154 क
इसी तथ्य को समझकर, करे निहोरा दास।
निज रूप प्रभो दान दो, और चरणि विश्वास ॥ 3154 ख
प्रभु चरणि विश्वास हो, रूप रमें मन मांहि।
योग युक्त हो कर रहे, 'सेवक' जग के मांहि ॥ 3154 ग

धारणा मम जब होय स्थिर, प्रभो ध्यान का दान दो फिर ।
तेरा रूप बसे मम चित्त, मन डोले नहीं किसी निमित्त ।
रूप तेरा मन इमि समाये, स्वर्ण की प्रतिमा जिमि लख पाये ।
तेरा ध्यान रहे सब काल, दर्शन को कर भयें निहाल ।
इक क्षण भी न सहें वियोग, ध्यान का ऐसा दृढ़ हो योग ।
शिशु का माता से जो प्यार, बच्छड़े का धेनु से प्यार ।
लोभी का जो धन से प्यार, जीव मात्र का तन से प्यार ।
तुलसी का जो राम से प्यार, सूरदास का कृष्ण से प्यार ।

दो० ऐसा प्यार मुझ को मिले, तव चरणों का नाथ
विसरूँ तुम्हें न इक पल, करिये मुझे सनाथ ।। 3155

जो मुलख का आप से प्यार, शलभ का जो दीप से प्यार ।
सीपी का जो स्वाति से प्यार, चकवे का जो चान्द से प्यार ।
मीन का जल से जो है प्यार, लोह का चुम्बक से जो प्यार ।
सर्प का चन्दन से जो प्यार, मोर का घन से जो है प्यार ।
पत्नी का जो पति से प्यार, मीत का मित्र से जो प्यार ।
गोपों का जो श्याम से प्यार, शिव से हिम कन्या का प्यार ।
सावित्री-सतवान का प्यार, भक्तों का भगवान से प्यार ।
महा प्रभु से आप का प्यार, महाप्रभु का आप से प्यार ।

दो० ऐसा प्यार मुझ को मिले, तव चरणों में नाथ ।
विसरूँ तुम्हें न इकपल, करिये मुझे सनाथ ।। 3156

ऐसा प्यार ध्यान का मूल, यही ध्यान का परम असूल ।
मेरी विनय यही भगवान, मिले प्यार व ध्यान का दान ।
ध्यान में रहे न कुछ भी सुध, विसर जाय देह गेह की वुध ।

ध्याता 'सेवक' ध्येय हैं नाथ, ध्यान में दोय रहें इक साथ।
ऐसा क्षण न कभी भी आये, ध्यान की तार टूटन पाये।
'सेवक' की बस विनय यह नाथ, रहना ध्यान में इसके साथ।
मन का त्राटक ऐसा लागे, तव मुख को क्षण भर न त्यागे।
दूसर रूप न सन्मुख आये, रूप तेरा ही सदा ध्याये।

दो॰ तव रूप से भिन्न यदि, आये सन्मुख नाथ।
दूर करो उस रूप को, चित्त रहे तव साथ ॥ 3157

तेरा रूप ही मन निहारे, दूजा रूप न वह सत्कारे।
तेरा रूप आकर्षक नाथ, मन मेरा रहे तेरे साथ।
तेरा रूप मन इमि समाये, दूसर रूप न इसे सुहाये।
मन में तेरा तेज समाये, बुद्धि तेरा ज्ञान ग्राहे।
मन को मस्त करो भगवान, भूले इस को जग का ज्ञान।
रूप न जग का इसे सुहावे, शब्द न इस को जग का भावे।
जगती का रस नीरस लागे, जग की गंध सुगंध न लागे।
जग जंजाल से राखो दूर, मेरी विनय करिये मंजूर।

दो॰ रूप रस और गंध से, जग के नाथ स्पर्श।
शब्द जगत का श्रवण कर, लेश न उपजे हर्ष ॥ 3158 क.
लेश न उपजे हर्ष मन, जगती का सुख पाय।
मन में तब आनन्द हो, जब तव रूप लखाय ॥ 3158 ख.

मानस पट पर हे मम नाथ, स्वनाम लिखो तुम अपने हाथ।
मन पर जब लिपि बद्ध हो नाम, जपूँ सदा मैं राम ही राम।
मन पर अंकित हो तव रूप, सदा लखूँ बस एक स्वरूप।
स्वरूप वहीं, जो तेरा नाथ, और न हो को उस के साथ।
कभी मैं तेरे पग निहारूँ, अपना आपा उन पै वारूँ।

पगनख तेरे फिर मैं देखूं, उन में दिव ज्योति को पेखूँ ।
तेरा आसन सन्मुख आये, निरख उसे मन सुख को पाये ।
कमलासन में बैठे राम, कमल सम हो मम आयु तमाम ।

दो॰ **कमलासन को निरख कर, सीख मिले भगवान ।**
योग युक्त हो मैं रहूँ, मगन प्रभु के ध्यान ॥ 3159

तेरा ध्यान योग का सार, तेरे ध्यान से सुख अपार ।
तेरे रूप को मैं निहारूँ, निज प्राण मैं तुझ पै वारूँ ।
ऐसे ध्यान का दीजो दान, निरखूँ तव तन ही भगवान ।
रूप तेरा अनूपम नाथ, निरख निरख जन भये सनाथ ।
इस में कितना दिव्य आकर्ष, निरख निरख चित्त उपजे हर्ष ।
परब्रह्म जो तन है धारा, वही रूप मम बना सहारा ।
दिन रात इस रूप को देखूँ, जटा जूट स्वरूप को पेखूँ ।
पगड़ी और दुपट्टा धारी, रूप उसी पर भी बलिहारी ।
मुलखराज भी रूप तिहारा, 'सेवक' का जो बना सहारा ।

दो॰ **इन तीनों ही रूप में, आओ तुम दिन रात ।**
करत रहूँ सिमरन प्रभु, जब तक है यह गात ॥ 3160 क.
फिर जीवन उपरान्त भी, रहना तुम मम साथ ।
अधम "सेवक" की सद्गति, केवल तुमरे हाथ ॥ 3160 ख.

चमत्कारी है प्रभु का रूप, क्या जानें क्या इसमें गूप ।
ऐसी है इस रूप में शक्ति, जाने वही जिस के मन भक्ति ।
जिस क्षण जन प्रभु को ध्यावे, उसी क्षण कृपा प्रभु की पावे ।
"सेवक" का तो अनुभव ऐसा, प्रभु का रूप कल्पतरू जैसा ।
प्रभु की शरणी "सेवक" आया, इस ने जग में सब कुछ पाया ।

*प्रभु के ध्यान के फल अनेक, आर्तहारी फल जानो एक ।
अर्थप्रदायी यही ध्यान, इसी ध्यान से मिलता ज्ञान ।
इसी ध्यान से मुक्ति पायें, ज्ञानी बन जो प्रभु को ध्यायें ।
तन का रोग जभी चलि आय, मन लेता तब प्रभु को ध्याय ।
उस का शीघ्र होत उपचार, ऐसी प्रभु की दया अपार ।
चिन्ता चित्त को जब सताये, प्रभु का चिन्तन उसे मिटाये ।

(२२) तेरी शरणी आर्त मैं आया (3163/3)

दो॰ प्रभु का चिन्तन जब करूँ, फल मिले तत्काल ।
तन और मन के दुख को, हरते प्रभु दयाल ॥ 3161 क.
हरते दीन दयाल हैं, जन के दुख अशेष ।
ध्यान प्रभु का जो करे, रहते दुख न लेश ॥ 3161ख.

ऐसा दुख न जग में कोई, प्रभु का ध्यान हरे नहीं जोई ।
'सेवक' पर जभी दुःख आया, सदा ही उस प्रभु को ध्याया ।
प्रभु तब कीनी विपदा दूर, दीनदयाल प्रभु मशहूर ।
भक्तों का इतिहास पुरान, साक्षी में कई हैं प्रमाण ।
दुख में कीना गज ने याद, रक्षा उस की भई निर्बाध ।
द्रौपदी ने ध्यान लगाया, रक्षा उस की प्रभु कर पाया ।
बसंती का सुत भया बिमार, स्मरण किया उस प्रभु इक बार ।
प्रभु ने उस को कीन निरोग, ध्यान प्रभु का उत्तम योग ।
मेरी विनय यह है करतार, इस को प्रभो करो स्वीकार ।

* प्रभु ध्यान के विशिष्ट चार फल इस प्रकार से हैं :-
१. आर्तहारी- अर्थात दुखों को दूर करने वाला ।
२. अर्थप्रदायी-मनोवांछित धन आदि देने वाला ।
३. ज्ञान प्रदायी-जिज्ञासा की तृप्ति कर ज्ञान देने वाला ।
४. मोक्ष प्रदायी-जन्म मरण के चक्कर से मुक्तकरने वाला ।

दो॰ भीड मुझ पर जभी पडे, तुझे करूँ मैं याद ।
मेरी रक्षा हो तभी, तुझ से प्रभु निर्बाध ॥ 3162.

जिस ने तेरा ध्यान लगाया, उस ने सब सुख तुम से पाया ।
रामरत्ती ने ध्यान लगाया, पाप ताप उस का मिट पाया ।
कीन हरनाम दास ने ध्यान, सब कष्टों से मिल गया त्राण ।
दु:ख में थी अवधूता नार, प्रभु ध्यान से लागी पार ।
रोगी मानकचन्द दलाल, प्रभु ध्यान से भया निहाल ।
*भूला वन के पथ नारायण, स्मरण किया जब उस नारायण ।
पहुँच गया वह बिन प्रयास, ऋषिकेश के आश्रम खास ।
प्रभु के ध्यान की महिम अपार, शारद शेष कथ मानें हार ।

दो॰ ध्यान प्रभु का जो करे, संकट से हो पार ।
राम लाल के रूप में, शक्ति छिपी अपार ॥ 3163 क.
1* आर्तहर प्रभु को कहें, 2* आर्त करें जब याद ।
आर्तहर ले 3* आर्तहर, कैसी महिम अगाध ॥ 3163 ख.

आर्त जभी चल शरणी आयें, प्रभु शरणागत को अपनायें ।
यह सनातन विरद है तोरा, जिसे प्रभो तू कभी न तोड़ा ।
तेरी शरणी आर्त मैं आया, काल चक्र ने मुझे दबाया ।
सब के आगे चीख चिलाया, मुझे किसी ने नहीं बचाया ।
तेरा विरद सुना जब नाथ, मैं आया तव शरणी अनाथ ।
हर दम करूँ मैं तुम को याद, करूँ न इक भी क्षण बरबाद ।
बीत गया है बहुत अब काल, देखिये आकर मेरा हाल ।
पिस रहा हूँ काल के चाक, काल न छोड़े बिन तव धाक ।*4

---

*देखें दोहा संख्या 1347 से 1351 तक .
1.* आर्तहर- दुख को हर लेने वाले ।
2.* आर्त-दुखी मनुष्य ।
3.* आर्त- दुख ।
4.* धाक- रोहब, प्रभाव, डर

दो॰ तेरे बिन प्रभाव के, छूट पाये न दास ।
काल चक्र से हे प्रभो, मेरा दृढ़ विश्वास ॥ 3164 क.
बुरा हूँ फंसा मैं प्रभु, इस भयंकर मार ।
घूमा लाख चौरासी, मिला न राखन हार ॥ 3164 ख.
इस योनि में आय मिले, पर ब्रह्म अवतार ।
रामलाल योगेश्वर, अब तो हो निस्तार ॥ 3164 ग.

राम लाल ने बहुत उबारे, भवसागर से पार उतारे ।
हरिहरानन्द लागा पार, रामरत्ती का भया उद्धार ।
रामा को उन पार उतारा, आशुतोष को मिला सहारा ।
नर्वद नदी के साध अनेक, दीने तार प्रभु प्रत्येक ।
ब्रह्मानन्द पुष्कर का साध, थी उस पर प्रभु दया अगाध ।
प्रभु प्यारा दास नारायण, तर गया पा दया नारायण ।
गुलाब देवी प्रभु को ध्याय, उत्तम गति थी लीनी पाय ।
* घुग्घु को जब प्रभु अपनाया, उस का मित्र कृष्ण हो पाया ।
माता ने भी दर्शन पाया, जान पाये को प्रभु की माया ।
जिस प्रभु ने सभी को तारा, 'सेवक' का भी वही सहारा ।

दो॰ जग का तारन हार जो , राम लाल भगवान ।
उन चरणों में है विनय, हो मेरा कल्याण ॥ 3165 क.
नृसिंह मूर्ती का किया, बचपन में उद्धार ।
'सेवक' पर भी हो दया, इसे लगावें पार ॥ 3165 ख.
इसे लगावें पार अब, कर विनय स्वीकार ।
प्रभु का ही है आसरा, प्रभु ही मम आधार ॥ 3165 ग.

* देखें दोहा संख्या 1351 से 1355

प्रभो आप की कितनी दाया, मुझे स्मरण जो है कर पाया ।
दीन रहा नहीं यह जन दीन, इस की दीनता भयी विलीन ।
यह दीन जग पूज्य हो पाया, दीन जनों पर अति तव दाया ।
दीन जभी तव आया द्वारे, उस के दुख तुम सभी निवारे ।
ऋषि देवी पर विपदा आई, बालपने विधवा हो पाई ।
शरण गही उस तेरी नाथ, अनाथा हो गई वह सनाथ ।
ऋषि देवी भयी ऋषि महान, सब जग करता उस का मान ।
*द्रौपदी मारी विपदा रही, आ शरणी तव सुखी वह भयी ।
संकट हारी विरद तिहारा, 'सेवक' का बस यही सहारा ।
इस 'सेवक' की यही पुकार, शरणी राखो राखन हार ।

दो॰ मम विनयं स्वीकारिये, करूँ विनय कर जोड़ ।
'सेवक' पापी देखकर, लेना न मुख मोड़ ।। 3166 क.
आर्तबन्धु इक आप हैं, मैं निमाना आर्त ।
आर्ति हरो मम आर्तिहर, कथी सकल मैं वार्त ।। 3166 ख.
इक बात प्रभु और भी, कहना चाहूँ साथ ।
गुणकारी है ध्यान तव, आप दरिद्र नाथ ।। 3166 ग.

प्रभो आप का ध्यान महान, अर्थकारी है तेरा ध्यान ।
करे दरिद्र ध्यान तुम्हारा, उस का दारिद मिटता सारा ।
भूखा चाहे रोटी नाथ, धनी चाहे धन लागे हाथ ।
को संतान की करता मांग, कार्य सिद्धि की किसी को तांग ।
किसी को यश की हो अभिलाष, किसी को मान आदर की आस ।
को भी इच्छा का की होय, तेरा ध्यान करे जब सोय ।
तव किरपा तब जन पा जाये, पूर्णमनोकाम हो पाये ।

* श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल की शिष्या द्रौपदी देवी । देखें रामायण दोहा -1195 से आगे ।

जिस की कामना जो भी होय, तव कृपा से हो पूर्ण सोय।

दो॰ पूर्ण जन की कामना, ध्यान करे तव नाथ।
'सेवक' को भी हे प्रभो, करता ध्यान सनाथ ॥3167 क.
'सेवक' की सब कामना, पूरा करत ध्यान।
प्रभु का ध्यान महान है, मम मन लीना जान ॥ 3167 ख.
प्रभु ध्यान जब करत हूं, दर्शन देत दयाल।
मन की हालत किमि कथूँ, 'सेवक' होत निहाल ॥ 3167 ग.

प्रभु का ध्यान ही ऐसा एक, कामनापूर्ण करे प्रत्येक।
कल्प वृक्ष सम प्रभु का ध्यान, अथवा काम धेनु लो जान।
प्रभु को स्मरण करे सब काल, प्रभु हों उस पर परम दयाल।
'सेवक' की यही विनय पुकार, प्रभु को सिमरूँ सब प्रकार।
जागत सोवत प्रभु हों साथ, रग रग चित्त की हो प्रभु हाथ।
अन्तः करण हो तेरा वास, यही विनय मम प्रभु है खास।
मन में तेरा ही हो ध्यान, बुद्धि में तेरा ही हो ज्ञान।
चित्त में चिन्तन तेरा होय, अहंभाव तव चरणि विगोय।
ऐसा होय जो तव उपकार, जानूँ विनय मेरी स्वीकार।
अन्तः करण के करण तमाम, उन का सिरफ ध्यान हो काम।

दो॰ अन्तः करण प्रभो मम, अर्पित है तव चरण।
मम विनय स्वीकारिये, 'सेवक' तेरी शरण ॥ 3168 क.
सभी अंग जो दास के, इन पर तव अधिकार।
सहायक बनें ध्यान में, प्रभो करो उपकार ॥ 3168 ख.

मम अंगों में प्रभु बस जाओ, आंखों में तुम तुरत समाओ।
कानों में तव गूंजे नाम, सुन पाऊँ मैं राम ही राम।

जिह्वा में वह शक्ति समाये, तेरी ही जो अस्तुत गाये ।
तेरा रूप व तेरा नाम, तव अस्तुत ही मेरे राम ।
करे मेरे यह मन को शांत, जग में रह कर हो न भ्रांत ।
मेरे पैर चलें उसी ओर, तुम भेजो प्रभो जिस ही ठोर ।
हाथों का बस यही हो काम, लागें सदैव रहें तव काम ।
चरणामृत प्रसाद पिपासु, जिह्वा मम, हो मन जिज्ञासु ।

(२३) ध्यान ज्ञान का दृढ़ संयोग (3170/7)

दो॰ अंग अंग को शक्ति दो, लागें तेरी सेव ।
तव ध्यान में मन रहे, पावे तेरा भेव ॥ 3169 क.
तव ध्यान में जब रहूँ, कार्य सभी हों सिद्ध ।
इसी कृपा के कारणे , ध्यान तेरा प्रसिद्ध ॥ 3169 ख.

बहुजन करते तेरा ध्यान, उन को ध्यान से मिलता ज्ञान ।
चित्त एकाग्र जब हो जाये, प्रभु का दर्शन तब हो पाये ।
प्रभु दर्शन है ज्ञान का मूल, शाश्वत है यह अटल असूल ।
जिस किसी तव ध्यान कमाया, जन उसी ने ज्ञान को पाया ।
बहुजनों की क्या कहूँ बात, मुलखराज सब को साक्षात ।
विद्या पढ़ी न स्कूल में जाय, शास्त्र पढ़े नहीं उन मन लाय ।
किया न विद्यालय में प्रवेश, वेद पढ़े नहीं उन थे लेश ।
प्रभु किरपा से ध्यान कमाया, ज्ञान सकल ध्यान से पाया ।

दो॰ ज्ञान ध्यान से पाकर, मुलख भये थे विज्ञ ।
पंडित जन थे शंसते, "शास्त्रों में सुविज्ञ ॥" 3170 क.
जिस ध्यान से मिलत है, प्रभो ज्ञान विज्ञान ।
वही ध्यान मुझ को मिले, यही विनय भगवान ॥ 3170 ख.

मेरी विनय करिये स्वीकार, 'सेवक' का प्रभो हो उपकार ।
भरमों से यह घिरा है नाथ, सत्य लगे नहीं इस के हाथ ।
बहुश्रुत कहते इस को लोग, विद्वान बने न को बिन योग ।
पढ़ पढ़ कर है मति भरमाई, भ्रांति दूर भयी नहीं राई ।
चित्त एकाग्र होय बिन नाथ, लागेगा नहीं कुछ मम हाथ ।
मुझे ध्यान का दीजो दान, और ज्ञान भी हो भगवान ।
ध्यान ज्ञान का दृढ़ संयोग, हो जभी तभी होता योग ।
नाथ मुझे दो ध्यान का दान, तभी सकूँ मैं पा तव ज्ञान ।

दो॰ तव ज्ञान को पा सकूँ, करके तेरा ध्यान ।
प्रभो मुझे स्वीकारिये, भक्त निमाना जान ॥ 3171 क.
मैं जिज्ञासु भक्त हूं, ज्ञान की मुझे प्यास ।
ऐसी किरपा कीजिये, पूरण हो मम आस ॥ 3171 ख.

पूरण भये प्रभो मम आस, ज्ञान मिले कुछ ऐसा खास ।
तृप्त भये मम सब जिज्ञास, ध्यान में कर तव दर्शन खास ।
ज्ञान से चित्त जब होय तृप्त, माया में कभी होय न लिप्त ।
समाधि को तब जन पा जाये, पूरण भक्त वही कहलाये ।
ऐसा भक्त रहत प्रभु संग, होता वह प्रभु का इक अंग ।
अथवा वह प्रभु का ही रूप, ज्ञानी भक्त का यही स्वरूप ।
प्रभो मुझे भी दीजिये ज्ञान, और ऐसा दृढ़तम हो ध्यान ।
समाधि में सभी बीते काल, माया नज़र न आये त्रिकाल ।

दो॰ माया में यदि मन रमे, उस को प्रभु दो मोड़ ।
निज चरणि कर स्थिर उसे, समाधि में दो जोड़ ॥ 3172 क
विनय सुनो इस दीन की, समाधि का दो दान ।
कृत कृत्य तभी जन भये, हे मेरे भगवान ॥ 3172 ख.

नर तन को तुम है दिया, सार्थक यह तब होय ।
अखण्ड समाधि जब लगे, शरण नाथ की गोय ॥ 3172 ग.
जगती में यह भटकता, दर दर ठोकर खाय ।
कूकर सम ललचात है, शांति किस विध पाय ॥ 3172 घ.
तेरे चरणों की शरण, कर ग्रहण हे नाथ ।
समाधि में जब थिर भये, लगे परमार्थ हाथ ॥ 3172 ङ

समाधि का जब दान ग्राहूँ, कृतकृत्य मैं तभी हो पाऊँ ।
समाधि में जब हो चित्त लीन, विसरे निज को जन यह दीन ।
तेरा ही बस रूप लखाये, तुझ में ही यह मन खो पाये ।
प्राणों में तव गूँजे नाम, मम तन बने तव ही यह धाम ।
रंग चढ़े तव ही बुद्ध मांझ, सदा रहूं इमि प्रातः सांझ ।
तेरा दर्शन तेरा रूप, चित्त बसे बस तव स्वरूप ।
तन का लेश न रहे कुछभान, तुम बिन दीखे नहीं कुछ आन ।
मेरा रूप बने तव रूप, तेरा रूप हो मेरा रूप ।
तेरे रूप में इमि समाऊँ, अपना रूप भूल ही जाऊँ ।

दो० रूप प्रभु में लीन रह, विसरूँ अपना रूप ।
भूलूँ सारी सृष्टि को, निरखूँ प्रभु का रूप ॥ 3173 क.
ऐसी समाधि दीजिये, बिछडूं न क्षण एक ।
पड़ा रहूँ तव चरण में, पग पर मस्तक टेक ॥ 3173 ख.

पड़ा ध्यान में तव यश गाऊँ, देवों को तव महिम सुनाऊँ ।
देवों के तुम हो अधिदेव, देव भी करते प्रभु तव सेव ।
तेरी महिमा सुन कर नाथ, गान करें वे तेरी गाथ ।
जग के स्वामी जगदाधार, देवों के भी रचन हो हार ।

विष्णु ब्रह्मा रुद्र महान, वे सब करें तव गुण का गान।
इन्द्र देव स्तुती कर पाये, सूर्य चमक तव रूप लखाये।
वरुण करे तव शक्ति बखान, सोम कथे तव शील महान।
बृहस्पति तव ज्ञान बतावे, मरुत देव तव यश फैलावे।

दो॰ विश्व देव तव गुण कथें, महिमा करें बखान।
भवानी आदि देवियाँ, नमन करें भगवान ॥ 3174

गायत्री तेरा ध्यान बतावे, सरस्वति तव महिमा गावे।
लक्ष्मी समृद्धि को प्रकटावे, दुर्गा तव शक्ती दरशावे।
काली कहे तुम काल स्वरूप, दुष्टों के लिए यम का रूप।
गंगा यमुना मिल कर गायें, जग में तेरा यश फैलायें।
देवी देव विश्व के सारे, गान करें मुझे लगें प्यारे।
सभी दृष्य ये आप दिखावें, समाधि में जब जन बिठलावें।
दर्शन दिव्य प्रभु के प्यारे, भाग्यवान जन करते सारे।
प्रभु की किरपा वे जन पाते, देवों का भी आशिष पाते।

दो॰ मुझ पर भी प्रभु कर दया, दिव्य दर्श पा जाऊँ।
माया के दृढ़ पाश से, छूट समाधि लगाऊँ ॥ 3175

समाधि में मैं बैठ के नाथ, दिव्य दर्शन पा बनूँ सनाथ।
देवों के मैं दर्शन पाऊँ, तेरी चरणी शीश झुकाऊँ।
तेरे अंश ही सब हैं देव, कथन करें योगी जन भेव।
सकल देव तेरे गुण गावें, नाना विध से तुझे रिझावें।
तव अंगों में उन का वास, उन के हो तुम ही आवास।
उन का और न ठोर ठिकान, कथन यह योगिन का भगवान।
मुझ को निज यह रूप दिखाओ, विराट रूप में सन्मुख आओ।

विराट रूप तेरा भगवान, दिव्य ज्ञान की है वह खान ।

दो॰ उसी रूप को निरखता , रहूँ सदा हे नाथ ।
तेरा दर्शन मैं करूँ, तेरे ही रह साथ ।।3176 क.
यह विनय स्वीकार कर, करिये मुझे सनाथ ।
जन्म जन्म का दास हूं, हे विश्व के नाथ ।। 3176 ख.

जन्म जन्म के मम संस्कार, सन्मुख आ कर सब प्रकार ।
करें उजागर पूर्व ज्ञान, समझ पाऊँ भव का विज्ञान ।
पूर्व जन्म को मैं लख पाऊँ, जन्मों की अनुभूति लखाऊँ ।
मंद कर्म कीने जो नाथ, जो संस्कार लाये हैं साथ ।
देखूँ अब मैं उन्हें समक्ष, मोक्ष का धार के मैं इक लक्ष्य ।
कर रहा उन का मैं भुक्तान, मुझे संभालो हे भगवान ।
अच्छे बुरे जो भी संस्कार, सभी निवारो हे करतार ।
रहें संस्कार जभी तक साथ, मोक्ष लगे किमि जीव के हाथ ।

(२४) द्रष्टा बन तुम्हीं को देखूं (3178/12)

दो॰ विनय मेरी स्वीकार कर, दीजो ऐसा दान ।
निज कर्मों को देखकर, शरण गहूँ तव आन ।। 3177 क.
बीज रूप संस्कार जो, आवें मम समक्ष ।
ध्यान द्वारा नष्ट हों, प्रभु ही हो मम लक्ष्य ।। 3177 ख.

जन्म जन्मान्तर के संस्कार, जीवन के जो होंय आधार ।
उन को भोगे सब संसार, भोग-2 नहीं पावे पार ।
उन का संग्रह होत निरन्तर, संख्या में न आवे अन्तर ।
संस्कारों का भण्डार अथाह, कौन सके पा उसकी थाह ।

आवागमन का चक्र चलाये, जिस से जीव न छूटन पाये ।
अन्य न सूझे मुझे उपाय, शरण तेरी बस यही उपाय ।
जो जन शरण तेरी प्रभु आय, चक्र चौरासी से छुट पाय ।
संस्कार करें न उसे हैरान, भक्तों पर तव दया महान ।
शूली का तुम शूल बनाओ, राई पर्वत को कर पाओ ।

दो० मेरे सभी संस्कार तुम, करो दयामय क्षीण ।
जन्म मरण में न पडूँ, विनय करे यह दीन ॥ 3178

सहस्त्रबार है विनय पुकार, श्रवण करो जग के करतार ।
दबा संस्कारों के हूं भार, बिन किरपा नहीं लागूँ पार ।
तव किरपा मैं जब पा जाऊँ, तब संस्कारों से छुट पाऊँ ।
मम संस्कार हों ऐसे क्षीण, हों निर्बीज बन कर वे दीन ।
उनसे रहे नहीं तब कुछ भय, चौरासी का इमि होवे क्षय ।
जीवन का बस एक ही काम, निर्बीज समाधि बख्शो राम ।
निर्बीज समाधि का दो दान, यही विनय मम हे भगवान ।
वृत्तियों का जहँ हो निरोध, अन्तः करण का पूरण शोध ।
मन और बुद्धि का जहाँ लय, चित्त व अहं का जहां हो क्षय ।
उस स्थिति में मुझे पहुंचाओ, मेरी विनय प्रभो सुन पाओ ।
द्रष्टा बन तुम्हीं को पेखूँ, तेरी सृष्टि को नहीं देखूं ।
निज स्वरूप का ही हो भान, अन्य रहे न लेश भी ज्ञान ।

दो० वृत्तियों का निरोध हो, अनुभव का अवसान ।
केवल जहां पर आत्मा; का ही होता भान ॥ 3179 क.
उस निर्बीज समाधि में, बिठलाओ हे राम ।
मम विनय स्वीकार कर, करिये पूरण काम ॥3179 ख.

निर्बीज समाधि कैसी होय, बता सके नहीं उस को कोय ।
जिसे मिले वह ही ले जान, और सके नहीं उसे बखान ।
सकल सृष्टि का जहां हो लय, संस्कारों का भी पूर्ण क्षय ।
ग्रसे काल को भी जहां काल, ग्रहों की भी रुके जहां चाल ।
सूरज चाँद का नहीं प्रकाश, दिव्य ज्योति का होत विकास ।
संकल्प करें नहीं परशान, विकल्प का भी न जहां स्थान ।
विचारों का न जहां आवेश, माया का जहां नहीं प्रवेश ।
वह इक लोक अनोखा जानूँ, उस सम दूसर न कहीं मानूँ ।

दो० उसी लोक में ले चलो, समाधि में भगवान ।
माया का न बीज जहां, अलौकिक जो इस्थान ॥ 3180 क.
मम विनय स्वीकार कर, दीजो वही समाध ।
भूलूँ मैं इस जगत को, मोक्ष मिले निर्बाध ॥ 3180 ख.

प्रभो मुझे दो मोक्ष का दान, जिस का न मुझ को कुछ ज्ञान ।
नाम सुनूँ पर जानूँ नाहीं, क्या स्थिति वह होत गोसाईं ।
जब तक खुद मैं वहां न जाऊँ, क्या होती वह किमि बतलाऊँ ।
कोई कहे इस को निर्वाण, मोक्ष उसी का है अभिधान ।
मुक्ति कह को उसे स्वीकारत, इस को को कैवल्य पुकारत ।
विविध नाम इस के सुन पाऊँ, है यह क्या न जानन पाऊँ ।
जिज्ञासु जन को उस का चाव, दुख का जहाँ अत्यन्त अभाव ।
सर्व क्लेशों से छुट पावे, जीव मुक्ति को जब पा जावे ।

दो० सर्व क्लेशों से छुटे, सर्व दुखों की हान ।
मुक्ति को जन पाये जब, कहें उसे निर्वाण ॥ 3181 क.
पाये जन निर्वाण जब, उस का जो स्वरूप ।
उस का वर्णन न करें, रहस परम यह गूप ॥ 3181 ख.

इस रहस्य को जो कथे, उस का झूठा ज्ञान ।
अनदेखी जो वस्तु है, कैसे करें बखान ॥ 3181 ग.

विनय मेरी प्रभो सुन पाओ, उस दशा में मुझे ले जाओ ।
सर्व सुखों का जो है धाम, दुख सुख का जहां पै न काम ।
जहां पै रात ही हो न मीत, दिन की वहां पै क्या प्रतीत ।
वहां का सुख न सुख कहलाये, जीव वहां आनन्द समाये ।
वहां पै दुखों का नहीं नाम, वहां अवस्था सम अभिराम ।
सुख आनन्द में जो है भेद, स्पष्ट करें उस भेद को वेद ।
जीवन में जन सुख को पाये, मिले मुक्ति आनन्द समाये ।
मैं भिक्षुक आनन्द का नाथ, झोली भर दो करो सनाथ ।

दो॰ भिक्षा मुझ को दीजिए, करिये मुझे सनाथ ।
मुक्ति का वरदान देन, वरद पसारें हाथ ॥ 3182 क.
वरद पसारें हाथ प्रभु, सेवक अपना जान ।
करत विनय जो रात दिन, बैठ देश सुनसान ॥ 3182 ख.

मुक्ति से बढ़ क्या हो नाथ, जो मांगे यह दास अनाथ ।
सद्गुरु से यह शिक्षा पायी, इस से बढ़ न कोई कमायी ।
ऋषियों ने यह लक्ष्य बताया, जीवन का उद्देश्य जताया ।
जग का सुख स्वर्ग के भोग, विषयासक्त ही मांगें लोग ।
मेरी विनय और मम पुकार, खोलो मुक्ति का प्रभो द्वार ।
जन्म लेय बहु दुख हैं देखे, शांति के कोई क्षण न पेखे ।
है यह चक्र कैसा भगवान, जिसे चौरासी करें बखान ।
छूटन इस से है दुश्वार, मुझे छुड़ावो हे करतार ।

दो॰ बिन किरपा करतार के, सके कौन जन छूट ।
इस चौरासी चक्र से , है जो परम अटूट ॥ 3183 क

मम विनय स्वीकार कर, मुझे छुडावो नाथ ।
इस 'सेवक' का भाग्य तो, है तुम्हारे हाथ ॥ 3183 ख.
कब से हूँ मैं घूमता, चौरासी के फेर ।
सकूँ न इस को जान मैं, करो कृपा बिन देर ॥ 3183 ग.

करो कृपा मुझ पर भगवान, मुक्ति का मुझे दीजो दान ।
स्वर्ग की मुझ को चाह न लेश, नर तन पा दुख मिले अशेष ।
देव दनुज दानव दुखयारे, लोक लोकान्तर दुख में सारे ।
कौन लोक जहां दुख न नाथ, बिके हैं माया के सब हाथ ।
माया सब को नाच नचाये, कैसे इस से को बच पाये ।
उपजी मम मन यही जिज्ञास, तव चरणों में मिले निवास ।
जहां पर दुख का न आभास, विश्व में केवल यह थल खास ।
ऐसा अगर हो और स्थान, मुझे बतलाओ हे भगवान ।
अपना आसन वहीं जमाऊँ, तुझ को फिर मै नहीं सताऊँ ।

दो॰ तुझे सताऊँ न प्रभो, बिन कारण भगवान ।
मुझे विदित न और थल, तेरे चरण समान ॥ 3184 क.
यहीं मुक्ति का वास है, सुख के ये ही धाम ।
अन्य जगह से है प्रभो, नहीं मुझे कुछ काम ॥ 3384 ख.

जन्म मरण से बचना चाहूँ, तेरे चरण समाना चाहूँ ।
जन्म असंख्य भोग के आया, सब जन्मों में दुख ही पाया ।
कभी बना मैं सूअर नाथ, पशु बंधा कभी खूंटी साथ ।
कभी मैं जलचर था भगवान, जल आश्रित थे मेरे प्राण ।
जलचर जीवों को मैं खाता, मैं भी भक्ष्य बना इक प्रातः ।
उस जीवन से भयी गलानी, बना मैं तब नभचर इक प्राणी ।

नभचर बन मैं उड़त आकाश, सकल लोक था मम आवास।
वहां भी चैन मुझे न आया, भूमि मध्य मैं तब उपजाया।

(२५) तेरी किरपा अब पहचानूं (3188/7)

दो॰ भूमि मध्य उपजाय कर, बना मैं क्षुद्र कीट।
मार सहूं मैं सबन की, जो चाहे ले पीट ॥ 3185

कई बार इस विध उपजाया, अब है नर तन को मैं पाया।
पाछल की सभी बात विचार, खड़े हों रोंगट मम इक बार।
मानव देह की यही विशेष, विचार सके निज गति को लेश।
जलचर भूचर नभचर देह, सब को मिलती पीर है येह।
मानव तन भी सहत क्लेश, पर इस की है एक विशेष।
इस तन में कर सकत विचार, किस विध जीव का हो उद्धार।
जन्म मरण से किमि छुट पाये, किस विध दुख सागर तर जाये।
मन उस के जिज्ञास समाये, * रहबर उस को को मिल पाये।

दो॰ रहबर को वह खोजता, बन जिज्ञासु जीव।
रहबर खुद आ मिलत है, नुंकता एक अजीब ॥ 3186 क.
मिल पाये जिमि मुलख को, रामलाल भगवान।
मुलख मिले तिमि दास को, 'सेवक' था अनजान॥3186 ख.
स्वयं प्रभु ने आय कर, जागृत कीना जीव।
"मुलखराज गुरु को मिलो," थी यह घटन अजीब॥3186 ग
महाप्रभु कभी राम को, मिले स्वयं थे आन।
थे मुलख को राम मिले, स्वयं नगर में आन ॥ 3186 घ.

*रहबर :-रास्ता दिखाने वाला; गुरु

तिमि 'सेवक' को आ मिले, सद्गुरु मुलख महान ।
घर बैठे ही मिल गये, गुरु रूप भगवान ॥ 3186 ङ
'सेवक' को गुरु जब मिले, बंध गई तब आस ।
अब तो रहबर हैं मिले, मोक्ष मिलेगा खास ॥ 3186 च.
आस लता बढ़ती गई, गुरु दीना विश्वास ।
प्रतिक्षण कृपा पा रहा, यह दासन का दास ॥ 3186 छ.
गुरु किरपा से ही मिला, जन्म मनुज का मीत ।
यही दिखलाई सद्गुरु, इस जीव से प्रीत ॥ 3186 ज.

प्रभु किरपा से तन है पाया, मनुष्य जन्म दुर्लभ जो गाया ।
मोक्ष पाने का खुला द्वार, तन मनुष्य का दीन करतार ।
उपजा जीव मनुष्य के रूप, प्रभु आये तब गुरु के रूप ।
कदम कदम पर करें संभार, सद्गुरु का मुझ पर उपकार ।
अज्ञ जीव था क्या पहचाने, न मूर्खता वश कुछ भी जाने ।
जीवन की नौका बिठलाय, अज्ञात शक्ति थी इसे चलाय ।
ऐसे पथ पर ले वह चाले, लक्ष्य मोक्ष का ही संभाले ।
शैशव से था पार कराया, बाल्यकाल मध्य पंहुचाया ।

दो॰ बाल्य काल में लायकर, दिव्य रूप में आय ।
विद्या दीनी नाथ ने, 'सेवक' किमि कथ पाय ॥ 3187

ऐसी विद्या नाथ पढ़ाई, जिस का भये उपयोग स्थायी ।
बहु विषयों का ग्राह्या सार, संस्कृत से इस जन का प्यार ।
यह भाषा बहु वर्ष पढ़ाई, ज्ञान दिया प्रभु जी सुखदायी ।
महिमा कथ न सकूँ प्रभु तेरी, जीवन डोरी ग्राही मेरी ।
जब तक बाल्यकाल अनजान, कुपथ पै दीना न तुम जान ।

कुसंगत से सदैव बचाया, सुसंगत में हठात लगाया ।
मुझे तो था न लेश विवेक, कर्म कराते तुम प्रत्येक ।
सत्पुरुषों के संग बिठाते, संकट से थे सदा बचाते ।
नगर डगर में मुझे घुमाया, सुन्दर अनुभव मुझे कराया ।
ऐसी प्रभु जी तेरी दाया, वह जाने जिस को अपनाया ।

दो॰ यह 'सेवक' अपनाय कर, प्रथम अवस्था माँझ ।*
उच्च शिक्षा का दान दे, दर्शन दीने साँझ ॥ 3188 क.
जो कुछ था तुम तब कहा, मेरे अंकित चित्त ।
उसी मार्ग पर चल रहा, जान उसी में हित ॥ 3188 ख.

प्रथम अवस्था कीन सहाय, कभी न तव जन उसे भुलाये ।
दोषों से था मुझे छुड़ाया, संकट से था मुझे बचाया ।
कुमार्ग से था मुझे हटाया, सन्मारग पर मुझे लगाया ।
अहंकार को कीना चूर, काम क्रोध से राखा दूर ।
माया ने जब कीन प्रहार, तुम ने तब था लीन संभार ।
यदि मैं उस के वश हो जाता, दर दर भटकत मुंह की खाता ।
तेरी किरपा अब पहचानूं, शब्द नहीं जो उसे बखानूँ ।
जभी शिशु था मुझे संभाला, जब था बालक मुझ को पाला ।
प्रौढ़ भया मम कीना त्राण, गिरूँ न विषयों में जिमि आन ।

दो॰ प्रथम अवस्था में सदा, पाया तुम से त्राण ।
जानूँ मैं उपकार तव, भया वृद्ध जब आन ॥ 3189 क.
मैं अज्ञानी बाल था, थी न तव पहचान ।
स्मरण करूँ उपकार अब, बृद्ध भया जब आन ॥ 3189 ख.

---

* जीवन की चार अवस्थायें चार आश्रमों के नाम से प्रसिद्ध हैं :-
1. ब्रह्मचर्य अवस्था 2. गृहस्थ अवस्था 3. वन प्रस्थ अवस्था 4. सन्यास अवस्था

दया की रीत अलौकिक, दिखलाई तुम राम ।
हो वर्षा जिमि मेघ बिन, कीन कृपा सुख धाम ।। 3189 ग.

तेरी किरपा होती जानी, तेरी मिली न कहीं निशानी ।
रह गुप्त तू मुझे संभाला, अबोध शिशु था मुझ को पाला ।
वायु लगे नहीं ताती लेश, ऐसी रक्षा कीन हमेश ।
स्मरण करूँ जब शैशव काल, अथवा बालपने का काल ।
अथवा सिमरूँ भरी जवानी, तव किरपा की मिले निशानी ।
भटका जभी तभी संभाला, जभी गिरा तू खड कर डाला ।
हानि से तू सदैव बचाया, बाल न बांका को कर पाया ।
तेरी मुझे न थी पहचान, इस कारण मैं रहत हैरान ।
कौन बचाये कौन तराये, न क्यों सन्मुख वह मम आये ।
धुन इसी में करत आलाप, और निरन्तर सहत संताप ।
जभी भया मैं बहुत बेहाल, दर्शन दीने तुम उस काल ।
तेरी मिली तब मुझे निशानी, दूर भयी सब मम हैरानी ।

दो॰ समझ गया उस रहस को, जिस कारण हैरान ।
*मेरे रक्षक संग है, आजन्म भगवान ।। 3190 क.
आजन्म भगवान तुम, मेरे राखन हार ।
प्रकट किया उस भेद को, दे दर्शन करतार ।। 3190 ख

जन्म जन्म का मैं तव दास, मुझे भया तब यह विश्वास ।
जन्म काल से मुझे संभाला, युवा काल तक मुझ को पाला ।
पूर्ण भया मुझे फिर विश्वास, अगले काल सुरक्षित दास ।
कर्तव्यों का जो काल कठोर, पग पग फिसलन की जहाँ ठोर ।

---

* आजन्म- जन्म से ही ।

आश्रम गृहस्थ महान बखाना, दुखी मिलें इस में जन नाना।
इस में सफल भया कोई एक, सफल भया जिसे गुरु की टेक।
मुझे मिले नहीं कुछ संताप, मेरे संग रहें प्रभु आप।
जीवन के उस नाज़ुक काल, मुझे मिले थे सद्गुरु दयाल।

दो॰ जीवन के उस काल तुम, सौंपा गुरु के हाथ।
सरल राह तब मिल गई, पड़ा न शत्रुन हाथ ॥ 3191

सद्गुरु पाया शोक नशाया, जीवन का सन्मारग पाया।
सद्गुरु पाय उजाला आया, भ्रांति का तभी भया सफाया।
मन की मैल धुली तब ऐसे, तन की साबुन से हो जैसे।
सद्गुरु मूर्ति बसी चित्त आन, जागत सोवत एक ही ध्यान।
विमुख जगत से जन हो पाया, त्याग सबन एकांत सिधाया।
तुम संभाला काल उस आय, तेरा दास जिमि खो न पाय।
पुनः कर्म में मुझे लगाया, जग में जग सम रहन सिखाया।
*आश्रम दूसर सन्मुख आया, पथ जीवन का नूतन पाया।

दो॰ बना गृहस्थी दास को, तुम संभाला भार।
'सेवक' का जिमि भक्तिमय, रहे सरल आचार ॥ 3192 क.
'सेवक' ने यह जान कर, कीन समर्पित सर्व।
बोझ उठाया नाथ ने, दूर भया मम गर्व ॥ 3192 ख.

जीवन का वह दूज पड़ाव, कर्तव्यों का जब गुरु दबाव।
कृपा कीन उस काल विशेष, निरखत 'सेवक' रहत हमेश।
जग की संपद प्रभु का प्रेम, सात्विक जीवन के सब नेम।
तुम ने सब का राखा ध्यान, स्वयं दिया बहु योग का ज्ञान।

*गृहस्थ आश्रम

जग में जग सम थे रख पाये, गृहस्थ कर्म तुम संब कराये ।
तिनके को आकाश चढ़ाया, क्षुद्र जीवको गले लगाया ।
प्रभु की मैं तब समझी रीत, दीन जनों से करते प्रीत
निज सेवक को दें सम्मान, ऐसा प्रभु का विरद महान ।

(२६) तेरी किरपा का नहीं पार (3196/1)

दो० जो दिया तुम गृहस्थ में, वह था आशातीत ।
किस मुख से वर्णन करें, तव अनोखी रीत ॥ 3193

मूर्ख था विद्वान कहलाया, जन अयोग्य सुयोग्य ठहराया ।
निर्बल बन पाया बलवान, कीना अकिञ्चन को धनवान ।
धन संपत संतान सुयोग, मैं तो था नहीं इस के योग ।
फिर भी प्रभु सब कुछ दे पाये, 'सेवक' किस मुख से गुण गाये ।
यही जानूँ प्रभु जिस के साथ, उस का भाग्य उन्हीं के हाथ ।
उस का कर्म न लागे लेखे, लाभ स्वयं उस का प्रभु पेखे ।
जिस प्रभु ने मुझे उपजाया, पावन नगरी जन्म दिलाया ।
धर्मी मात पिता मिलवाये, उच्च वंश में ले कर आये ।
भाई बहन मिलाये ऐसे, जग में देखूँ न जिन जैसे ।

दो० प्रभु की दया स्मरण कर, झुक जाये मम माथ ।
खुद लाया उन जगत में, खुद राखा दे हाथ ॥ 3194

प्रथम दिवस से देखत आया, प्रभु किरपा से जो सुख पाया ।
किस मुख से मैं करूं बखान, असीम प्रभु की कृपा जान ।
जानूँ प्रभु का महा उपकार, दीनी मुझे सुलक्षण नार ।
जन गृहस्थी भार संभाले, सेवा धर्म सकल वह पाले ।
गृहस्थ जीवन है रथ समान, जिस पै लदा हो बहु सामान ।

समाज सकल का उस पै भार, रथ के पहियों पर सब भार
रथ के चक्र जो होंय सशक्त, धुरी एक में रहें आसक्त
समतल मग जो होय अनुकूल, उड़े न पथ की किञ्चित धूल
यात्रा सुगम सुफल हो जाये, उपमा यह गृहस्थ की आये

दो॰ जब मर्याद गृहस्थ की, पालें मिल नर नार।
उन्नत होय समाज तब, "सेवक" का वीचार ॥ 3195 क.
समभाव हों दंपती, मार्ग धर्म अनुकूल।
सर पै प्रभु का हाथ हो, आवे विपद न भूल ॥ 3195 ख.
प्रभु कृपा से गृहस्थ की, रही सुरक्षित चाल।
मुलख राज वा राम जी, सदा करें संभाल ॥ 3195 ग.

जब कभी कुछ दुख था आया, प्रभु ने हाथ दे खुद बचाया
गृहस्थ के संकट किमि बतायें, क्षुब्ध समुद्र तरंग लखायें
प्रति संकट से मुझे बचाया, आती विपदा को लौटाया
'सेवक' करे न सभी बखान, प्रभो तुम्हें तो है खुद ज्ञान
स्मरण करूँ जब तेरी दाया, हो रोमांचित मेरी काया
है गृहस्थ उस भंवर समान, डूब मरें जहां बहु इन्सान
कभी कष्ट जब मुझ पै आया, तुम ने दे कर हाथ बचाया
रथ गृहस्थ का सरल चलाया, किसी क्षण भी रुक नहीं पाया

दो॰ मेरे घर को नाथ ने, कर लीना स्वीकार।
आश्रम साधन योग का, कर दीना करतार ॥ 3196 क
ऐसी कृपा नाथ की, कौन दिखाए और।
तेरी ही सामर्थ्य है, 'सेवक' को दी ठौर ॥ 3196 ख

तेरी किरपा का नहीं पार, मुझपै दया तू कीन अपार

सत्पुरुषों की संगत दीन, दूर कुसंगत से रख लीन ।
सत्कर्मों में सदा लगाया, कुकर्मों से सदैव बचाया ।
मैं तो दोषों का आगारें, तुम ने मेरा कीन उद्धार ।
तव महिमा जो भक्तन गाई, तुम ने मुझे स्पष्ट दिखलाई ।
स्मरण करूँ जब किरपा तेरी, सुध बुध भूल जाये तब मेरी ।
दुख में करूं मैं तुम को याद, दूर भये दुख उस के बाद ।
सुख में करूँ मैं तुम को याद, स्थिर रहता सुख उसके बाद ।

दो॰ सुख सागर तुम को कहें, शास्त्र वेद पुकार ।
लीन परख यह बात अब , मैने तुझे पुकार ॥ 3197 क.
स्मरण करूँ इक पलक भर, तुझे वही स्वीकार ।
उसी पलक में मिलत है, जो मांगूँ करतार ॥ 3197 ख.
तुझ जैसा दातार न, दानी परम दयाल ।
इसी सहारे जी रहा, निर्बल तव यह बाल ॥ 3197 ग.
1 *दूसर आश्रम में प्रभो, जो तव कृपा पाई ।
उसी कृपा के कारणे, आयु सुखी बिताई ॥ 3197 घ.
काल भया सब सार्थक, भया मैं पूर्ण काम ।
2 *तीजा आश्रम आ गया, बहुरें इस में राम ॥ 3197ङ
दान प्रतिभा का दिया, तुम ने तब मम नाथ ।
दी कलम संग हाथ में, और कहा "लिख गाथ"॥ 3197 च.

तीजा काल सेवा का काल, तीजा काल भक्ति का काल ।
तीजा काल ज्ञान का काल, तीजा काल त्याग का काल ।

1.* गृहस्थ आश्रम-आयु 25 से 50 तक सन् 1942 से 1967 ई॰
2.* वनप्रस्थ आश्रम-आयु 51 से 75 वर्ष सन् 1968 से 1992 ई॰

तीजा काल संयम का काल, तीजा काल साधन का काल।
तीजा काल जभी चलि आया, नाथ तभी तुम मुझे जगाया।
कहा "जगत ने योग भुलाया, भोगों में सब जग भरमाया।
साधन हीन भये सब लोग, कौन जाने क्या होता योग।
वेद वेदांग सकल ही ग्रंथ, भये पुरातन चले नव पंथ।
जिन में योग का नाम न लेश, रचें ऐसे वे ग्रंथ हमेश।

दो॰ नव पंथ जो ग्रंथ रचें, उन में योग न लेश।
योगेतर कहें बात सब, भागा योग विदेश ॥ 3198 क.
हे प्रिय तुम ग्रंथ रचो, जहां संपूर्ण योग।
भाव सुगम भाषा सरल, ग्रहण करें सब लोग ॥ 3198 ख.
जंगती में तब योग का, पुनः भये प्रचार।
पढ़ें सुनें उस ग्रंथ को, बाल वृद्ध नर नार ॥" 3198 ग.

श्रवण करी जब "सेवक" वाणी, आज्ञा प्रभु की यह उस जानी।
पड़ा सोच में वह इक बार, किमि उठाऊँगा मैं यह भार।
योग का न मुझे बहु ज्ञान, स्वल्प ही साधन कीने आन।
भाषा का भी नहीं विद्वान, शास्त्र पढ़े नहीं मैं भगवान।
मुझे क्यों सौंपा है यह काम, यह तो सिद्ध पुरुषों का काम।
तेरे चरणों में बहु सिद्ध, बढ़ चढ़ कर जो जग प्रसिद्ध।
वरण करें उन में को एक, जिसे योग की केवल टेक।
जग में तब हो ग्रंथ का नाम, रचे यदि कोई योगि ललाम।

दो॰ इस निमाने दास को, जो आज्ञा तुम दीन।
शशोपंज में है पड़ा, मन्द बुद्धि मतिहीन ॥ 3199

विनय प्रभु न मम स्वीकारी, मैं सेवक तो आज्ञाकारी।

मैं निहोरा तभी कर पाया, प्रतिभा दान करो कर दाया ।
छंदों का भी दीजो ज्ञान, ग्रंथ बने तब कृपा निधान ।
प्रभो सामग्री सब जुटाओ, लेखन हेतु निशा जगाओ ।
१* जो लिखाओ वही लिख पाऊँ, मन्दमति मैं लिपिक* कहलाऊँ ।
भूल चूक होये जभी नाथ, स्वयं सुधारो तुम निज हाथ ।
तेरी कृति में रहे न दोष, बने यह योग धर्म का कोष ।
यही विनय सेवक कर पाया, ग्रंथ प्रभु आरंभ कराया ।

दो॰ नाम धरा था ग्रंथ का, दिव रामायण आप ।
योग धर्म के ग्रंथ जो, सब का यहीं मिलाप ॥ 3200

ऋषिन रचे जो ग्रंथ महान, जिन में योग का कीन बखान ।
उन का सार ग्राह्या नाथ, और लिखाया 'लिपिक' के हाथ ।
२*पंतजलि ने जो कीन बखान, घेरण्ड ने जो दीना ज्ञान ।
३*शिव संहित में है जो आया, तुम ने सब वह प्रभु लिखाया ।
४*प्रदीपिका हठयोग का सार, योगोपनिषदों का भी सार ।
मथन किये सब योग के ग्रंथ, और रचा दिव योग का ग्रंथ ।
कृष्ण रूप में जब तुम आये, और थे जो उपदेश सुनाये ।
उन का पुनः कर दीन बखान, दिव्य रचना यह तव भगवान ।
महाप्रभु तुम्हें दीना ज्ञान, वह भी दीना जग को आन ।
ऋषिमुनियों की सीख महान, उस को दीना तू अधिमान ।

दो॰ ऋषिमुनियों की सीख को, औ' साधन सब योग
दिव रामायण में प्रभो, कीन सबन का योग ॥ 3201 क

१* लिपिक-क्लर्क
२* पंतजलि- योग दर्शन के रचयिता; घेरण्ड-घेरण्ड सहिता के रचयिता
३* शिवसंहिता-हठ योग का ग्रंथ
४* हठ योग प्रदीपिका- हठयोग का प्रसिद्ध ग्रंथ

१* ऋषियों का जो ज्ञान है, और श्रुति के माँझ ।
जो पुराण में ज्ञान है, व इतिहास के माँझ ॥ 3201 ख

(२७) पूर्ण गुरु सभी सहज न पायें (3202/4)

दो० संग्रह तुम ने सब किया, सुन्दर भाषा माँझ ।
२ *अज्ञ तज्ञ सब पढ़ सकें, स्वयं व जनता माँझ॥3201 ग
कई खण्डों में ग्रंथ की, रचना तुम करायी ।
बाल काण्ड रच कर प्रभु, सीख बहु दे पायी ॥ 3201 घ

जग को तुम ने शिक्षा दीनी, जग की नश्वरता कह दीनी ।
जग से करे न जो वैराग, परमार्थ बदा न उसके भाग ।
जिस के चित उपजे वैराग, गुरु की खोज में जावे लाग ।
गुरु की खोज सुगम नहीं होय, कठिन पुरुषार्थ कर गुरु गोय ।
योगी को ही गुरु कर जानो, बिन योग नहीं गुरु पहचानो ।
यह उमंग तेरे मन मांही, विदा भये घर से तुम साईं ।
कई प्रलोभन मग में आये, गुरु खोज में सभी ठुकराये ।
ऐसी शिक्षा तुम दे पायी, बालपने थी कीन कमाई ।

दो० बालपने की सीख तव, उच्च आदर्श महान ।
जो चालें उस सीख पर, योगी बने पुमान ॥ 3202 क.
यही विषय वन काण्ड में, स्पष्ट बताया नाथ ।
चाले थे गुरु खोज में, धर तली पर माथ ॥ 3202 ख

१* श्रुति - वेद
२* -अज्ञ - अल्प ज्ञान वाले तज्ञ-विद्वान

गुरु की खोज जो दुख सहारे, हों रोमांचित जन सुन सारे ।
इस में वर्णित वही इतिहास, रही मिल शिक्षा जिस से खास ।
गुरु खोज में जांय यदि प्राण, उस में भी जनका कल्याण ।
पूर्ण गुरु सभी सहज न पायें, मुमुक्षु गुरु बिन चैन न पायें ।
करें एक आकाश पाताल, गुरु की खोज़ में रह सब काल ।
ऐसे जन पै हो गुरु दयाल, उसे संभाले सब ही काल ।
महाप्रभु, प्रभु को मिल पाये, वन्य देश खुद लेने आये ।
स्पष्ट भयी यह बात विशेष, शिष्य से गुरु का प्रेम विशेष ।
अधिकारी शिष्य यदि मिल पाये, गुरु स्वयं आ चरणि लगाये ।
वन काण्ड में यही दिखलाया, गुरु शिष्य का स्नेह जतलाया ।

दो॰ वन काण्ड प्रभु जो लिखा, उस में सीख अनेक ।
पूर्ण गुरु को पाय कर, गहें योग की टेक ।। 3203 क.
'लिपिक' लिखा उस लेख को, जो लिखाया नाथ ।
लिखें लिखावें खुद प्रभु, कलम 'लिपिक' के हाथ।।3203 ख
विनय मेरी तुम से प्रभु, कर्म करूँ मैं सोय ।
जिमि लिखा है काण्ड इस, तिमि जीवन मम होय।।3203 ग
इस में तुम ने हैं दिये, सदुपदेश अनेक ।
'सेवक' को सामर्थ्य मिले, ग्रहण करे प्रत्येक ।। 3203 घ

हीरा गिरि को तुम अपनाया, गले कृपालानन्द लगाया ।
उस की शिष्या मेम सराही, पदवी उच्च योग जिस पायी ।
इस विध मुझ को भी अपनाओ, सदा शरण निज में रख पाओ ।
विनीत विनय मेरी यह नाथ, भाग्य अनाथ का है तव हाथ ।
ऋषियों को उपदेश सुनाये, गंगा तट पर जो जुट पाये ।

सरल रूप से सब समझाया, गूढ़ रहस्य योग बतलाया ।
मुझ को भी प्रभो दीजो ज्ञान, तव चरणि रह न रहूं अनजान ।
ज्ञान उच्च जो ऋषियन पाया, दीजो मुझ को भी कर दाया ।

दो॰ शिक्षा मुझ को दीजिये, कर विनय स्वीकार ।
तव चरणों में वास कर, हो मेरा उद्धार ॥ 3204 क
मेरा भी उद्धार कर, 'सेवक' अपना जान ।
योग शिक्षा प्रदान कर, करिये मुझे सुजान ॥ 3204 ख.
तेरे जीवन से प्रभो, मिलता जग को ज्ञान ।
भ्रमित जगत के सामने, ग्रंथ खुला जिमि आन ॥ 3204 ग.
जग मर्यादा में प्रभो, रहे सदा तुम आप ।
देखा जब परिवार को, सह रहा जो संताप ॥ 3204 घ.
त्याग वनों को आ गये, बैठे हरि के द्वार ।
बन्धु जब वहां आ मिले, लौटे अमृतसार ॥ 3204 ङ

अमृतसर प्रभु जब तुम आये, जग के भाग उदय हो पाये ।
बही योग की धार अपार, स्नान करें जिस में नर नार ।
फिर हठ योग जगत विस्तारा, राज योग को मिला सहारा ।
धर्म की फैली ध्वज आकाश, ज्ञान का भया विस्तृत प्रकाश ।
रोगिजनों को मिला सहारा, स्वस्थ भये बहु योग के द्वारा ।
ध्यान समाधि जग ने देखी, जैसी थी न किसी ने पेखी ।
जो भी प्रभु की शरणी आया, यह सब था उस जन ने पाया ।
मैं भी हूँ प्रभु तेरी शरणी, मुझे लगाओ प्रभु निज चरणी ।
मेरी विनय यही है नाथ, मुझे संभालो दे निज हाथ ।

दो॰ मम विनय स्वीकार कर, शिक्षा दीजो नाथ ।
सदा रहूँ तब चरण में, न त्यागूँ तव साथ ॥ 3205 क.

त्यागूँ न तव संग प्रभु, योग करूँ मन लाय ।
राजयोग हठयोग के, साधन जो बतलाय ॥ 3205 ख.

बस्तिन में जब आन पधारे, भक्त अनेकों तुम ने तारे ।
तुझसे शिक्षा जग ने पाई, बहुत जनों ने कीन कमाई ।
अनेकों को तुम दीन समाधि, जन गण की तुम हर ली व्याधि ।
वनों से वस्तिन में तुम आ कर, जग मर्यादा को अपना कर ।
जटा जूट का कीना त्याग, गृहस्थ पुरुष वत रहने लाग ।
जग की दृष्टि से छिप पाये, सिद्ध पर धोखे में न आये ।
वन से सिद्ध पुरुष चल आते, तेरी आशिष पा कर जाते ।
हस्ति गेट जो योगी आया, तुम से क्या कुछ उस ने पाया ।
वह तो रहस न खुल था पाया, को जाने प्रभु तेरी माया ।

दो० तेरी माया का प्रभो, को सके पा पार ।
पहचान दें प्रभु अपनी, मम विनय स्वीकार ॥ 3206 क
तेरी माया का प्रभो, किसी न पाया पार ।
स्तुति तेरी तो सब करें, पा सकें नहीं पार ॥ 3206 ख
मुलख राज को शरण में, लेकर हे मम नाथ ।
भेद सिरफ उस को दिया, औ' राखा निज साथ ॥ 3206 ग
जो दीना तुम मुलख को, वह तो ज्ञान अनूप ।
मम विनती स्वीकार हो, मुझ से रहो न गूप ॥ 3206 घ.

मुलखराज को कर स्वीकार, समाधि का दिया दान अपार ।
वर पाया न किसी ने ऐसा, मुलखराज को दीना जैसा ।
कीनी उस कुछ ऐसी सेव, हुआ रूप तेरा वह देव ।
समाधि में रहा दश वह वर्ष, उस के चित्त अलौकिक हर्ष ।
उसे रही नहीं घर की सुध, मात पिता तभी भये क्रुद्ध ।

पिता तब आया चल तव पास, तुम ने उसे बंधाई आस।
कृपा मुलख पै कीनी ऐसी, देखी सुनी न है जिस जैसी।
जग का काम व समाधि ध्यान, मिला उसे दोनों का दान।
मैं भी किरपा तेरी पाऊँ, ध्यान गूढ़ तव चरणि लगाऊँ।

दो० मम विनय स्वीकार कर, दो ध्यान का दान।
स्तुति तेरी क्या कर सके, यह 'सेवक' अनजान ॥ 3207

मैं भी ध्यान का पाऊँ दान, जग में रह जग रहूँ समान।
मुलखराज मम गुरु महान, मुलख थी कीनी तव पहचान।
मुझ पर भी तव होये दाया, समझ सकूँ जो तेरी माया।
मैं मुलख के राह चल पाऊँ, धर्म कर्म मैं नित कर पाऊँ।
गुरुमुख से जो सुन है पाया, मन मेरे में वही समाया।
गुरु के वचन हैं श्रुति समान, मेरे लिए वे स्वतः प्रमाण।
राखूँ उन को सदैव स्मरण, और करूँ उन पर आचरण।
गुरु मूरत का करूँ मैं ध्यान, साकार रूप वही भगवान।
होवे तद्रूप मेरा चित्त, होय विमुख नहीं किसी निमित्त।

दो० किरपा प्रभु जी कीजिए, हो ऐसा अभ्यास।
दृढ़तर से दृढ़तम भये, 'सेवक' की अरदास ॥ 3208.

जो कुछ सद्गुरु ने सिखलाया, उन के मुख से जो सुन पाया।
उन जीवन में जो दिखलाया, मर्यादा में रह जो कर पाया।
ज्ञान जो जग को वे दे पाये, साधन योग जो जगत सिखाये।
प्रभु भक्ति में जिमि मन लगाना, दुखियों का जिमि ताप मिटाना।
दलित उठा कर गले लगाना, दे आश्वासन पास बिठाना।
यह देखा सभी गुरुद्वारे, और स्वर्गिक बहुत नज़ारे।

शिक्षा तो बहु मैं ने पायी, उस पै चलने की कठिनाई ।
मेरी विनय करो स्वीकार, मेरा भी हो शुद्ध आचार ।

(२८) बिन तव किरपा विफल प्रयास (3210/9)

दो० मेरे सारे कर्म हों, गुरु शिक्षा अनुसार ।
यह विनय स्वीकार हो, हे मेरे करतार ॥ 3209 क
शरण मिली गुरु योगि की, तव किरपा से नाथ ।
गुरु शिक्षा पर यदि चलूँ, लगे तभी कुछ हाथ ॥ 3209 ख

गुरु की शिक्षा, किरपा तेरी, दोनों में है शक्ति घनेरी ।
तेरी किरपा जब मैं पाऊँ, गुरु की सीख तभी अपनाऊँ ।
बिन तव किरपा नहीं समर्थ, समझूँ जो गुरु ज्ञान का अर्थ ।
गुरु की सीख सर्वोत्तम मान, मिलत है जिस से पूर्ण ज्ञान ।
ग्रहण करूँ उस को बिन खेद, उस का सब समझाना भेद ।
कर कृपा मुझे गुरु अपनाया, कर कृपा तुम योग सिखलाया ।
तेरा किमि मैं कथूँ उपकार, जिस ने कीन विनय स्वीकार ।
विनय एक मम और है नाथ, रहना सदा तुम मेरे साथ ।
तव बिन मैं नहीं धारूँ प्राण, तव चरणों बिन न और स्थान ।

दो० तव चरणों के आश्रित, रहूँ सदा मैं नाथ ।
मम विनय स्वीकार हो, रहूँ सदा तव साथ ॥ 3210

गुरु सीख मैं योग प्रचारूँ, गुरु शिक्षा आसन को धारूँ ।
पांच यमों को गुरु सिखलाया, नियम पांच को भी बतलाया ।
गुरु की सीख प्राणायाम, सिमरन में जो आवे काम ।
प्रत्याहार की देवें सीख, जो योग की कठिन परीख ।
विनय अब सुनो प्रभु जी मेरी, प्राप्त करूँ प्रभो कृपा तेरी ।

गुरु कहें तुम धारणा धारो, निज मन प्रभु रूप में सारो।
धारणा मन का करत विकास, प्रभु का अन्तर होय प्रकास।
प्रभु मम मन में आ बस जाओ, धारणा मेरी दृढ़ बनाओ।
बिन तव किरपा विफल प्रयास, तव कृपा से हो ध्यान विकास।

दो॰ तव किरपा से ध्यान का, होता तुरंत विकास।
कीजिये कृपा नाथ जी, जब तक थिर है श्वास ॥ 3211 क
जब तक थिर है श्वास मम, तेरी किरपा नाथ।
विनय करूँ, मांगत रहूँ, रह चरणों के साथ ॥ 3211 ख

मैं चरण के संग रह पाऊँ, हर दम तेरा ध्यान लगाऊँ।
धारणा में मन हो उजागर, रहूँ विलीन ध्यान के सागर।
तव ध्यान में हो कर लीन, चित्त मेरा न रहे मलीन।
चित्त अशुद्ध भी होवे शुद्ध, ध्यान से मम बुद्ध हो प्रबुद्ध।
ज्ञान मिले जो उस स्थल नाथ, पा कर उसे मैं बनूँ सनाथ।
ध्यान स्थिति मैं जब पा जाऊँ, कृत कृत्य मैं तभी हो पाऊँ।
मुझे न बाधे फिर विक्षेप, धुले सभी मन-मल का लेप।
चित्त शुद्धि के हेतु नाथ, ध्यान दान कर करो सनाथ।

दो॰ ध्यान दान कर हे प्रभो, करिये मुझे सनाथ।
मल विक्षेप मम चित का, त्याग देय मम साथ ॥ 3212 क
ऐसा मम जब मन भये, करो समाधि लीन।
समाधि के अभ्यास से, निज में कर लो लीन ॥ 3212 ख
मुलखराज को तुम किया, निज रूप में लीन।
उसी गुरु का शिष्य यह, है दीनन से दीन ॥ 3212 ग

इसे प्रभु जी आप संभालें, चरण शरण में इसे लगा लें ।
इस की विनय करो स्वीकार, डूब रहा यह है मंझधार ।
सके न इसको कोई नीकार, किमि लगे मंझधार से पार ।
बहुत जनों को पार लगाया, 'सेवक' भी तव शरणी आया ।
इस को भी कर लो निज दास, यही एक इस की अरदास ।
जैसे मुलख राज अपनाया, तैसे करिये मुझ पर दाया ।
उसे थी गूढ़ समाधि दीनी, मात पिता ने जब वह चीनी ।
चिन्ता से वे भये बेहाल, सुनाया तुम को आ सब हाल ।
मात पिता को तुम समझाया, समाधि में तव कर्म कराया ।
लिखी तो है यह सारी बात, मध्य रामायण जग के त्रात ।

दो० जो रामायण में लिखी, उस को पढ़ कर नाथ ।
जगत अचंभे में पड़ा, है अजब यह गाथ ॥ 3213

ध्यान राम गोपाल का नाथ, है लेख में उसी के साथ ।
माटी का पा तुम से दान, दर्शन दिव्य किये भगवान ।
चमत्कार यह भया विशेष, कथन करें सब भक्त निशेष ।
भक्तों पर तव किरपा नाथ, व्यापक है उस की यह गाथ ।
बाल कृष्ण जब किरपा पायी, महन्ती उस त्याग दिखायी ।
अनुचर बन कर तेरा देव, करन लगा सब काल वह सेव ।
माया उस की सकल दुराई, ऐसी गाथा तुम लिखवाई ।
मुझ पै भी हो दया भगवान, माया पाश से करिये त्राण ।
माया ने मुझे धर दबाया, रक्षक न को है दिखपाया ।
तुझ से ही मैं करूँ निहोरा, मैं सेवक हूँ प्रभु जी तोरा ।

दो० मेरी रक्षा कीजिये, हे मेरे करतार ।
इक तुम्हीं हो विश्व में, जग के पालन हार ॥ 3214

जग के तुम हो पालन हार, भक्त पुकारें जब करतार ।
पहुँचे उन की जभी पुकार, पधारें तभी त्याग सब कार ।
मैंडू ने जब तुझे पुकारा, निज त्याग के कारज सारा ।
अर्न्तर्यामी जब सुन पायी, मन में जो थी उस कह पायी ।
उस की नाव पै स्वयं पधारे, मैंडू ने तव पग सत्कारे ।
मेरा मन भी करत पुकार, उस की भी लो सुन सरकार ।
वह कहता है जो लो तुम जान, कथन करूँ नहीं मैं भगवान ।
मन की बात न मुख पै आये, अन्तर्यामी जब मिल पाये ।

दो० अन्तर्यामी तुम मिले, मुझे स्वयं भगवान ।
मम जीवन की नौक को, स्वयं चलावो आन ॥ 3215 क.
यही विनय है नाथ जी, यही निहोरा देव ।
स्थूल रूप में आ मिलो, करूँ चरण की सेव ॥ 3215 ख.
चरण कमल से लिपटना, जिमि मुलख का काम ।
तिमि चाहूँ मैं नाथ जी, करिये मुझे सकाम ॥ 3215 ग
चरण कमल सह लिपटकर, मुलख गया काश्मीर ।
मुझ को भी तो ले चलो, बदले मम तकदीर ॥ 3215 घ.

सदैव रहा मुलख तव संग, उसे बनाया तुम निज अंग ।
उस से जो जो कर्म कराये, सभी ग्रंथ में तुम लिखवाये ।
जेल दारोगा को उपदेश, दीना था जो है हृदयेश ।
उस उपदेश पै मुझे चलाओ, सन्मारग पर मुझे लगाओ ।
बैंक क्लर्क ने की जो भूल, क्रोध किया था ध्यान को भूल ।
कभी न मुझ से हो वह भूल, समक्ष रहे मम योग असूल ।
काम क्रोध व लोभ हे नाथ, मोह अहंकार उन्हीं के साथ ।

जीव के शत्रु पांचों जानूँ, मन से उद्धम उन का मानूँ ।

दो० पांचों शत्रु प्रबल हैं, उपजें मन के बीच ।
पांचों का इक बीज है, जो है मन के बीच ॥ 3216 क.
दोष पराया देखना, यही बीज भगवान ।
इस से मुझ को वरजिये, दयालु दया निधान ॥ 3216

कामी जन को मन में लाऊँ, काम मे मैं तभी बह जाऊँ ।
दोष पराया सिमर के नाथ, बिकूँ क्रोध के ही तब हाथ ।
लोभी जन जब मन में आये, मम मन में भी लोभ बढ़ाये ।
पड़ा मोह में सिमरूं कोई, मेरा मन भी मोहित होई ।
दीन पै दया न जब मन आवे, वह वृत्ति अहंकार बढ़ावे ।
इस विध मन में उपजें दोष, कामादि से मन भये सदोष ।
इस रीती से जगत न देखूँ, दोष पराया मैं ना पेखूँ ।
निज चिंत्त इस से होत मलीन, शत्रुओं के वश पड़ता दीन ।
यह तो परनिन्दा की रीत, इस से निज मन होत पलीत ।
मानसिक निन्दा यह भगवान, कैसे बचे इस से इन्सान ।
तुझ में ही जो चित्त लगाये, पर के दोष न देखन पाये ।
रहें शत्रु तब दूर ही दूर, होता गर्व उन का इमि चूर ।

दो० कामादि जो शत्रु कहे, रहते जन से दूर ।
देख अन्य के दोष को, उपजत नहीं गरूर ॥ 3217 क.
परनिन्दा मन में धरे, औ' फिर करत बखान ।
ऐसा जन हर दोष का, है करता आह्वान ॥3217 ख.
परनिन्दा न जो करे, उसे न लागे दोष ।
परनिन्दा से बढ़त है, दोषों का ही कोष ॥ 3217 ग.

परनिन्दा के रसिक बहुतेरे, गोष्ठी करते सांझ सवेरे ।
बुद्धि चित्त निज करत मलीन, ऐसे जन दीनन से दीन ।
मुझे राखो प्रभो उन से दूर, उन की संगत नहीं मंजूर ।
मैं न किसी का दोष बखानूँ निज को ही मैं दोषी मानूँ ।
निन्दक के न पास मैं जाऊँ, उस से दूर कोस रह पाऊँ ।
निन्दा से प्रभु मुझे बचाइये, निन्दक से भी मुझे छुडाइये ।
गुण ग्राहक बन गुण उल्लेखूँ, निन्दक बन पर दोष न लेखूँ ।
पर निन्दा को जान के पाप, जान बूझ न करूँ मैं आप ।

(२९) निन्दा पापों का है मूल (3218 /5)

दो॰ जान बूझ कर पाप इस , फंसूँ न भगवान ।
सद्बुद्धि मुझे दीजिए, स्थिर रहे मम ज्ञान ॥ 3218 क.
परनिन्दा के कारणे, उपजत है जो दोष ।
तव कृपा से दूर रहे, बढ़े न उन का कोष ॥ 3218 ख.

निन्दा से बहु उपजें दोष, निन्दक सञ्चय दोष का कोष ।
दोषों से उपजे अज्ञान, फल अज्ञान का दुख महान ।
निन्दा से प्रभु मुझे बचाओ, दुःख दर्द से मुझे छुड़ाओ ।
तुझे सकूँ मैं तभी आराध, आराधन में दुख बाध अगाध ।
निन्दा पापों का है मूल, स्मरण रहे मुझे यही असूल ।
निन्दक तो पर दोष ही देखें, अपने दोष न लायें लेखे ।
रस मिलता पर दोष बखान, समय का होत न उसको भान ।
दिन बीते हो रात व्यतीत, निन्दक को नहीं हो प्रतीत ।

दो॰ निन्दा का रस जानिये, उसे कहें रस राज ।
अन्य सभी रस गौण हैं, सब का यह सिरताज ॥ 3219

प्रभु कृपा को न निन्दक पावे, निन्दक का सब कुछ छिन जावे ।
बैंक क्लर्क यह कीनी भूल, दोष पराया देखा भूल ।
*उसी समय उस का सब ध्यान, लुप्त भया हम लीना जान ।
पराया दोष न देखूँ नाथ, निन्दा के मैं बिकूँ न हाथ ।
मन से न मैं किसी को निन्दूँ, वाणी से भी न मैं निन्दूँ ।
कानों से मैं सुनूँ न निन्दा, देखूँ न जो करत हो निन्दा ।
बैठूँ मैं नहीं निन्दक पास, दूर रहे उस से तव दास ।
निन्दक आये न मेरे चेत, करत विनय हूँ इस ही हेत ।

दो॰ करता सेवक है विनय, चरण प्रभु आसीन ।
निन्दा के प्रभु दोष से, होय न मन मलीन ॥ 3220 क.
विनय प्रभु इक और है, सुनिये दीन दयाल ।
संकट जन पर जब पड़े, तब बहुडो तत्काल ॥ 3220 ख.

उमड़ा था डल झील तोफान, भक्तों के चित्त तेरा ध्यान ।
शांत किया तोफान भयंकर, तट पै लागी नाव थी आ कर ।
सुख का सांस भक्तों ने लीना, तव किरपा को सब ने चीना ।
[1]बचाते यदि न तुम उस काल, जाती नाव डूब तत्काल ।
तुम ने सब के प्राण बचाये, कौन कृपा इस विध कर पाये ।
तन फंसा हो संकट भारी, मन में चिन्ता जब दुखकारी ।
बुद्धि की जभी सुधी नसाय, तव कृपा ही तब करत सहाय ।
निज को फंसा जब जग पाऊँ, मैं तव हर क्षण कृपा चाहूँ ।

दो॰ तव किरपा बिन हे प्रभो, सांस न चाले मोय ।
तुम हो प्राणाधार मम, माँगू किरपा तोय ॥ 3221 क.

---

* देखो दोहा 1045 से आगे ।
[1] देखो दोहा संख्या 1122 से आगे

तेरी किरपा हे प्रभो, सब भक्तों पै होय।
पवित्र तेरे धाम हैं, जहां कृपा जन गोय ॥ 3221 ख.
हठ योग और राज का, जहां मिलत है ज्ञान।
दास शरण तेरी पड़ा, मुझ को भी दो दान ॥ 3221 ग.

तेरी शरणी हूँ प्रभु आया, तुम से भक्तन बहु कुछ पाया।
शतशः साधन तुम सिखलाये, जो को जन तव आश्रम आये।
षटकर्मन का दीना ज्ञान, नेति कर्म के सभी विधान।
धौति कर्म के बहु प्रकार, सबन सिखाये कर स्वीकार।
तुम से सीखी बस्ती आन, त्राटक का तुम दीना ज्ञान।
नौलि कर्म तुम ने सिखलाया, तुम जगत में योग फैलाया।
वारिसार किरया सिखलायी, कपाल भाति भी तुम बतायी।
भक्तों के सभी हरे क्लेश, षटकर्मन का दे उपदेश।

दो॰ सीखे मैं भी हैं प्रभु, तव आश्रम में आय।
रोग निवारण के प्रभो, विलक्षण ये उपाय ॥ 3222क.
यही विनय है नाथ जी, रहे निरोग शरीर।
साधन मेरे सफल हों, दुख न दे तकदीर ॥*[1] 3222ख.

आसन प्रभु जी तुम सिखाये, शास्त्रों में हैं जो जो आये।
भूल गये थे उन को लोग, परतन्त्रता वश भूला योग।
जग में जिस से बड़ा न ज्ञान, हम भूले वही वश अज्ञान।
आसुरी शक्ति आन दबाया, हम ने निज था ज्ञान भुलाया।
दीर्घकाल रहा यही हाल, प्रकटे प्रभु तुम देख यह हाल।
जब दुखी था देश तुम्हारा, दीना तुम ने आन सहारा।

1 * तकदीर-प्रारब्ध

सोयी जनता को ललकारा, "क्या बना है हाल तुम्हारा ।
ऋषियों की तुम हो सन्तान, भूला तुम को सारा ज्ञान ।
उठो जागो योग अपनाओ, ज्ञान योग का गुरु से पाओ ।
कुंभकरणी यह निद्रा त्याग, भारतवासी अब तो जाग ।
पुकार रहे तुझे भगवान, शंकर हर हर देव महान ।
उन का तुम ने योग भुलाया, अधो गति को सभी ने पाया ।

दो० शंकर की पुकार पर, धरो कान हे मीत ।
शिव की शिक्षा पर चलो, यदि भारत से प्रीत "॥ 3223 क.
शिव संहिता के योग को, तुम प्रकटाया आन ।
भया विस्तृत तब विश्व में, दिव्य योग का ज्ञान ॥ 3223 ख.
आसन वे सब योग के, शिव जो किये प्रवाण ।
तुम सिखलाये जगत को, हुआ तभी कल्याण ॥3223 ग
मुझे शौक है योग का, विनय करो प्रवाण ।
सुन्दर आसन योग के, दीजो उन का दान ॥ 3223 घ.
[१]*प्रभो तुम्हारे ग्रंथ में, मुद्रा भी प्रधान ।
कठिन है उन की साधना, फल तो बहुत महान ॥ 3223 ङ
क्या अधिकारी बन सकूँ , उन का मैं भी नाथ ।
इक मुद्रा भी साध कर, योग लगे मम हाथ ॥ 3223 च.
मेरी भी सुन लो प्रभो, ऐसी विनय विनीत ।
योग से वञ्चित न रहूँ, कर तव पग से प्रीत ॥ 3223 छ.
[२]*ग्रंथ तेरे में हे प्रभो, साधन और अनेक ।
उन में प्राणायाम भी, करता जो हर एक ॥ 3223 ज.

१* तुम्हारा ग्रंथ-"श्री योग महादिव्य रामायण"
२* तुम्हारा ग्रंथ-"श्री योग महादिव्य रामायण"

साधन प्राणायाम महान, इस का प्रभु जी दो मुझे ज्ञान ।
प्राणायाम से मन वश होय, इस से देह निरोगता गोय ।
लघुता तन में इस से आये, भूमि से भी उठ दिखलाये ।
कुण्डली का इस से प्रबोध, तामसिक वृत्तियों का हो शोध ।
प्राणायाम के गुण अनेक, अभ्यास करे योगी प्रत्येक ।
पढ़ सुन कर नहीं होवे ज्ञान, फल पावे जो करे पुमान ।
प्राण का ज्ञान गुरु दे पावे, स्वयं करे सो धोखा खावे ।
मेघ में विद्युत जिमि लखाये, तन में प्राण हैं तिमि समाये ।
चमक दमक विद्युत की भारी, स्पर्श उसी का है क्षयकारी ।
प्राणायाम का वही हवाल, रहस बतावें सद्गुरू दयाल ।

दो॰ मम विनय स्वीकारिये, सीखूँ प्राणायाम ।
इस सर्वोतम योग का, श्रेष्ठ गहूँ परिणाम ।। 3224

इस के गुण जो तुम बतलाये, 'सेवक' ने वे हैं लिख पाये ।
इस का प्रभु अभ्यास कराओ, और इसी का फल दिखलाओ ।
प्राणायाम का मैं जिज्ञासु, कृपामृत का मैं एक पिपासु ।
मेरी साध करो परिपूर, पाऊँ तव किरपा मैं भरपूर ।
साधन प्रभु और इक आया । प्रत्याहार जिस नाम धराया ।
उस का भी मुझे दीजो ज्ञान, बड़ा होगा यह तव वरदान ।
प्रत्याहार तुम ने लिखवाया, उस का रहस्य समझ न पाया ।
इन्द्रिन को किमि भीतर मोड़ूँ, विषयों से किमि नाता तोड़ूँ ।
तव किरपा बिन नहीं कुछ होय, पच पच जन जग जीवन खोय ।
मुझ पै प्रभु हो तेरी दाय, मम मन ऐसा वश में आय ।
इन्द्रियों के न पाछे धाये, अन्तर्मुखी सदा रह पाये ।

(३०) विषयों से प्रभु मुझे बचाओ (3225/1)

दो॰ अन्तर मोडो चित्त को, खास विनय यह नाथ।
मन मेरा न कभी बिके, विषयों केप्रभु हाथ ॥ 3225

विषयों से प्रभु मुझे बचाओ, अर्न्तमुखी मुझे कर पाओ।
विषयों ने है कीन अधीर, चित्त रहे न क्षण भी धीर।
मेरे दुख का यही इलाज, विशेष कृपा हो मुझ पै आज।
आज मांगूँ मैं यह वरदान, विषय न मन के काटें कान।
लूँ मैं जग से मुख को मोड़, सकूँ मैं मन को अन्तर जोड़।
चरण तेरे में गह विश्राम, सतत जपे चित्त तेरा नाम।
मुझ में गुण तो नहीं है लेश, विषयासक्त मैं रहूँ हमेश।
तव कृपा का नहीं अधिकारी, व्यर्थ बिताई जिन्दगी सारी।
कृपा तेरी पै रख विश्वास,लगा कर बैठा हूँ इक आस।
मुझ पै हो अब किरपा नाथ, डोरी सौंपी तेरे हाथ।
दीनों के तुम रक्षक स्वामी, मन की जानो अन्तर्यामी।

दो॰ मन मेरे की जो व्यथा, उसे जान के नाथ।
करो कृपा इस दास पर, मम डोरी तव हाथ ॥ 3226

तेरा रूप सदैव निहारूँ, मन में मूरत तेरी धारूँ।
देह देवालय का हो रूप, प्रतिष्ठित उस में तव स्वरूप।
योग धारणा मैं कर पाऊँ, तव कृपा से मैं सिद्धि पाऊँ।
मन की चंचलता मिट जाये, स्थिरता तव किरपा से आये।
स्थिर हो कर ही ध्यान लगावे, योग समाधि फिर यह पावे।
अन्तराय सब होवें दूर, उपजे चित्त न कभी ग़रूर।
अविद्या अस्मित राग द्वेष, अभिनिवेश जो पांच क्लेश।

करें न मन को वे परेशान, उपजे चित्त में निर्मल ज्ञान।
विवेक ख्याती का प्रभु दान, मिले आप से ही भगवान।

दो॰ तव चरणों में स्त्रवित हो, बहे ज्ञान की धार।
धर्म मेघ समाधि का, योगी समझे सार ॥ 3227 क.
धर्म मेघ समाधि को, वही सके जन पाय।
जिस जन पर हे राम जी, तव किरपा हो जाय ॥ 3227 ख.
सत्य ज्ञान जन को मिले, बैठ समाधि बीच।
मम विनय स्वीकारिये, पाऊँ ज्ञान समीच ॥ 3227 ग.
जो कुछ तुम ने है लिखा, इस शास्त्र के बीच।
ज्ञान सकल वह दीजिये, मांगे 'सेवक' नीच ॥ 3227 घ.

तुम ने है यह शास्त्र लिखाया, बोध विलक्षण जग ने पाया।
योग साधन आश्रम बनवाये, नियम सभी उन के लिखवाये।
उन नियमों पर मुझे चलाओ, दास पै कृपा यह कर पाओ।
उठ प्रात मैं ध्यान लगाऊँ, साधन योग सभी कर पाऊँ।
पांचों यम व नेम हे नाथ, इन्हें पाल मैं बनूँ सनाथ।
यम पै चालूँ निश्चय धार, नियम हो जीवन का आधार।
यम नियमों पर जो जन चाले, तव किरपा को जन वह पाले।
यम नियम को जो नहीं पाले, अपना जीवन दुख में घाले।

दो॰ यही विनय तव चरण में, हे मेरे भगवान।
जो नियम प्रभु तुम रचे, उन का राखूँ ध्यान ॥3228

सेवा धर्म आश्रम का लक्ष्य, इसी को रख कर सदा समक्ष
जो अधिकारी जन चलि आवे, योग साधना वह कर पावे।

सेवक बन कर योग सिखाना, आगुन्तुक जन का दुख दुराना ।
यह उद्देश्य ले तुम ने नाथ, रचे आश्रम जग कीन सनाथ ।
योग जिज्ञासु जो भी आये, वह निराश न होकर जाये ।
योग शिक्षा का यह इस्थान, रचा है प्रभु तुम एक महान ।
भेद भाव न है यहां कोई, धनी व निर्धन आवे जोई ।
एक साथ वे शिक्षा पावें, सभी गुरु के शिष्य कहलावें ।

दो॰ तव शिक्षा अनुरूप ही, करूँ सेव मैं नाथ ।
मैं सेवक, सेवा मिले, मम जीवन तव हाथ ॥ 3229 क.
विनती मम तव चरण में, दीजो सेवा दान ।
वैभव की इच्छा नहीं, हूँ सेवक नादान ॥ 3229 ख.
आसन मुद्रा सर्व ही, षट कर्मन का ज्ञान ।
धारणा ध्यान समाधि का, देते हो तुम दान ॥ 3229 ग.
जन साधारणआय कर, करते साधन योग ।
कलियुग में सतयुग भया, समझ रहे सब लोग ॥ 3229 घ.
नर नारी सब सीखते, आश्रम में हैं योग ।
रोगी करते योग जब, होते तभी निरोग ॥ 3229 ङ
* ऋषि देवी व द्रौपदी, और अनेकों नार ।
सीखा तुम से योग उन, कीना जग प्रचार ॥ 3229 च
तव आश्रम की क्या कहूँ, भूमण्डल के बीच ।
एक अनोखा धाम है, धुले पाप की कीच ॥ 3229 छ
सागर सागर की तरह, गगन गगन समान ।
तव आश्रम की ऊपमा, तव आश्रम ही जान ॥ 3229 ज.

* देखो दोहा 1195 से आगे ।

गुरुओं के तुम हो गुरु , जग में तुम हो एक ।
तेरा आश्रम भी प्रभो, योग साधन का एक ॥ 3229 झ.
इस जैसा तो दूसरा,मिले न जग में नाथ ।
इस आश्रम पर हे प्रभो, रहे तव कृपा हाथ ॥ 3229 ञ
एक बात है और भी, है वह जग से गुप ।
भक्तन को है दीखता, यहां दिव्य तव रूप ॥ 3229 ट

बहु भक्त तव रूप को देखें, कण कण आश्रम में वे पेखें।
दिव दर्शन को जो पा जावे, समाधि स्थित वह जन कहावे।
दीर्घ काल वह इमि रह पावे, देह की सुधि पूर्ण विसरावे।
उस को देख सभी विस्मावें, जय घोष से गगन गुंजावें।
तव महिमा को को कथ पाये, शब्दों मध्य न सकत समाये।
एक भाव मम चित्त समाया, जगत हेतु तुम सब रच पाया।
तेरी रचना जग के हेत, तुझे जगत का हित अभिप्रेत।
तुम जो रचा सभी जग हेत, तुम जो कथा वह भी जग हेत।
ग्रंथ माल तुम जो रच पायी, पुष्पन की थी झड़ी लगाई।

दो० * पुष्प माल जो तुम रची, योग भक्ति का स्त्रोत ।
सकल योग का ज्ञान है, उस में ओत प्रोत ॥ 3230 क.
ऋषियों की संतान को, दीना आर्ष ज्ञान ।
भूले थे निज रूप जो, तुम झंझोड़ा आन ॥ 3230 ख.
तेरी शिक्षा श्रवण कर, ''सेवक'' भया निहाल ।
शरण मिली तव चरण की, भूला जग जंजाल ॥ 3230 ग.

* श्री प्रभु जी ने स्वयं आश्रम से जो पुस्तकें प्रकाशित करवाई वे सभी पुष्पमाला के अन्तरगत हैं। उन्हें प्रथम पुष्प, द्वितीय पुष्प आदि संकेतों से मुद्रित करवाया ।

मम विनय अब यही प्रभो, सुन लेवो भगवान ।
तेरी शिक्षा पर चलूँ, शुद्ध बनूँ इन्सान ।। 3230 घ.

ग्रंथों में जो सीख लिखाई, जीवन में वह बहु सुखदाई ।
मुझे चलावो उस पै नाथ, यही विनय मम बांध के हाथ ।
तुम्हारी शिक्षा न अपनाऊँ, दर दर ठोकर ही तब खाऊँ ।
दर दर भटकत न वह प्राणी, सीख तुम्हारी जिस मन मानी ।
सीख तुम्हारी को सुन पाये, आश्रम में जन जब चलि आये ।
दिव्य रचे तुम आश्रम धाम, गूँजत जहां सदा प्रभु नाम ।
आश्रम के तुम नियम बनाये , और सकल इस ग्रंथ लिखाये ।
उन का पालन करूँ भगवान, मुझे मिले तुम से ही ज्ञान ।

दो० साधन आश्रम रच दिये, जग के ही तुम हेत ।
तुम्हें जगत का हित सदा, है प्रभो अभिप्रेत ।। 3231 क.
सेवा में मैं रत रहूँ, तव आश्रम की देव ।
सिरफ धर्म मेरा भये, तव चरणों की सेव ।। 3231 ख.
तव आश्रम में आय कर, को तरा नहीं नाथ ।
जन्म सफल उस कर लिया, रह कर तेरे साथ ।। 3231 ग.

तव आश्रम में रह कर प्राणी, तव चरणों का बन कर ध्यानी ।
साधन योग नित्य कर पाता, सफल परिश्रम वह हो जाता ।
दिनचर्या विशेष बनवाई, पुरुष व नारिन हित लिखवाई ।
साधुन को भी दीन आदेश, दिनचर्या जो कथी विशेष ।
उस का पालन करो ज़रूर, रह कर जग विषयन से दूर ।
करिये योग भोग को त्याग, त्याग के जग का सब अनुराग ।
प्रभु तुम ने यह शिक्षा दीनी, स्पष्ट बात सब को कह दीनी ।

लेश भी राखा नहीं दुराव, स्पष्ट कथा निज चित्त का भाव।

दो॰ स्पष्ट बात जो तुम कथी, निज रामायण माँझ।
उस मग पर 'सेवक चले, निज जीवन के माँझ ॥ 3232 क.
मम विनय स्वीकारिये, करिये पूर्ण काम।
आश्रम के जो नियम हैं, पालूँ वही तमाम ॥ 3232 ख.

तव आश्रम जगती से न्यारे, शांति के ये धाम हैं भारे।
जिज्ञासु आ ज्ञान को पाता, रोगी रोग मुक्त हो जाता।
मुमुक्षु बने मुक्ति अधिकारी, तव कृपा सब पर बहु न्यारी।
तुम ने आश्रम जो बनवाये, अमृतसर ऋषिकेश सुहाये।
लवपुर और समाहीं ग्राम, मुक्ति के प्रभो वे सभी धाम।
जग का भया कल्याण विशेष, योग से जग के मिटे क्लेश।
यह सब दया तुम्हारी नाथ, मैं भी चरणी लगा अनाथ।
देख निमाना तुम अपनाया, जिसे जगत ने था ठुकराया।
तुम ने उस को गले लगाया, योग का निर्मल मग दिखाया।

(३१) तेरे योग ने जग तराया (3233/1)

दो॰ चरण शरण में लेय कर, कीना तुम कृतार्थ।
मम विनय स्वीकारिये, चित्त न उपजे स्वार्थ ॥ 3233 क.
आश्रम में मैं बैठ कर, करूँ सबन की सेव।
तेरा ही बस रूप मैं, स्मरण करूँ अधिदेव ॥ 3233 ख.

तेरे योग ने जगत तराया, दुखियों का दुख दर्द मिटाया।
अन्धी कन्या कीन सुनयन, किमि शंसे मम दुर्बल बयन।
पागल को तुम कीन निरोग, कौतुक देख पाये सब लोग।

कारा से तब उसे छुड़ाया, भद्र पुरुष तुम उसे बनाया ।
*ग्रस्त तपेदिक रोगी आया । आ आश्रम उस डेरा लाया ।
अपनी व्यथा सकल कह पाया, मानक चन्द नाम बतलाया ।
विरद योग तुम प्रभो संभाल, उस पर ऐसे भये दयाल ।
उस का रोग निज तन पै लीन, उसे स्वस्थ पूरण कर दीन ।

दो॰ ऐसी संस्था तुम प्रभो, स्थापित जग में कीन ।
बिन औषधि बिन फीस ही, हों रोग जहां क्षीन ॥ 3234 क.
उस संस्था का दास यह, है 'सेवक' अतिदीन ।
विनय प्रभु तव चरण में, रखिये निज पग लीन ॥ 3234 ख.
चित्त भ्रमे न जगत में, केवल इक हो काम ।
तव चरणों की सेव में, बीते काल तमाम ॥ 3234 ग.
जो सेवा तुम दीन है, करूँ सकल मन लाय ।
इस 'सेवक' के चित्त में, गर्व कभी न आय ॥ 3234 घ.

तेरे आश्रम परम न्यारे, जन अनेकों जहां तुम तारे ।
श्रद्धा से जो भी चलि आय, जन्म सफल वह निज कर पाय ।
*1माला दर्शन हित थी आती, आशिष पा तब घर थी जाती ।
उस की रूह तुम ली संभाल, उत्तम लोक में दीनी डाल ।
हम पर भी किरपा कर पायें, प्रेम सहित तव आश्रम आयें ।
भेद भाव न आश्रम मांहि, जो भी आयें किरपा पांहि ।
*2मल्लन आंगल धर्म इसाई, उस भी थी तव किरपा पाई ।
आश्रम आया त्याग गरूर, उस का रोग भया सब दूर ।

---

* देखो दोहा 1360 से आगे
1* देखो दोहा संख्या 1381 से आगे
2 * देखो दोहा संख्या 1371 से आगे

ध्यान का उस ने पाया दान, योग की महिमा ली उस जान।

दो॰ यौगिक महिमा जन लखें, आयें जो तेरे द्वार।
तेरी किरपा को प्रभो, देखे जगत अपार ॥ 3235 क.
छोटा बड़ा न तुम लखो, सम दृष्टि तुम नाथ।
[1] *ग्राम्य बाल इक आ गया, नाम था अमर नाथ ॥3235 ख

उस को भी तुम ने अपनाया, उच्च समाधी को उस पाया।
सिद्धियां भी उस तुम से पाई, जिन्हें देख जगत विसमाई।
शरण विधर्मी भी तुम लीने, कृतार्थ दर्शन दे कर कीने।
[2] *अहमद मोची का इतिहास, भगत बखानें सह विश्वास।
जिस मन भेद भाव मिट पाया, अल्ला बंसी सहित लखाया।
तेरे आश्रम किरपा तेरी, दोनों एक, मति यह मेरी।
आश्रम आये, किरपा पाये, विमुख रहे जन कुछ न ग्राहे।
आश्रम आये, शिक्षा पाये, मन मारन हित योग कमाये।

दो॰ साधन चित्त निरोध के, मिलें तभी भगवान।
आश्रम में जन आय जब, ग्राहे गुरु से ज्ञान ॥ 3236 क.
साधन योग अनेक हैं, तुम को सब का ज्ञान।
कौन किसी को चाहिए, तुम जानो भगवान ॥ 3236 ख.
तुम से साधन सीख कर, पाये किरपा संग।
ऐसे साधक पर प्रभो, चढ़े योग का रंग ॥ 3236 ग.
'सेवक' पर भी हो दया, मांगे बारंबार।
विनय यही इस दास की, हो चरणि तव प्यार ।। 3236 घ.

---

1 * देखो दोहा संख्या 1403 से आगे

2 * देखो दोहा संख्या 1487 से आगे

साधन बहु हैं आप सिखाये, मुझ से सिद्ध न को हो पाये ।
सफल होय तब जीवन मेरा, स्वीकारो जब मुझे निज चेरा ।
इक साधन तुम कीन बखान, प्राणायाम कहते विद्वान ।
उस से चित्त एकाग्र होय, यदि साधक तव किरपा गोय ।
दिव्य सुखों का कर के ध्यान, विरक्त भये जग से इन्सान ।
यह साधन भी तुम सिखलाया, सधे तभी यदि हो तव दाया ।
साधन दिव्य कहा इक और, इकाग्रता की परम जो ठौर ।
दिव्य ज्योति का करके ध्यान, योगी ग्राहते रहस महान ।

दो० दिव्य ज्योति का ध्यान धर, मिलता आत्म ज्ञान ।
तेरी किरपा से प्रभो, हो मुशकल आसान ॥ 3237 क.
इक साधन का और भी, कीना तुम बखान ।
विरक्त पुरुष का चित्त ही, मनन करे इन्सान ॥ 3237 ख.
उस मन का ही मनन कर, स्वयं भये विरक्त ।
योग युक्त वह जन भये, जग में न आसक्त ॥ 3237 ग.
इस साधन की साधना, सिद्ध तभी हो पाय ।
शुभ कर्मों के कारणे, तव किरपा जो पाय ॥ 3237 घ.

इक साधन तुम और बताया, दिव्य दृश्य जो स्वप्नी आया ।
उस का करे सदा जन ध्यान, दृढ़तर भये तब उस का ध्यान ।
तेरी दया जब हो मम नाथ, दिव्य स्वप्न पा बनूँ सनाथ ।
किस के वश स्वप्न भगवान, तव आश्रित इस में इन्सान ।
मुझ पै बस करिये यह दाया, मुझे न मोहे तेरी माया ।
जब देखूँ बस तुम को देखूँ, स्वप्ने भी न अन्य को पेखूँ ।
तुम तो जग को यह कह पाओ, जिस विध हो मन वश कर पाओ ।
भूलो न तुम लक्ष्य को प्यारे, साधन कथे शास्त्र में सारे ।

साधन गौन लक्ष्य प्रधान, योगी इसी को दे अधिमान।

दो॰ चित्त सधे तो जानिये, सिद्ध भया है योग।
मन चञ्चल बिन योग के, सहता ताप वियोग ॥ 3238 क.
विनय दास की है प्रभो, साधन का दो दान।
जिस विध चंचल चित्त का, पूर्ण भये निदान ॥ 3238 ख.

अनेकों का हि चित्त टिकाया, निज चरणों में स्थिर करवाया।
1 * मुलख राज को जग पहचाने, उस पर भयी बहु कृपा जाने।
रूप प्रभु जो उस ने देखा, कुंभ के अवसर पर जो पेखा।
कथ सके न उस को कोई, चाहे सहस्त्र मुख भी होई।
2 * विहारी लाल ध्यानासीन, तुम ने उस का कारज कीन।
भक्तों के तुम सदा सहायी, दिव्य समाधि अनेकों पाई।
बन्द भवन में प्रकट हो पाये, जहां जसवन्त ने दर्शन पाये।
तव भक्तों पर तेरी दाया, जिस सिमरा उस बहु सुख पाया।
कुछ के तुम लिखवाये नाम, विश्व विधाता तुम हो राम।
सृष्टि सकल तुम ने उपजाई, सभी ने कृपा तुम से पाई।
योग का दीना तुम उपदेश, और जगत को यही आदेश।
है योग ही धर्म का मूल, जग समझो यह अटल असूल।

दो॰ निश्चय से है योग ही, सब धर्मों का मूल।
प्रत्येक धर्म के तुम कथे, मौलिक सभी असूल ॥ 3239 क.
सभी धर्म जब एक हैं, सब से हो मम प्यार।
सब का आदर मैं करूँ, विनय करो स्वीकार ॥ 3239 ख.

1 * दोहा 1514 मे आगे
2 * दोहा 1637 से आगे

धर्म हेतु जग में भये, ईश्वर के अवतार।
धर्म ईश को है प्रिय, प्रकटें वे तन धार ॥ 3239 ग.
सकल भये अवतार जो, आदि सृष्टि से नाथ।
सब का वर्णन ही प्रभो, कीना तुम इक साथ ॥3239 घ.
वे सब तेरे अंग हैं, अथवा तेरा रूप।
आदर सब का मैं करूं, जानूँ तव स्वरूप ॥ 3239 ङ
तेरी महिमा महान है, विश्व रूप तू नाथ।
जिस घट चाहे प्रकट हो, करने जगत सनाथ ॥ 3239 च.
मुलख राज के देह में, भी प्रकटे तुम नाथ।
देख तुझे उस देह में ,"सेवक" भया सनाथ॥ 3239छ
वर्णन यह सब तुम किया, इस ग्रंथ में देव।
मुलखराज को शक्ति दे, गये गुरु की सेव॥ 3239 ज

तेरा रूप जग मुलख में पेखे, भेद भाव न लाये लेखे ।
भेद भाव न मम चित आये, 'सेवक' ऐसी किरपा चाहे।
मुलखराज तव किरपा पाई, जग देखी उस की प्रभुताई ।
अपनी कृपा आप लिखवाई, योग भक्ति की महिम जताई।
मुलख राज का यश वितराया, जब मद्रास नगर वह आया ।
वहां भया था भव्य स्वागत, देव तुल्य मुलख अभ्यागत ।
जनगण उमड़ पड़े तब ऐसे, उमड़ें शलभ शमा पर जैसे *।
घर परिवार की सुधि भुलाये, मुलखराज के दर्शन आये।

दो० मुलखराज का दर्शन, आ करें सब लोग।
चरण स्पर्श जब वे करें, प्राप्त करें दिव योग ॥3240 क.

* शलभ =पतंगा , शमा= ज्योति

प्राप्त करें दिव योग को, चरणि कर प्रणाम ।
मुलखराज को जन कहें, सद्गुरु सुख के धाम ॥ 3240 ख.

विनय 'सेवक' की यह भगवान, सद्गुरु चरणों का रहे ध्यान ।
जिन चरणों से तरे अनेक, करे अस्तुत जिन की हर एक ।
सत्यवती जिन चरणी लागी, मीरा सम ध्यान में पागी ।
जिन का करत मूँगा थी ध्यान, गुलाबवती के जो भगवान ।
जिन की ले कर सरस्वति धूल, देह की सुधि को जाती भूल ।
चिटम्मा के जो प्राणाधार, मन में राखे सदा संभार ।
राजेश्वरम्मा पगहिं लागी, मनोकामना उस की पागी ।
उन चरणों में मम हो प्यार, विनय करो प्रभो मम स्वीकार ।

(३२) दिव्य रामायण योग भण्डार(3242/ 7)

दो॰ ऐसी किरपा का प्रभो, करो दयानिधि दान ।
सद्गुरु चरणों में रहूँ, भूले जग का ध्यान ॥3241 क.
[1] *मुलखराज ने जो किया, गण्टूर नगर में जाय ।
उस का भी उल्लेख है, दीना आप कराय॥3241ख.
समाधि में जिस विधभयी,सब जनता थी लीन ।
उस का वर्णन हे प्रभो,''सेवक'' ने है कीन ॥3241 ग.
मुलखराज थे सद्गुरु,जनगण रक्षणहार।
[2] *पाकिस्तान निर्माण पर, जब था नर संहार॥3241घ
काल उसी जो मुलख ने, भक्तन कीन त्राण।
निज तन पर उन ले लिया, संकट बहुत महान ॥3241ङ

---

1 * दोहा 2090 से आग   2 * दोहा 2103 से आगे

उस का वर्णन भी प्रभो, आप कराया आ[illegible]न ।
तेरी किरपा से प्रभो, है पाया मैं ज्ञान ।।3241 च.
मुलखराज सद्गुरु मिले, तव किरपा से नाथ ।
उन का 'सेवक' सेव में, रहे सदा उन साथ ।।3241 छ.

गुरु सेवा में मैं रह पाऊँ, यह वरदान प्रभु से चाहूँ ।
मम विनय प्रभु कर स्वीकार, 'सेवक' पर करें यह उपकार ।
मुलख राज की महिम लिखायी, सब भक्तों ने जो सुन पाई ।
[1*]चण्डी जलने से बच पाया, [2*]बसन्ती का उन सुत जिवाया ।
अन्धे ने पाया दृष्टिदान, मुलख की दया उस की बखान।*[3]
चलने में भया पंगु समर्थ, मुलखराज गुरु परम समर्थ ।*[4]
बोबली का जो राज घरान, पुत्र बिना वह दुःख डुबान ।
सहरानी नृप शरणी आया, गुरु प्रसाद उन सुत था पाया ।

दो० मुलखराज जी ने किया, दीन जनों का त्राण ।
किस किस का वर्णन करूँ, 'सेवक' खुद प्रमाण ।। 3242

जो किरपा 'सेवक' पर कीनी, वैसी तो न अन्य पै चीनी ।
किस मुख से मैं करूँ बखान, मुलख राज गुरु परम महान ।
'सेवक' पर जो कीनी दाया, वही प्रभु ने यहां लिखवाया ।
गुरु किरपा का तो है न अन्त, 'सेवक' पर गुरु कीन बे- अन्त ।
जो थोड़ा सा प्रभु लिखवाया, संतोष उसी से हूँ कर पाया ।
सागर से ली बूँद निकाल, मैं जानूं मैं भया निहाल ।

1* देखो दोहा 2111 से आगे
2.* देखो दोहा 2115 से आगे
3* देखो दोहा 2125 से आगे
4.* देखो दोहा 2130 से आगे

दिव रामायण योग भण्डार, शास्त्र मन्थन से निकला सार।
सद्गुरु साधन बहु बतलाये, जिन से जग के रोग दुराये।

दो० देख मुलख ने मुलख में, बिछा रोग का जाल।
*सब रोगों के कथ दिये, मुलख योग उपचार ॥3243

योग साधन ही रोग दुराये. बिन औषध जो कष्ट मिटाये।
जन गण को उन दीना बोध, योग करें जिमि पुरुष सुबोध।
प्रभु ने मुलख का सब उपदेश, लिखा दिया इस ग्रंथ विशेष।
मुलखराज की सीख महान,इसे दिया है प्रभु अधिमान।
मानव तन को लगे जो रोग, सब का लिखा उपचार है योग।
सर के रोग, बदन के रोग, आंख कान व पेट के रोग।
साध्य असाध्य सभी जो रोग, निरोग भयें जनगण कर योग।
श्वास रोग से पीडित लोग, स्वस्थ भयें कर धौति योग।
रक्तचाप का रोग नवीन, दुग्ध नेति कर होता क्षीण।
मधु मेह जो अति दुखदायी, वारिसार से वह मिट जायी।

दो० रोग बहु, उपचार सहज, जो लिखे भगवान।
उस की विधि को जान मैं, जग को यह दूँ ज्ञान ॥ 3244

योग समान न अन्य उपचार, यह ज्ञान लूँ मैं मनधार।
ऐसा निश्चय कर के देव, दुखियों की कर पाऊँ सेव।
धर्म हेतु तुम जग में आये, विद्या योग संग हो लाये।
योग से सकल रोग हों दूर, आधि व्याधि हो योग से चूर।
देह सुखी और मन हो शांत, बुद्धि में कुछ रहे न भ्रांत।
नाश पाप का होवे ऐसे, उदय तमारी[1] तम हो जैसे।

* दोहा 2157 से आगे

१. तमारी = सूर्य

सदाचार का होय प्रचार, सुधरे जन गण का आचार ।
योग मुक्ति का सहज उपाय, योग प्रभो तुम हो जग लाय ।

दो० पा तुम्हीं से योग को, मुलख भये थे सिद्ध ।
कर्म किये उन योग के, जग में भये प्रसिद्ध ।।3245

उसी योग को मैं कर पाऊं, गुरु सेवा में चित्त लगाऊँ ।
मेरी विनय हो प्रभु स्वीकार, बीते योग में मम सब काल ।
योग मार्ग पर मैं चल पाऊँ महिमा योग सदा कथ पाऊँ ।
योग समान योग ही जानूँ, इस के तुल्य न कुछ भी मानूँ ।
सब धर्मों का कर परित्याग, योग धर्म में जाऊँ लाग ।
योग धर्म को कीन प्रवान, गीता में भी तुम भगवान ।
तप से योग बड़ा कथ पाया, कर्म काण्ड से श्रेष्ठ दिखाया ।
ज्ञानी से है योगी महान, यह सब कथा है तुम भगवान ।

दो० अर्जुन को तुम कथ दिया, लो योग तुम साध ।
त्याग सकल प्रपंच को, सिरफ योग आराध ।।3246.

योग बिना नहीं मुक्ति होय, योग बिना नहीं जन सुख गोय ।
भूल योग को दुख नर पाये, व्याधि आधि जन को ग्रस जाये ।
तुम से जग है शिक्षा पायी, साधन करन लगी जगतायी ।
योग ग्रंथ भी तुम रच दीन, योग रामायण ग्रंथ नवीन ।
विश्व में इससे हो प्रचार, योग धर्म सब करें स्वीकार ।
योग शरण जो जन चलि आयें, इसी ग्रंथ से शिक्षा पायें ।
जो कहीं भी है लिख पाया, वह सब इसी ग्रंथ में आया ।
विनय प्रभो मेरी है एक, तेरे चरणों की ले टेक ।
आजीवन मैं योग कमाऊँ, तेरी आज्ञा में रह पाऊँ ।

दो॰ तेरी आज्ञा में रहूँ, योग करूँ मन लाय ।
विसारूँ न तव चरण मैं, चाहे कुछ हो जाय ॥ 3247

तेरी नाथ कृपा हो पाई, विद्या दिव्य ग्रंथ में आई ।
प्रसंग सभी योग के नाथ, लिख दीने तुम अपने हाथ ।
राज योग हठ योग महान, भक्ति योग का भी सब ज्ञान ।
कर्म योग वा सांख्य भी साथ, लिख दिया इस ग्रंथ में नाथ ।
आचार विचार वा व्यवहार, कैसा हो जन का आहार ।
जीव के सब तुम धर्म कथ पाय, नेम सामाजिक भी बतलाय ।
राष्ट्रधर्म जग धर्म सुझाय, नीति के सब भेद यहां लाय ।
अनीति पर चल दुख क्या पाय, स्पष्ट सभी तुम हैं दिखलाय ।
दे दृष्टांत सकल समझाया, दासों पर तव ऐसी दाया ।

दो॰ अब दया प्रभु कीजिये, गहे न पुनः अनीत ।
स्वतन्त्र रहे यह राष्ट्र, समझे पांचों नीत ॥ [1]*3248

ग्रंथ बनाया ज्ञान का स्त्रोत, जहां तव कृपा ओत प्रोत ।
काक भुषुण्डी जो लिख पाया, वह रहस्य अब जनता पाया *2 ।
कलियुग में तेरा अवतार, स्पष्ट भया सब को करतार ।
काक की वाणी कर प्रवाण, प्रकट भये जग में भगवान ।
भविष्य वाणी को दे अधिमान, कीन लिपिवद्ध वह भगवान ।
भक्त से तेरा इतना प्यार, वाणी सत्य की ले अवतार ।
बात भुषुण्डी जो कथ पाया, वही जगत में आ दिखलाया ।
कलि में धर्म की है बहु हान, धर्म बचाया तुम जग आन ।

---

1 * पांच नीति- साम, दान, भेद, दण्ड, कूट देखो दोहा 2865 से आगे
2 * देखो दोहा 2550 से आगे

(३३) भक्तों के तुम रक्षक नाथ (3249/1)

दो॰ योग धर्म जो तुम कथा, हे मेरे भगवान।
उसी धर्म पर मैं चलूं, विनय करिये प्रवान ॥ 3249

भक्तों के तुम रक्षक नाथ, रहते भक्तों के हो साथ।
क्या कहूँ मैं जगत की बात, "सेवक" को तुम हो साक्षात।
हर दम संग मेरे हो नाथ, क्या समझे जग गोप्य यह गाथ।
मुलखराज को हाथ थमाया, अपना कर मम सर रख पाया।
जीवन का जो क्षण बिताया,सेवा में ही उसे लगाया।
*दिव्य अनुभूति का दे दान, अलौकिक कृपा की भगवान।
निमित्त मात्र ही कीन बखान, उस का वर्णन नहीं आसान।
दिव अनुभव को किमि कथ पायें, दिव शव्द हम कहां से लायें।

दो॰ दिव्य अनुभव के कथन को, दिव्य शव्द सक्षम।
दिव्य शब्द तो जगत में, दुर्लभ और अगम ॥3250 क.
दिव्य शब्द जो नाथ जी, कथे आप दे दर्श।
शब्द वे हृदय में बसे, उपजा मन में हर्ष ॥ 3250 ख.

दिखाया दिव्य रूप जो देव, 'सेवक' को वा चरण की सेव।
भूत भविष्य जो कीन बखान, दिव्य शब्दों में हे भगवान।
प्रभो वचन जो मैं सुन पाये, अंकित वे मम मन हो पाये।
तेरा दिव्य रूप नूरानी, मम मन है बसा महादानी।
किस मुख से मैं तव गुण गाऊँ, शब्द नहीं जिन में लिख पाऊं।
अक्षर जो हैं तुम लिखवाये, वे तव किरपा से लिख पाये।

* देखो दोहा 2573 से आगे।

मूक को करते तुम वाचाल, करते पंगु पहाड़ से पार।
मैं तो उन से भी नाढाल, जिसे अपनाया दीन दयाल।
अब मेरी यही विनय पुकार, रहूँ सदा तव पग चित्तधार।

दो॰ तव चरणों के आश्रित, हो जीवन मम नाथ।
पकड़ूं हाथ न अन्य का, तव छोड़ के हाथ ॥ 3251 क.
[1] *मुलखराज ने सीख जो, दीनि भक्तन ताहीं।
सीख उसी पे मैं चलूँ,है विनय गोसाईं ॥ 3251 ख.

मेरी विनय करिये स्वीकार, मेरा हो जिस विध उद्धार।
[2] *तीन ताप मुलख बतलाये, जिन से सब जग दुख को पाये।
उन तापों से मैं बच पाऊँ, यह विनय मैं तुम्हें सुनाऊं।
तन के ताप भयंकर भारी, जगती जिन में फंसी सारी।
मुझे बचाइये उन से नाथ, रोग सब मेरा छोड़े साथ।
साधन योग मैं वह कर पाऊं, जिमि रोगों के वश न आऊँ।
साधन तुम ने सब लिख पाये, मुलख राज ने जगत सिखाये।
मेरा ज्ञान तो बहु अधूरा, कर किरपा इसे करिये पूरा।

दो॰ तेरी किरपा के बिना, बने न मेरा काम।
दुखी रहे जन योग बिन, शास्त्र कथें तमाम ॥3252

योग के साधन हैं अनेक, कौन सके जन कर प्रत्येक।
सभी का शिक्षक न जग माहीं, ज्ञान मिले न बिना तुम ताहीं।
हे प्रभो मुझे योग सिखाओ, रोगों से प्रभु मुझे बचाओ।
जब तक देह न होय निरोग, कभी न होय जन सुख के योग।

---

1. * देखें दोहा 2587 से आगे
2. *तीन ताप- आधि भौतिक, आधि दैविक, आध्यात्मिक

रोगी जन सदा दुख पाये, तन की चिन्ता उसे सताये ।
देह को ही वह सब कुछ जान, सके न आत्म तत्व पहचान ।
रात दिवस बस एक ही काम, मिले रोग से जिमि आराम।
इस दशा से बच वही पाये, आजीवन जो योग कमाये ।
भौतिक तापों का वह रूप, जन ग्रस्त जो रोग स्वरूप ।

दो० ताप त्रय का कथन कर, मुलख दीन उपदेश ।
योग करें गुरु शरण में, मिटते सकल क्लेश ।।3253

* पांच क्लेश व तीनों ताप, सभी जनों को दें संताप।
अन्य ताप है मुलख बताया, मन का दुख श्रवण में आया ।
चित्त इक दैवी शक्ति जानूं, दैविक ताप वही पहचानूँ।
उस ताप से सभी दुखयारी, तन मन दुखी प्राण हो भारी ।
करो प्रभो मेरा मन शांत, दूर करो सब इस की भ्रांत ।
भ्रांत चित्त दुःखों का मूल, अन्तर का यह तीक्षण शूल ।
सकूँ न कर इस को निर्मूल, और सकूँ न पीड़ को भूल ।
तव किरपा को यदि पा जाऊँ, मन को शाँत तभी कर पाऊँ ।

दो० प्रभु विनय मम श्रवण कर, करिये दया विशेष ।
मन मेरा निभ्रांत हो, चिन्ता रहे न लेश ।।3254

भौतिक ताप देह को लागे, दैविक ताप चित में पागे ।
रक्षक बन के मम हे नाथ, निवारो दोनों का ही साथ ।
देह के मुझे न दुख व्यापें, चित्त के दुख भी न संतापे ।
शाँत भये मम जीवन ऐसा, ऊर्मि रहित हो सागर जैसा ।
प्रति बिंबित हो उस में रूप, आत्मा को जो शुद्ध स्वरूप ।

*पांच क्लेश- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश

लक्ष्य आध्यात्म मैं पा जाऊं, आवागमन से मुक्ति पाऊँ।
आवागमन आध्यात्म ताप, और सहूं नहीं वह संताप।
तव किरपा के फल स्वरूप, दान मोक्ष का मिले अनूप।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, विनती बारंबार।
तीन ताप से छूट कर, शांति पाऊं अपार ।।3255 क.
मुलखराज की शरण में, ग्राही शिक्षा दास।
तन मानव का है मिला, व्यर्थ न जाये श्वास ।।3255 ख.
प्रतिश्वास गुरु मन्त्र का, होय निरन्त्र जाप।
मन में प्रभू का रूप हो, तभी मिटें त्रय ताप ।।3255 ग।

तीन ताप और पांच क्लेश, जिनसे जन रहें दुखी हमेश।
उन से त्राण देवें प्रभु आप, मिटावें जन्म मरण का ताप।
अनेक जन्मों में सहे क्लेश, सुख मिला न कहीं भी लेश।
इस भव में तुम कीनी दाया , मुलखराज मुझे गुरु मिलाया।
तव चरणों में उसी लगाया, योग साधन भी गुरु सिखाया।
अब तो भयी है पूरण आस, व्यर्थ न भयेगा .मेरा श्वास।
तब ध्यान, तव नाम का जाप, सदा रहूंगा करता आप।
यह अभ्यास भव सागर पार, करता ले तव चरण आधार।

दो॰ नौका दृढ तव चरण की, मिली मुझे भगवान।
पार करो संसार से, शरण पड़ा जन आन।। 3256.

दिव्य रामायण के उपदेश, मेरे संबल बनें हमेश।
*प्रभु जो तुम ने बात बताई, आत्मा रूप सदा सुखदाई।

* देखो दोहा 2595 से आगे

मुक्ति सके नहीं उस की होय, आत्म ज्ञान न गहे जन जोय।
मुमुक्षु लगेगा भव से पार, ज्ञान का लेकर ही आधार ।
यह तथ्य प्रभु तुम बतलाया, दिव रामायाण में लिखवाया ।
बात यह कहते सब विद्वान, बता कर इस को परम ज्ञान ।
पर आगे जो तुम बात बताई,जग ने है वह आज भुलाई ।
योग बिना नहीं आत्म ज्ञान, दीना तुम यह उत्तम ज्ञान ।

(३४) गुरु किरपा समाधि की मूल (3258 /8)

दो० साधन योग न जो करे, होय न आत्म ज्ञान ।
मार्ग कथा प्रभु योग का, योग बिना न ज्ञान ॥ 3257

बिना योग जो चाहे ज्ञान, बड़ा न उस से जन नादान ।
1*जिस किसी था ज्ञान को पाया, उसने मन था वश कर पाया ।
2*ऋषियों का प्रत्यक्ष प्रमाण, योग को दीना उन अधिमान ।
कोई ऋषि न ऐसा देखें, हीन योग से जिसको पेखें ।
योग से आत्म तत्व लखाये, जन योग से ज्ञान को पाये ।
योग से ही मन होवे शांत, योग से बुद्धि हो निर्भ्रांत ।
करता योग अविद्या नाश, जन्म मरण का कटता पाश ।
बात निश्चित पर यह भगवान, मिलता योग का गुरु से ज्ञान ।
योग का मार्ग कठिन कहाये, गुरु कृपा से सुगम हो जाये ।

दो० कठिन मार्ग जो योग का, सुगम होत है देव ।
योगी सद्गुरु जब मिले, मिले चरण की सेव ॥ 3258 क.

1* देखो योगदर्शन ''योगश्चित वृति निरोधः 1 ''मन की वृत्यिों का निरोध ही योग है और ''तदा द्रष्टुः'' स्वरूपे अवस्थानम्'' तब आत्मा के स्वरूप में मानसिक स्थिरता होती है ।

2* ऋषि बाल्मीकि का प्रमाण है कि उसने दीर्घ काल समाधि में रह कर ज्ञान प्राप्त किया था । वह समाधि में था तो दीमक ने उस के गिरद माटी का ढेर खड़ा कर दिया ।

मम विनय स्वीकार कर, करो देव उपकार।
करत रहूँ अभ्यास मैं, लागूँ भव से पार ॥ 3258 ख.

गुरु किरपा से योग कमाऊँ, गुरु किरपा से शांति पाऊँ।
गुरु किरपा से नियम मैं पालूँ, गुरु किरपा से चित्त संभालूँ।
गुरु किरपा से प्राण को साधूँ, गुरु किरपा से सत्य अराधूँ।
गुरु किरपा से दूर हो दोष, गुरु किरपा से होय संतोष।
गुरु किरपा सेबनूँ तपस्वी, गुरु किरपा पा बनूँ मनस्वी।
गुरु किरपा से हो प्रत्याहार, गुरु किरपा हो ध्यानाधार।
गुरु किरपा पा दर्शन होय, देवों के साक्षात को गोय।
गुरु किरपा समाधि की मूल, जग जंजाल जाय जहां भूल।
कृपा गुरु की मोक्ष प्रदायी, सो समझे जिस पर हो पायी।

दो० गुरु कृपा को पाय कर, 'सेवक' भया कृतार्थ।
गुरु चरणों में है विनय, भये सिद्ध परमार्थ ॥ 3259 क.
मुक्ति का मग एक ही, मैं जानूँ भगवान।
गुरु आज्ञा को शीश धर, निडर चले इन्सान ॥ 3259 ख.

मोक्ष का मार्ग गुरु बतलाया, "सेवक" उस पर ही चल पाया।
विनय तुम्हारे पग में नाथ, त्यागूँ न कभी गुरु का पाथ।
शिक्षा गुरु से जो मैं पायी, मम जीवन की वही कमायी।
अमूल्य धरोहर उस को जान, प्रमादी बनूँ न मैं भगवान।
लक्ष्य मोक्ष का गुरु बतलाया, और है उस का मग दिखाया।
साधन योग के, गुरु की शरण, मुमुक्षु का बस यही आचरण।
इसी बात को समझ के नाथ, चलता रहूँ तव पकड़ के हाथ।
दिव रामायण का यही ज्ञान। ग्रहण करे जो हो कल्याण।

दो॰ मुक्ति के इस ज्ञान को, जो पढ़े चित्त लाय ।
योग साध गुरुचरण में, लेय मोक्ष को पाय ।। 3260

*खास बात जो तुम लिख पायी, उसे न भूलेगी जगतायी ।
तव स्वरूप में मन टिकाना, यही योग का दिव्य निशाना ।
दिव्य लक्ष्य जो ना अपनाये, स्थिर न चित्त उस का हो पाये ।
चित्त एकाग्र होय जब नाथ, योग लगेगा तभी जन हाथ ।
स्थिर होय नहीं जब तक चित्त, काम क्रोध में भटकत नित्त ।
लोभ वा अहंकार आवेश, देते न चलने जन की पेश ।
मोह से मोहित हो इन्सान, निज स्वरूप का विसरे ज्ञान ।
तव रूप जो चित्त ले धार, उस पै करे न काम प्रहार ।
पांचों शत्रुओं का प्रहार, निष्फल हो सब एक ही बार ।
रूप तुम्हारा हे करतार, यही योग का परम आधार ।

दो॰ सिमरे जो तव रूप को, विसरे जग जंजाल ।
प्राप्त करत आनन्द वह, रह युक्त सब काल ।। 3261 क.
चित्त टिके तव रूप में, बुद्धि तेरे ज्ञान ।
योग युक्त तभी जन भये, बहुत मिलें प्रमान ।। 3261 ख.
मन मेरा तव चरण में, टिका रहे सब काल ।
मम विनय स्वीकारिये, कृपालु परम दयाल ।। 3261 ग.
यह ज्ञान मुझ को मिला, दिव रामायण माँझ ।
सिमरूँ मैं तव चरण को, प्रातः से ले साँझ ।।3261 घ.
भूल तुझे, मुझ को लगे, भयदायक संसार ।
कामादि जो शत्रु हैं, करें सभी प्रहार ।। 3161 ङ

*देखें दोहा 2712 से आग

यही ज्ञान तुम ने दिया, दिव रामायण माँझ ।
तुझे भूल कर बह गया, नारद काम के माँझ ॥3261 च.
नारद के इतिहास को, जानत सब संसार ।
*तेरी किरपा से लगा, काम समुद्र पार ॥ 3261 छ.

तुम से शिक्षा नारद पायी, जिसे न भूले यह जगतायी ।
राखूँ शिक्षा मैं वह याद, जीवन न मम होय बरबाद ।
नारद को तुम ने बतलाया, कामादि का बल जतलाया ।
शत्रु प्रबल कहें कामाद, वश भयें गह प्रभु के पाद ।
अन्यथा इन के वश में होय, चौरासी जन्म चक्र को गोय ।
संसार सभी इस के अधीन, कौन बचा जिसे वश न कीन ।
नारद को प्रभु ने बतलाया, देख लीनि तुम ने जग माया ।
माया किसे नहीं भरमाये, बचा वही जिसे प्रभु बचाये ।

दो॰ नारद के इतिहास से, सीख मिली है एक ।
कामादि से मैं बचूँ, ले प्रभु की टेक ॥ 3262 क.
किरपा मुझ पै कीजिये, विनय यही भगवान ।
सदा रहूँ तव शरण में, मैं सेवक अनजान ॥ 3262 ख.

तव चरणों से चित्त न मोड़ूँ, माया से न चित्त को जोड़ूँ ।
ध्यान करूँ सदैव तुम्हारा, क्षण भर न चित्त होय न्यारा ।
तेरा भजन करूँ दिन रात, दर्शन हों चित्त में साक्षात ।
मात पिता तुम को ही मानूँ, चित्त में बन्धु तुम को जानूँ ।
सखा सहायक तुम हो मेरे, निकसें चित्त के अघ घनेरे ।
जग का वैभव जो कहलाये, चित्त को वह न कभी लुभाये ।

*देखें दोहा 2839 से आगे ।

तव ध्यान ही वैभव जानूँ, चित्त में जग वैभव न आनूँ ।
तुम्हीं को मैं सर्वस्व जान, चित्त करूँ न कभी परेशान ।

दो० **क्रोध काम मद लोभ से, मुझे बचाओ नाथ ।**
नारद की रक्षा करी, मम पत भी तव हाथ ॥ 3263.

काम शत्रु ही नहीं इक नाथ, लोभ भी है उस के ही साथ ।
उसी का दोष तुम जतलाया, दिव रामायण में लिखवाया ।
जय राम का इतिहास बतला, लोभ का जग को रूप दिखला ।
उस का दोष बतलाया नाथ, किमि जन लोभ के पड़ता हाथ ।
और उस से किमि मुक्ति पाय, आप ने वे सब कहे उपाय ।
जयराम का तुम दोष दुराय, लोभ वैरी से उसे बचाय ।
जग में थापी खुद मर्याद, शरणागत नहीं हो बरबाद ।
यह भी सीख जगत को दीन, ग्रहण नीति का करे प्रवीण ।
खिला कर खाण्ड यदि मर जाये, क्यों वैरी से वैर कमाये ।

दो० **इक घटना से हे प्रभो, दीनि दोहरी सीख ।**
लोभादि से जन बचे, नीति की कर परीख ॥ 3264

नीती जीवन का आधार, नीति बिना जन होत खवार ।
व्यक्ति होय या होय समाज, सधता नहीं बिन नीति काज ।
राजा होय व होय सम्राट, चले नीति की नहीं यदि बाट ।
उस के भाग्य बदी ही हार, करे शत्रु जब आय प्रहार ।
*सभी नीतिन का दीना ज्ञान, इसी रामायण में भगवान ।
शत्रु को जो जान के मीत, उसे लगाये गले सप्रीत ।
करता रिपु उस का संहार, रिपु को मानो कभी न यार ।

* देखें दोहा 2865 से आगे

सांप को गले लगाना पाप, देता रिपु सदैव संताप ।
जायें दूर न खोजन ज्ञान, भारत है प्रत्यक्ष प्रमाण ।
सहस्त्र वर्ष जिन को अज़माया, धोखे पर ही धोखा खाया ।
मूर्ख बन अब भी हम जानें, अपने बन्धु सगे ही मानें ।
करना उन पर जो विश्वास, मूर्खता की बात यह खास ।
है रामायण नीति बताई, द्रोही से न करो मिताई ।

(३५) उत्तम है हठ योग विज्ञान (3266/10)

दो॰ द्रोही से जो करत है, मित्रता हे राम ।
मान तेरी न सीख को, होता अन्त गुलाम ॥ 3265

इस विध नीति का प्रभु ज्ञान, तुम से मिलत इसी रामायण ।
अब भी सोचें हे भगवान, रिपु भारत के कौन महान ।
खण्डित कीना किन था देश, अब भी पड़े जो हमरे पेश ।
उन से कैसा हो व्यवहार, मिले सीख यह आप के द्वार ।
बन्धुओं से नहीं करें द्रोह, शत्रु से नहीं उपजे मोह ।
यह सनातन रीत ही जानें, वेद शास्त्र सब इस को मानें ।
मूर्खता जब भयी सवार, शत्रु से तभी कीना प्यार ।
वैरी ने तब लीन दबोच, फिर भी कीनी हम नहीं सोच ।
शत्रु को हम भाई बनाया, स्वजनों को था दूर भगाया ।
फूट का भया यही परिणाम, घर लुटे और भये गुलाम ।

दो॰ है तुम्हारे चरण में, यही विनय भगवान ।
नीति कुशल सब जन भयें, दुर्गत हो न महान ॥ 3266 क.
प्रभु तुम्हारा ग्रंथ यह, है उपदेश पयोध ।*१
तव शिक्षा पर हम चलें, बन के सभी सुबोध ॥ 3266 ख

१ * पयोध-समुद्र

1* विश्वामित्र जोय दिया, हरिश्चन्द्र को नाथ ।
लिखवाया उपदेश वह, निज 'सेवक' के हाथ ॥ 3266 ग.
वह शिक्षा हठ योग की, और लय 2* का सार ।
सूक्ष्म में किमि स्थूल हो, लय मेरे करतार ॥ 3266 घ.

ढंग सुगम से तुम समझाया, गूढ़ ज्ञान सरल कर पाया ।
स्थूल में जब रहत उलझाना, मोक्ष जीव ने तब कब पाना ।
ऋषि ने राजा को बतलाया, तुम ने भक्तों को समझाया ।
पृथिवी का जल में होय लय, जल का अग्नि में होय क्षय ।
अग्नि का वायु में हो लोप, आकाश का वायु पै हो कोप ।
यह सब लीला कीन स्पष्ट, संशय जग का कीना नष्ट ।
गूढ़ बात थी ऋषि कह पायी, जग की जो न समझ में आयी ।
तुम ने योग का ले आधार, सब बतलाया खोल के सार ।
षटचक्रों को दे अधिमान, स्पष्ट किया हठ योग का ज्ञान ।
उत्तम है हठ योग विज्ञान, असंख्य युगों का सञ्चित ज्ञान ।
*ज्ञान विज्ञान सभी इस बीच, और उन का उपयोग समीच ।
इसी का ही ले मुनि आधार, सभी लगे भवसागर पार ।

दो॰ इसी ज्ञान का जब भया, लोप जगत से नाथ ।
तुम ने ले अवतार तब, कीना जगत सनाथ ॥ 3267 क.
दिव्य रामायण में प्रभो, दीना पूर्ण ज्ञान ।
भिन्न थलों में जो लिखा, संग्रह कीना आन ॥ 3267 ख.
संग्रह कीना एक थल, और मुख्य यह बात ।
जग को जो न स्पष्ट थी, स्पष्ट कीन वह बात ॥ 3267 ग.

1* देखो दोहा 2932 से आगे
2* लय- लय रोग
*ज्ञान-अध्यात्म विद्या
विज्ञान-सृष्टि के तत्वों का बोध

केवल स्पष्टी करण ही, नहीं प्रर्याप्त देव ।
साधन सिद्ध करवाये, जो आया तव सेव ॥ 3267 घ.
जो आया तव शरण में, भया वह पूर्ण काम ।
मुझ को भी अब हे प्रभो, करिये पूर्ण काम ॥ ङ.
एक बात प्रभु और है, राखी जो तुम गूप ।
नहीं दुरावो दास से, हे तुम जग के भूप ॥ 3267 च.
स्वयं बने तुम राम थे, स्वयं कृष्ण भगवान ।
अब योगेश्वर रूप हो, मैने लीना जान ॥ 3267 छ

राखूँ न इस ज्ञान को गूप, बखान करूँ तव शक्ति अनूप ।
इस को किमि मैं राखूँ गूप, सकल विश्व के तुम हो भूप ।
सभी जगत को मैं बतलाऊँ, चढ़ पर्वत मैं नाद बजाऊँ ।
ऊँचे शिखर पै खड़ के देव, खोलूँ तेरा गुप्त यह भेव ।
त्रेता में तुम राम थे नाथ जगत मर्यादा दीनी थाप ।
योग के यम नियम जो भारे, थे प्रचारित कीने सारे ।
जगत मर्यादा पूर्ण थापी, शांति सकल जगत में व्यापी ।
ऋषि मुनियों ने था गुण गाया, और पुरुष आदर्श बताया ।
यौगिक ही तुम गुण लिखवाये, जो जगत ने राम में पाये ।

दो॰ गुण गाथा तुम राम की, जो लिखवाई आप ।
पाठ करे जो प्रेम से, मिटें सकल संताप ॥ 3268 क.
स्मरण करें हम राम को, त्यागें पथ अलीक ।
भूलें नहीं गुण राम के, चलें योग की लीक ॥ 3268 ख.

राम के गुण अनेक गिनाये, इस ग्रंथ तुम सब लिखवाये ।

उन पै चलत है जो इन्सान, राम भक्त हो वही सुजान ।
सत का पथ था राम दिखाया, योगिजनों ने जो अपनाया ।
राज पाट को तुछ था माना, सतपालन को उत्तम जाना ।
जान जाय पर वचन न जाई, शिक्षा राम यही दे पाई ।
प्राण जायें पर सत्य न जाई, शिक्षा योग प्रभु कथ पाई ।
शिक्षा प्रभु की जो अपनाये, वही प्रभु का दास कहलाये ।
प्रभु के दास की यही पहचान, सदैव सत्य पर वारे प्राण ।

दो० **सत्य वचन को पालता, प्रभु जो भक्त हमेश ।**
प्रभु किरपा उस पै भये, भ्रम न इस में लेश ।। 3269 क.
दिव रामायण में कथे, राम के गुण विशेष ।
मम विनय तव चरण में, उन पै चलूँ हमेश ।। 3269 ख.

दुष्ट पुरुष थे राम संहारे, अत्याचारी पापी मारे ।
राक्षस गण का किया संहार, रक्षक ऋषियों के करतार ।
रक्षक बन ऋषियों के आये, वन भीतर जिन डेरे लाये ।
धर्म कर्म में काल बिताते, राक्षस उन को सदा सताते ।
आश्रम उन के देयं उजाड़, उन के देहों को दे फाड़ ।
मानुष भक्षी पापी लोग, मदिरा मांस था उन का भोग ।
रक्षा हेतु राम अवतारे, राक्षस तभी सकल संहारे ।
वेदों की मर्यादा थापी, मार मुकाये सब संतापी ।
कलियुग वही काल है आया, है अधर्म निज जाल विछाया ।
उस ने धर्म को लीन दबोच, व्यापक कर्म जगत में पोच ।
मम विनय तव चरण में नाथ, दीन जनों को करो सनाथ ।

दो० **दीन जनों में बल नहीं, सबल करो करतार ।**
सबल भयें तव भक्त जन, दुष्टों का संहार ।। 3270

जिमि राम ने दुष्ट संहारे, पापी पामर थे सब मारे।
उस मर्यादा के अनुसार, कलि में धर्म का हो प्रचार।
राम चरित तो पढ़ें अनेक, लायें न आचरण में एक।
मम विनय है यही करतार, सकें राममर्याद को पाल।
राम की शक्ति का नहीं अन्त, उस के गुण भी कथे अनंत।
कर के उन्हीं गुणों का गान, कृतार्थ भया अधम पुमान।
राम राज्य किमि जग में आये, वे तुम सभी उपाय बताये।
और सभी जो पाप महान, उन का भी तुम कीन बखान।

दो॰ राम राज्य जब आयगा, पापों का हो नाश।
धर्म बढ़ेगा जगत में, पापी भयें हताश ॥ 3271 क.
विनय यही तव चरण में, लाइये शीघ्र काल।
राम राज्य जिस को कहें, सज्जन भयें सुहाल ॥ 3271 ख.
भागे दुम दबाय कर, पाप जगत से नाथ।
भस्म भूत पापी भयें, धर्मी भयें सनाथ ॥ 3271 ग.

धर्मी पुरुष भयें बलवान, पापी जन हों दीन महान।
पाप और पापी का हो क्षय, धर्म की सदा हो जग में जय।
गहें धर्म का पक्ष करतार, पाप के मूल पै हो प्रहार।
आ जिन्होंने धर्म उजाड़ा, जग बनाया अधर्म अखाड़ा।
उसी अखाड़े का अब देव, हो विनाश, यही जग की सेव।
मेरी विनय यही करतार, *१ पाप की जड़ पै हो प्रहार।
पाप की जड़ को दें उलीच, बचे न इक भी फिर यहां नीच।
राम चरित जो तुम लिखवाया, उस का सार समझ यह पाया।
अपनी मति के ही अनुसार, कीन ~~वियन~~ विनय मैं हे करतार।

१ * पाप की जड़-अधर्मी लोग

दो॰ यदि विनय मंजूर हो, करो कृपा तब नाथ।
जगती का कल्याण हो, 'सेवक' भये सनाथ ॥ 3272 क.
निज हेतु नहीं मांगता, मांगत जग के हेत।
'सेवक' को तुम मिल गये, क्या और अभिप्रेत ॥ 3272 ख.
तेरा ही यह जगत है, मैं भी तेरा दास।
तेरी ही इस रचन से, धर्म फिलावे दास ॥. 3272 ग.

सार रूप यह है लिख पाया, जो कुछ तुम इस ग्रंथ लिखाया।
'सेवक' को तुम कीन निमित्त, रचना रची है जग के हित।
1* जीवन के मम तीजे काल, इसी कार्य में बीता काल।
2* सार्थक जानूँ मैं यह काल, बताइये किमि बिताऊँ काल।
करिये सार्थक चौथा काल, बताइये किमि बिताऊँ काल।
मेरी विनय यही इस काल, बेहाल करे न मुझ को काल।
देखे मैंने जन इस काल, तड़प रहे जो हो बेहाल।
चिन्तित मैं भी था इस काल, कैसे बीतेगा यह काल।
आई सुधी तभी तत्काल, मेरे प्रभु तो काल के काल।
करेंगे मेरी वे संभाल, चिन्ता देवूँ भाड़ में डाल।

(३६) मुझसे दुख न गहे को जीव (3274/4)

दो॰ चिन्ता को अब त्याग कर, शरण पड़ा हूँ देव।
हो जैसा आदेश तव, वही करूँगा सेव ॥ 3273

सेव में रत रहूँ भगवान, विसरे न प्रभो तेरा ध्यान।
तन पाले प्रभो तव आदेश चित्त विचलित होय नहीं लेश।
विसरे न इक पल तव ध्यान, करिये किरपा यही भगवान।

1* तीजा काल- 50 से 75 वर्ष की आयु
2* चौथा काल-75 वर्ष के बाद की आयु

जीवन यात्रा चल बहु आया, अब तो तन बहु थक है पाया।
समर्थ रहे यह हे भगवान, भविष्य में यह न हो परशान।
स्वस्थ रहे मम सकल शरीर, दूर रहे सब रोग की पीर।
नित्य करूँ जो मैं अरदास, पूर्ण करो निज जान के दास।
*हो वाक से शुद्ध उचारण, करे नाक प्राण को धारण।
आंख की ज्योति होय न क्षीण, करूँ न इस को कभी मलीन।
मम कान करें सदा निज काम, सदा सुनें ये राम का नाम।
स्पर्श रहे मम सदा पवित्त, क्यों कर करे यह दूषित चित्त।

दो॰ अंग ज्ञान के हे प्रभु, दिये ज्ञान के हेत।
रहें सदा ही स्वस्थ ये, चरें धर्म के खेत ॥ 3274 क.
हो बाहों में बल प्रभु, करें सदा निज काम।
जग की सेवा भी करें, स्पर्शें पग तव राम ॥ 3274 ख.
पग मेरे प्रभु सबल हों , विचलित होय न लेश।
कर धारण इस देह को , विचरें सुखी हमेश ॥3274 ग.
तन मेरा यह नाथ जी, नहीं करे परेशान।
साधन के इस काल में, प्राप्त करूं मैं ज्ञान ॥ 3274 घ.
जब तलक तव दास प्रभु, रहे इसी संसार।
क्षण अन्तिम तक नाथ जी, स्वयं करे निज कार ॥ 3274 ङ
पराधीन मत कीजिये, कभी मुझे करतार।
सशक्त रहूँ सबल रहूँ, स्वयं करूँ निज कार ॥ 3274 च.
स्वप्न में भी सुख नहीं, पराधीन को नाथ।
संग आप के ही रहूं, आप बसें मम साथ ॥ 3274 छ

मेरा जीवन तेरे अर्पण, अन्तः करण मम तव समर्पण।
योग के तुम नियम बतलाये, इस ग्रंथ में जो समझाये।

* वाक- मुख की वाणी

जीवन मम हो तदनुसार, हो विपरीत न मम को कार ।
मुझ से दुख न गहे को जीव, सुख पायें मुझ से सब जीव ।
चलूँ सदैव सत्य पर नाथ, असत पथ का न गहूँ मैं साथ ।
माटी वत परद्रव्य को जान, कभी न चित्त मम हो विचलान ।
मातृवत पर नार को देखूँ, शुद्ध दृष्टि से जग को पेखूँ ।
संग्रह से न हो मम प्यार, निज तन भी मुझे लागे भार ।

दो० त्याग करूँ मैं जगत का, त्याग करूं निज देह ।
अनासक्त मम हो चित्त, मिले बहुर न देह ॥ 3275 क.
विनय यही तव चरण में, ऐसा करो समर्थ ।
पांच यमों को पाल कर, करूँ जन्म सा अर्थ ॥ 3275 ख.
पांच नियम भी तुम कहे, मानव जीवन हेत ।
उन पर भी मैं चल सकूँ, रह कर सदा सचेत ॥ 3275 ग
शौच कर्म के बिन प्रभो, हो जीवन दुखयार ।
नित्य करूं वे कर्म सब, जो हैं शौचाचार ॥ 3275घ.
भोगे जीवन में सकल, मैं ने जग के भोग ।
चित्त बसा संतोष अब, करूँ निरन्तर योग ॥ 3275 ङ

साधन रत मैं काल बिताऊँ, रह संतोषी सुख को पाऊँ ।
बिन संतोष न सुख जग माहीं, यह गुण मिलत प्रभु तुम ताहीं ।
अतैव विनय न सुख के हेत, है संतोष मुझे अभिप्रेत ।
तप संतोष से उपजत जान, तप हित अब मम विनय भगवान ।
तप में हो मम आयु व्यतीत, माया सके न घुस मम चीत ।
ऐसी किरपा होय मम नाथ, त्यागूँ नहीं तव पग का साथ ।
चित्त जगत से इमि मुड़ पाये, मौत पाछे भी मुड़ न आये ।
जन्म मरण से छूट के नाथ, रहूँ सदैव तुम्हारे साथ ।

दो॰ रह कर यहां संतोष से, और तपस्या मांझ ।
जीवन यापन मैं करूं, जीवन की इस सांझ ॥ 3276 क.
जीवन की इस साँझ में, हर दम रहना पास ।
खो जाये न जीव यह, जब तन त्यागे श्वास ॥ 3276 ख.
स्वाध्याय में काल यह, ही बीते मम नाथ ।
आत्म बोध प्राप्त कर, रहूँ चरण तव साथ ॥ 3276 ग.

तेरे संग सदा रह पाऊँ, बिछुड़ नहीं क्षण इक भी जाऊँ ।
तन यहां तव सेव में लागे, मन सदैव ध्यान में पागे ।
बुद्धि रहे तव बोध में लीन, जीव होय तव तेज विलीन ।
जीवन इसी साध में जाय, ईश्वर का प्रणिधान हो पाय ।
रहे आजीवन तेरा साथ, जीवन बाद भी हो तव साथ ।
इसे मुक्त जीवन मैं जानूँ, इसे ही कैवल्य मैं मानूँ ।
अन्य सभी से छूटे संग, तेरा ही बन रहूँ मैं अंग ।
वही कैवल्य वा मुक्ति नाथ, जहां छूटे न तेरा साथ ।
करिये पूर्ण मेरी साध, शरण मिले तव मोहे अबाध ।

दो॰ तव प्रभु मैं संग रहूँ, कोटि कल्प तक नाथ ।
कोटि कल्प के अन्त में, भी छूटे न साथ ॥ 3277 क.
मेरे वश में कुछ नहीं, है सभी तव हाथ ।
इस नीमाने जीव का, कभी न छूटे साथ ॥ 3277 ख.
काल वा महाकाल की, भी विसरे जब गाथ ।
तब भी मेरे नाथ जी, छूटे न तव साथ ॥3277 ग.

तेरा आश्रित हूँ सब रीत, शुद्ध करो प्रभो मेरा चीत ।
करिये मेरा मन निर्दोष, मन मेरे में भरे हैं दोष ।

दोषी मन न स्थिर रह पाये, किमि वह अपनी प्रीत निभाये ।
किरपा तेरी होय इमि नाथ, स्थिरता बख्शो गुण भी साथ ।
ऐसा गुण मम मन में आये, निज प्रीत मन सदा निभाये ।
प्रभो जानो तुम मम मन हाल, तुम से विछुड वह होत बेहाल ।
मम मन में प्रभु करो बसेरा, आसन वहां लगा हो तेरा ।
आयु भर संसार को देखा, उस की माया को बहु पेखा ।
चौथा काल ध्यान बिताऊँ, अन्त समय में चरण समाऊँ ।
मेरी बारंबार पुकार, करिये विनय मेरी स्वीकार ।

दो॰ अन्त समय की साध मम, हो पूरण भगवान ।
खोटा चाहे दास है, दासन दास नदान ।। 3278 क.
किरपा पात्र जान कर, करो कृपा हे नाथ ।
गती मती इस दास की, सब तुम्हारे हाथ ।। 3278 ख.

शुद्ध करो मम मन भगवान, करिये मुझे सुबुद्ध सुजान ।
तमोगुणी यह बुद्धि मेरी, राजसिक वृति ने भी घेरी ।
इस को शुद्ध करो हे नाथ, सात्विक रंग भरो निज हाथ ।
सृष्टी के तुम चतुर चितेरे, तुम विस्तारे रंग घनेरे ।
सात्विक रंग भी तेरे हाथ, उस से रंग दो मेरा माथ ।
इस विध शुद्ध होय मम बुद्ध, रहेगी स्मृति सदैव तव शुद्ध ।
ऐसा रूप न सन्मुख आवे, तुझे छोड़ बुद्ध जिसे ध्यावे ।
अनन्य चिन्तन हि हो मम काम, मुझे और न काम से काम ।
हो तव किरपा ही अब राम, बिन तव किरपा बने न काम ।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, बने दास का काम ।
जीवन की इस शाम में, भजन करूँ तव राम ।।3279 क.

शुद्ध भाव से मैं भजूँ, तेरा ही प्रभु रूप।
कुशाग्र बुद्धी दीजिये, सकूं ज्ञान पा गूप ॥ 3279 ख.

मन निर्मल और बुद्ध कुशाग्र, भक्ति भये मम प्रभो उजाग्र।
कर के ध्यान निरन्तर तेरा, निरख सकूँ स्वरूप जो मेरा।
मैं तेरा हूँ जीव स्वामी, तेरा अंश ही अन्तर्यामी।
अंश व अंशी भिन्न न होई, चेतनता में सम हैं दोई।
चेतन रूप में मन समाये, माया माँझ न वह रम पाये।
माया ने इस जीव को फांद, लीना है इस जग में बांध।
इसे छुड़ावो हे मम नाथ, रहे न फंसा माया हाथ।
यह है तुछ तुम्हारा जीव, माया ग्रस्त यह बात अजीव।

दो॰ माया ग्रस्त यह न रहे, तव जीव यह नाथ।
धरोहर अपनी हे प्रभु, ग्रहण करो निज हाथ॥ 3280

क्यों सौंपी तू माया हाथ, राखी क्यों नहीं अपने साथ।
मेरा गिला है यही स्वामी, सकूँ न अन्य की कर गुलामी।
अपनी चीज़ राखो निज पास, करो न अन्य पै प्रभु विश्वास।
माया है तो ठगनी स्वामी, ठग ले तुम को अन्तर्यामी।
तेरा जीव उस लीना छीन, लौटाने का फिर नाम न लीन।
फिर भी तुम करते विश्वास, अब राखो मुझे अपने पास।
प्रभो यह तेरा अपना काम, मुझे बचा लो अब हे राम।
मैं विरह नहीं और सहारूँ, माया का क्यों महल बुहारूँ।
तेरी कुटिया मुझे मंजूर, राखो न प्रभो निज से दूर।
अन्तिम मेरी यही अरदास, अनन्त काल तक राखो पास।

(३७) तुम तो न्यायकारी भगवान (3281/2)

दो० अन्त काल तक हि रहूँ, प्रभु तुम्हारे पास ।
मम विनय स्वीकारिये, निज जान के दास ॥ 3281 क.
निज जान के दास प्रभो, सदैव रखिये साथ ।
माया ठगनी जान कर, सौंपो न उस हाथ ॥ 3281 ख.

तेरी किरपा प्रभु पहचानूँ, अपने दोषों को भी जानूँ ।
तुम तो न्यायकारी भगवान, त्रुटियों को लें सभी पहचान ।
किस मुख से मैं मांगू दाया, कर्म तो कुछ भी न कर पाया ।
जीव चाहे तो आत्मोद्धार, तव अभ्यास विराग दरकार ।
इन दोनों में कुछ भी नाहीं, किस मुख को ले विनय सुनाहीं ।
क्षण इक का भी नहीं अभ्यास, विराग के लागा हूँ न पास ।
किस विध होगी मुझ पै दाया, सोच सोच है मन पछताया ।
मम विनती प्रभु है तुम ताहीं, दृढ़ अभ्यास करावो साईं ।

दो० ऐसी शक्ति दीजिये, हो मम दृढ़ अभ्यास ।
दीर्घकाल अभ्यास कर, चरण रहूँ तव दास ॥ 3282

मम अभ्यास निरन्तर होई, विघ्न बाधा न आवे कोई ।
जीवन भर कर के अभ्यास, जीवन सफल करे तव दास ।
मुलखराज जिमि नेम को पाल, योगाभ्यास में जीवन घाल ।
तव चरणों का भया शदाई, किस ने जग वह गति है पाई ।
अमरनाथ तव भया दिवाना, ध्यान योग का वह मस्ताना ।
इन को जो अभ्यास कराया, मुझ पै भी प्रभु हो वह दाया ।
राम गोपाल जो प्रभु प्यारा, जीवन लगा योग में सारा ।
प्रेम रसिक वह निशिदिन झूले, देह बदन की सुधि को भूले ।
कब आयेगा प्रभु वह काल, प्रभु मेरा भी हो वह हाल ।

दो॰ दास करे अभ्यास को, भूल सकल संसार।
रहे सदैव ध्यान में, तव चरणी हो प्यार ॥ 3283

जग जंजाल में काल बिताया, तेरा ध्यान न मैं कर पाया।
यह पछतावा है मन मेरे, भजे चरण न मैं प्रभु तेरे।
माया का रहा बन गुलाम, सिमरा नहीं हे प्रभु तव नाम।
चौथा काल हो रहा व्यतीत, अभी तलक भी आयी न चीत।
दया का पात्र है यह प्राणी, और न हो अब जीवन हानी।
निज चरणों में मन मम जोड़, जग से स्नेह मेरा दो तोड़।
नेह मेरा न हो इस तन में, प्रेम रहे नहीं धन व जन में।
केवल एक ही थल हो प्यार, हो वह थल तव चरण करतार।

दो॰ तव चरणों से प्रेम हो, यही ध्यान का मूल।
कृपा कर प्रभु बख्शिये, निज चरणों की धूल ॥ 3284 क.
इसी विध मेरी आत्मा, का होगा कल्याण।
कर किरपा प्रभु बख्शिये, निच चरणों का ध्यान ॥ 3284 ख.
इक विनय प्रभु और है, करता जब हूँ ध्यान।
बाधा जग है डालता, प्रकटे सन्मुख आन ॥ 3284 ग.
जग से मुख को मोड़ दो, मिटे जगत से प्रीत।
जिस को कहत विराग हैं, उस की समझूँ रीत ॥ 3284 घ.

जग का राग सकल दूं त्याग, मन जाये वैराग्य में लाग।
जग की वस्तु न लागे प्यारी, रहे सदा परलोक त्यारी।
स्वप्न समान यह जीवन देव, करता व्यर्थ हूँ जग की सेव।
जीवन का बहु काल बिताया, क्या है मैंने यहां कमाया।

स्वप्ने में जो कीन कमाई, जागने पर कुछ रह न पाई ।
जीवन का बस यही है हाल, सन्मुख मेरे कठिन सवाल ।
राज मिला स्वप्ने के मांझ, दिल चाहे नहीं होवे सांझ ।
जीवन के इमि सुख में भूल, विचारत गुरु का ज्ञान न मूल ।
झून झून सदा गुरु जगावे, नींद न मनुए की खुल पावे ।
समझे जो सुख जग में होय, गुरु का ज्ञान दे सके न सोय ।

दो० मनुआ मानत जगत को, न वह गुरु का ज्ञान ।
दूर करो हे नाथ जी, इस का यह अज्ञान ।। 3285

ज्ञान अध्यात्म तुम से पाऊँ, जग के बंधन से छुट जाऊँ ।
जग ने राग की डोरी बांध, लीना है इस जीव को फांद ।
बंधन से यह सके न छूट, राग का बंधन कथा अटूट ।
तव शक्ति बिन टूटे नाहीं, सत्य बात मम मनहिं समाहीं ।
कर किरपा यह राग निवारो, इस संकट से मुझे निकारो ।
राग पिशाच महा बलकारी, माया डारी मुझ पै भारी ।
इस पिशाच से मुझे बचाओ, मेरा मन निज चरणि लगाओ ।
तेरे चरणों की है आश, राग पिशाच ने कीन हताश ।

दो० प्रभु यह राग निवारिये, बन्धन का जो हेतु ।
भये दास पर तव दया, हो तुम भव के सेतु ।। 3286

वर प्रभो मैं तुम से चाहूँ, दीरघ काल समाधि लगाऊँ ।
पर विराग में मन रम पाये, स्वर्ग का सुख भी वह न चाहे ।
जो भी सन्मुख दृष्टि आये, सब से मन विरक्त हो जाये ।
सुनी सुनाई हो जो चीज़, वहां पर मन न जाये पसीज ।
ज्ञान के वश रहे मन ऐसे, इस क्षण भी न छूटे जैसे ।

जग के विषय न इसे लुभायें, स्वर्गिक विषय न वश कर पायें।
ऐसा रहे मन सृष्टि माँझ, तैल लिप्त जिमि घट जल माँझ।
जग के बीच रहे मन ऐसे, जल के बीच कमल हो जैसे।

दो॰ जल बीच जिमि कमल हों, तैल लिप्त या घट।
सृष्टि में तिमि चित्त रहे, तृषा रहित जल तट ॥ 3287 क.
मम विनय प्रभु चरण में, ऐसा होय विराग।
सेवा में तन लिप्त हो, मन में लेश न राग ॥ 3287 ख.
जो भी देखूँ वा सुनूँ, सब से चित्त विरक्त।
तृष्णा डोरी काट कर, रहूँ कर्म आसक्त ॥ 3287 ग.
इस विराग से ऊपर, पर विराग भगवान।
उस में भी तुम ले चलो, रहे न जग का भान ॥ 3287 घ.

प्रभो मुझे अब तुम ले जाओ, पर विराग का देश दिखाओ।
जहां पर केवल पुरुष निवास, प्रकृति का जहां स्पष्ट विनाश।
नाम जहां त्रयगुण का नाहीं, आत्म तत्व हि स्पष्ट लखाहीं।
उसी देश में मैं प्रभु जाऊँ, तीन गुणों से इमि बच पाऊँ।
मम जीवन का लक्ष्य यह नाथ, दान करो और करो सनाथ।
जन का वहां जाना दुश्वार, तव किरपा बिन खुले न द्वार।
तव किरपा का मुझे सहारा, किरपा पा कर खुलेगा द्वारा।
तेरे दर की लीनी ओट, जहां कभी नहीं कुछ भी तोट।

दो॰ मम विनय स्वीकारिये, भिक्षुक तेरे द्वार।
तीन गुणों ने फांद कर, कीना बहुत खवार ॥ 3288 क.
पर विराग का दान कर, रखिये अपने पास।
इस निमाने जीव पर, चले न गुण का पाश ॥ 3288 ख.

तीन गुणों के पाश से, होय मुक्त यह दास ।
पुनः सदा ही वास हो, 'सेवक' का तव पास ॥ 3288 ग.
माया को वह तर सके, जिसे चरण की ओट ।
मुझे चरण हैं मिल गये, बेशक मुझ में खोट ॥ 3288 घ.
प्रभु शरण को पाय कर, खोट जाय सब छूट ।
यही सनातन नेम है, लेश न इस में झूट ॥ 3288 ङ

उच्च बहुत स्थान मैं चाहूँ, निज दोष न ध्यान में लाऊँ ।
यह तो उचित बात न होय, होय जो ठीक करे जन सोय ।
प्रथम करूँ मैं चित्त को शुद्ध, करूँगा फिर निज निर्मल बुद्ध ।
मन शुद्ध और बुद्ध निरोल, प्रभु बसते तब चित्त अडोल ।
प्रभु का आसन चित्त में होय, धारणा योग कहावे सोय ।
ध्यान में मन स्थिर हो पाये, स्थिति समाधि की तभी आये ।
प्रभु कृपा से समाधि साध, ज्ञान विश्व का पाऊँ अगाध ।
समाधि में सब होय समक्ष, विश्व रचा जिमि है प्रभु दक्ष ।

(३८) कृपा बिन कुछ सकत न होय (3289/8)

दो० प्रभु रचना जिमि है रची, मिले योग से ज्ञान ।
समाधि में स्थित होय जब, योगी परम सुजान ॥ 3289

संप्रज्ञात समाधि कहावे, योगी यहां पर रुक न पावे ।
सृष्टि रचना किमि हुई तमाम, इस से योगी को क्या काम ।
सृष्टि का न ज्ञान वह चाहे, वह तो स्त्रष्टा को लख पाये ।
असंप्रज्ञात समाधि कहावे, प्रकृति से चित्त ऊपर जावे ।
आत्म दर्शन कर चित्त विलीन,आत्म ज्ञान में बुद्धि लीन ।

प्रभो अवस्था कब वह पाऊँ, भूलूँ जग निज रूप समाऊँ।
विनय होय यदि मम स्वीकार, विलंब करो न अब करतार।
*कृपा बिन कुछ सकत न होय, उडीक रहा हूँ कृपा तोय।

दो॰ अभी न कृपा होय यदि, कब करोगे नाथ।
पल पल जीवन जा रहा, लगा न कुछ भी हाथ ॥ 3290

अन्तिम घडी की करूं प्रतीख, कृपा की किरण रही न दीख।
मोह माया ने लीन दबोच, आत्म ज्ञान लगे सब पोच*।
असंप्रज्ञात योग का ज्ञान, लिखने तक ही रहा भगवान।
लिख कर 'सेवक' ने क्या पाया, लिपट रही यदि चित्त पै माया।
सोच यही चित्त भया अधीर, मम मन की प्रभो जानो पीर।
मन की पीर न जाये स्वामी, तव कृपा बिन अन्तर्यामी।
शीघ्र करो प्रभु मुझ पै दाया, भाड़ झौंक मैं जन्म गंवाया।
ऐसे ही न जन्म यह जाये, कृपा करो कुछ पा कर जाये।

दो॰ तव कृपा से नाथ जी, पाऊँ समाधि दान।
भूमि उसी में ले चलो, जहां मुक्ति भगवान ॥ 3291

जीव की मुक्ति तब हो पाये, जभी निर्बीज समाधि पाये।
संस्कारों का जब हो विनाश, शेष बचे नहीं कुछ भी खास।
केवल आत्म तत्व रह पाये, परब्रह्म में जीव समाये।
कब आयेगा प्रभु वह काल, 'सेवक' का भी हो वही हाल।
जब मैं तेरे रूप समाऊँ, जन्म मरण से मुक्ति पाऊँ।
कतिपय जीवन काल है शेष, यदि तव किरपा हो प्रभो लेश।
इस में भी सभ कुछ पा जाऊँ, रूप प्रभु में तुरंत समाऊँ।
मम कर्म वहां आये न काम, जहां पर मुक्ति का हो नाम।

* उडीक-प्रतीक्षा करनी
* पोच-असत्य

दो० मुक्ति का जहां नाम हो, कर्म का हो न काम ।
प्रभु दया ही वहां प्रबल, वही बनावे काम ॥ 3292

मोक्ष कहें कैवल्य या नाथ, अथवा मुक्ति की करें गाथ ।
नाम भेद पर दशा है एक, जहां पर जीव विधाता एक ।
मेरे पाप व पुण्य हों नाथ, भस्मीभूत होयं इक साथ।
उन का नाम रहे नहीं लेश, बचे न कुछ भी हे प्रभो शेष ।
अन्तिम बात यही हो पाये, तेरे में यह जीव समाये ।
अन्तिम विनय भी यह मम नाथ, दशा पाय वह रहूँ तव साथ ।
तेरे साथ रहूँ मैं नाथ, इक पल भी नहीं छूटे साथ ।
तेरे संग जभी रह पाऊँ, वह जीवन मैं निज लख पाऊँ ।

दो० प्रभो राखो इस जीव को, सदा ही अपने साथ ।
तभी मुक्त हो सकत है, सब तुम्हारे हाथ ॥3293 क.
एक बात अब और भी, प्रभु आये मन मोर ।
क्या शिक्षा पर चल रहा, कर्म योग की तोर ॥ 3293 ख.
जो शिक्षा तुम जगत को, है दीनी भगवान ।
उस पर ही जब जन चलें, हो तभी कल्याण ॥ 3293 ग.
कृष्ण चन्द्र के रूप में, जब आये तुम नाथ ।
अर्जुन को जो सीख दी, विदित जगत वह नाथ ॥ 3293 घ.

जग में रह जग सम रह पाना, और न्यारा हो कर रहना ।
इसी शिक्षा का हो प्रचार, योगिजनों का यही आचार ।
कर्म करें वा भजें भगवान, फल की ओर न लेश हो ध्यान ।
कर्म योग की सीख कहायी, कृष्ण रूप में तुम दे पायी ।
उसी सीख पर मुझे चलाना, राह मोक्ष का सरल दिखाना ।

रह जगत जो मोक्ष को पाये, वीर योगिजन वही कहाये।
जनक आदि का जो इतिहास, जग को विदित तो है वह खास।
उस मग पर तुम चलन सिखाया, संग कर्म तुम योग फिलाया।
विमुख कर्म के जो हो प्राणी, करता निज जीवन की हानी।
योगी कर्म को कर दिखाय, अयोगी फल में मन लगाये।

दो॰ रात दिवस का भेद है, अयोगी योगी माँझ।
जिस में योगी जागता, अयोगी की वह साँझ ॥ 3294 क.
योगी इच्छा त्याग कर, रहत करत निज काम।
योगी के मन बसत है, पहर आठों ही राम ॥ 3294 ख.
करत अयोगी कर्म जब, बसत चित्त उस काम।
वशी काम के होय कर, करत कर्म बहु वाम ॥ *१ 3294 ग.

तव चरणों में विनय भगवान, कर्म योग का दीजिये दान।
२* तीन अवस्था व्यर्थ विहानी, चतुर्थ की अब न होय हानी।
३* विहित करूँ मैं सारे कर्म, कर्म को ही मैं जानूँ धर्म।
कामना फल की न रह पाये, तेरा रूप मम मन समाये।
त्यागूँ काम क्रोध व शोक, संग चलूँ मैं तेरे लोक*४
तेरे संग मम शाश्वत वास, तू स्वामी मैं रहूँ तव दास।
ऐसा फल जन वह ही पावे, त्याग काम जो कर्म कमावे।
जब तक जग में है मम वास, कर्म करूँ बिन फल की आस।
कर्म करूँ पर फल न चाहूँ, विहित कर्म को त्याग न पाऊँ।

---

१ * वाम-उल्टा, बुरे
२ * तीन अवस्था-आयु 75 वर्ष तक
चतुर्थ अवस्था-आयु 75 वर्ष के पश्चात
३ * विहित-शास्त्र सम्मत
४ *तेरे लोक-परलोक, प्रभुलोक, मोक्ष पद

दो० कर्म योग की सीख जो, मैं उसे अपनाऊँ ।
धर्म विहित जो कर्म हो, मैं वही कर पाऊँ ॥ 3295

कर्म योग को जब जन पाले, और उसी में जीवन घाले ।
कर्म की सीमा को कर पार, पाता वह जन ज्ञान अपार ।
ले अविनाशी तत्व पहचान, रचा है जिस ने सकल जहान ।
अकाल पुरुष न काल का भय, अजन्मा जिस का होय न क्षय ।
जिस को उस का बोध हो जाय, योग युक्त वह पुरुष कहलाय ।
तेरा रूप मैं प्रभु बखाना, दर्शन पा जिस विधि मैं जाना ।
अटल करो मेरा यह ज्ञान, तुझे विसरूँ न कभी भगवान ।
सकल जगत के रूप विनाशी, तुम हो मेरे प्रभु अविनाशी ।
शस्त्र तुझ पर चल न पावे, आग न निज प्रभाव दिखावे ।
हो अव्यक्त व्यक्त हो जावो, राम लाल का रूप धरावो ।
दोनों रूप दिखावें नाथ, इस 'सेवक' को करें सनाथ ।

(३९) मेरी भी सुनो प्रभु पुकार (3298/10)

दो० दोनो रूपों में प्रभो, भजन करूँ मैं तोर ।
अनन्य भाव से ही भजूँ, यही विनय है मोर ॥ 3296 क.
तव भक्ति में रत रहूँ, आजीवन हे नाथ ।
बहुत काल अब है नहीं, इस जीव के हाथ ॥ 3296 ख.

भक्ति योग का दीजो दान, यह 'सेवक' तव है नादान ।
इस डाला आकाश पै हाथ, लौटा शून्य ही इस का हाथ ।
तेरे दिव्य चरण भगवान, जिन का धरती पर इस्थान ।
उन की ओर बढ़ा जब हाथ, तब से भया यह दास सनाथ ।
तव चरणों की रज भगवान, सर्व सुखों की है वह खान ।

मस्तक पर जब उसे लगावें, बुद्धि के पट सभी खुल जावें।
देह पर जो लगाते उसको, शक्ति तन की मिलत है तिन को।
प्रभु चरणों का ध्यान निरन्तर, दर्शन दिव्य देत अभ्यन्तर।

दो॰ प्रभु चरणों की भक्ति से, होत महा कल्याण।
दान भक्ति का दीजिये, यही विनय भगवान॥ 3297 क.
*योगी सब से श्रेष्ठ है, कथन कीन भगवान।
योगी से भी कथ दिया, होता भक्त महान॥ 3297 ख.

उसी भक्त की महिमा गाई, श्रद्धा की जिस कीन कमाई।
प्रभु में चित्त निज कर के लीन, भजे जो प्रभु को जन प्रवीन।
अनन्य भाव से तुझे ध्यावे, अन्य किसी में चित्त न लावे।
तुझ को मात पिता कर जाने, तुझ को बन्धु सखा निज माने।
तुझ को ही सब कुछ कर देखे, जग को किसी न लाये लेखे।
ऐसा जन तुझ को हो प्यारा, गीता में तुम यही उचारा।
चतुर्विध कीने भक्त बखान, करते हो जिन का कल्याण।
प्रथम भक्त तुझे वह प्यारा, आर्त होय जिस तुझे पुकारा।
आये उस पै दुख कठोर, बिन तुझ देखे अन्य न ठोर।
पुकारे तुझ को केवल नाथ, उस भक्त के रहो तुम साथ।

दो॰ पड़ा विपद में हो जभी, शरण गहे न आन।
उसी भक्त के साथ ही, रहते तुम भगवान॥ 3298 क.
आर्त भक्त तुम को प्रिय, इस में न संदेह।
1 * क्षय ग्रस्त निज भक्त की, कीन निरोगी देह॥ 3298 ख.

---

* देखें श्री मद्‌भगवद्गीता-6.46-47

1 * देखें मानिक चन्द दलाल का प्रसंग दोहा 1360 से आगे

१* दुखी अवधूता को तुम देख, तुरत लिया तुम चित्त उल्लेख ।
आर्त विचारी है दुखयारी, भटक रही है विपदा मारी ।
उस को दिया था सदुपदेश, उस का लिया हर सभी क्लेश ।
२* हरनामदास अति दुखयारा, तुम ने उस को दिया सहारा ।
बह चला था विपद की धारा, तव किरपा से मिला किनारा ।
३* मरती बुढ़िया जभी पुकारा, यम पाश से उसे नीकारा ।
जभी किसी की सुनी पुकार, धाये तुम चित्त कृपा धार ।
भरी है शास्त्रों में तव गाथ, सुनाथ किये तुम बहु अनाथ ।
धाये गज की रक्षा हेत, लीनी थी द्रौपदी की चेत ।
मेरी भी सुनो प्रभु पुकार, खोया जीवन सब प्रकार ।
घिरा धर्म संकट में भारी, सुनो प्रभो मम आवाज़ारी ।

दो० **श्रवण करो अब मम विनय,. उलझन में हूँ नाथ ।**
बीता जीवन है सकल, लगा नहीं कुछ हाथ ।। 3299 क.
भयदा संकट में घिरा, शशो पंज में नाथ ।
क्या बनेगा हे प्रभो, नौका अब तव हाथ ।। 3299 ख.

नौका मेरी हाथ तिहारे, कर्णधार प्रभु तुम रखवारे ।
तौफ़ान घिरा काल का नाथ, इस काल रहे न को भी साथ ।
प्रभो संभालो हे जगपाल, हो रहा मम चित्त बेहाल ।
इस काल मिला न यदि सहारा, मिलेगा न फिर कभी किनारा ।
मेरी विनय करो स्वीकार, इसे बचा लो किसी प्रकार ।
आर्त हरो इस की भगवान, आर्तहारी तव है अभिधान ।

१* देखें रामायण दोहा 168 से आगे
२* देखें दोहा 340 से आगे
३* देखें दोहा 10 से आगे

बनेगा मेरा इस विध काम, बिगड़ेगा नहीं तव कुछ राम।
अब आओ बस मुझे बचाओ, अंत वेले विंलब न लाओ।
तुम को यदि हैं आर्त प्यारे, मैं आया तव आर्त द्वारे।
अपना विरद संभालो नाथ, बढ़ावो रक्षा का निज हाथ।

दो॰ रक्षा निज प्रदान कर, अब संभालो नाथ।
अन्त समय है आ चला, रहो प्रति क्षण साथ ॥ 3300

मांगे भक्त यदि कुछ हे नाथ, देते बढ़ा कर अपना हाथ।
1 *अर्थार्थी को करें निहाल, भक्त जनों पर सदा दयाल।
भक्त न खाली लौटन पाये, जगती तव यह नियम बताये।
2 * अर्थी जो तव सन्मुख आये, और विनय तुम से कर पाये।
उसे करते हो तुम निहाल, क्षण में बदले उस का हाल।
ले कुछ स्वार्थ 'सेवक' आया, इस पर भी करिये प्रभु दाया।
यह मांगे तुम से भगवान, अपनी आत्मा का कल्याण।
जीवन भर तुम कीनी दाया, सुख सारा मैं तुझ से पाया।
अन्त काल हे नाथ प्यारे, भक्त जनों को तारण हारे।
सिद्ध करो मम स्वार्थ नाथ, शाश्वतकाल राखो निज साथ।

दो॰ रहूँ सदा तव साथ ही, यही विनय भगवान।
बिछोडो न निज चरण से, यह मांगूँ मैं दान ॥ 3301 क.
एक बात है और भी, मूर्ख है तव दास।
ज्ञान पिपासा है लगी, तृप्त करो जिज्ञास ॥ 3301 ख.

तृप्त करो प्रभो मम जिज्ञास, चरणों में हो दृढ़ विश्वास।
दर्शन की है लागी आस, इसी से पूर्ण हो जिज्ञास।

---

1 * अर्थार्थी -धन आदिग पदार्थ को मांगने वाला
2 * अर्थी-मांगने वाला

बिन दर्शन कुछ हाथ न आये, तृप्ती दर्शन पा हो जाये ।
हे प्रभो नहीं अब तरसाओ, सन्मुख 'सेवक' के आ जाओ ।
चातक की सुन मेघ पुकार, बरसत है वह जल की धार ।
'सेवक' की भी सुनो पुकार, देकर दर्शन करो उद्धार ।
बिन तव दर्शन इस का हाल, नहीं सकता कथ दीन दयाल ।
जल बिन मीन न धारे प्राण, बिन दर्शन नहीं मन पत्यान ।

दो० **हे प्रभो अब आय कर, तृप्त करो मम नयन ।**
प्रेम सुधा मन बरस कर, मधुर सुनावो बयन ॥ 3302 क.
दर्शन की जिज्ञास को, करिये पूर्ण नाथ ।
जानत हूँ तुम रहत हो, हर दम मेरे साथ ॥ 3302 ख.
रह साथ तुम देखते, मेरे पुण्य व पाप ।
निरखूँ जिमि मैं रूप तव, करिये किरपा आप ॥ 3302 ग.

बिन दर्शन न चित्त पत्याये, विरह वेदना सदा सताये ।
तरसे आंख सदा प्रभु मेरी, कब निरखूँ मैं सूरत तेरी ।
भय लगे मुझे अन्तर्यामी, भव अटवी एकाकी स्वामी ।
शून्य दिशा में संग न कोई, मारग दर्शक को तो होई ।
बुला-2 तुझे हारा नाथ, हाथ पकड़ कर चलो मम साथ ।
मेरी पुकार सुने न कोई, संगी साथी को तो होई ।
थाम के मेरा अब तुम हाथ, नाथ चलो अब मेरे साथ ।
यही मेरी है चिर जिज्ञास, होगी पूर्ण मुझे विश्वास ।

दो० **पूर्ण करेंगे नाथ मम, मेरी चिर जिज्ञास ।**
मधुर रूप दिखायेंगे, आ कर मेरे पास ॥ 3303

दर्शन नाथ मुझे दे पायें, संग मेरे ही रह वे जायें ।

मैं त्यागूँ नहीं उन का संग, वे त्यागें नही मेरा संग।
मैं बनूँगा उन्हीं का अंग, रह कर इस विध उन के संग।
उन संग सदा यदि रह पाऊँ, तभी ज्ञान मैं प्रभु का पाऊँ।
ज्ञानी जन की संज्ञा पाऊँ, और कृतार्थ जीव कहलाऊँ।
* ज्ञानी भक्त प्रभु को प्यारा, यह वचन स्वयं प्रभु उचारा।
मेरी अन्तिम विनय पुकार, करो प्रभु अविंलब स्वीकार।
मुझे करो निज चरण की धूल, और न भूलना मुझ को भूल।

दो॰ मुझे भुलाना न प्रभो, हूँ निमाना दास।
रखना मुझ को हे प्रभो, निज चरणों के पास ॥3304 क.
यह वियन है आत्महित, जो सुनी तुम नाथ।
धर्म हेतु कुछ और है, कथूँ इसी के साथ ॥3304 ख.,

---

*गीता-7.16

द्वितीय सर्ग

धर्म हेतु विनय

(४०) बहुत पाप का भार (3306क)

दो० हे दयानिधि दया कर, श्रवण करो अरदास ।
'सेवक' अब कुछ कह रहा, कर के चित्त उदास ॥ 3304 ग.

हे प्रभो जिस ओर मैं देखूँ, आदर मैं अधर्म का पेखूँ ।
चलें अधर्म पै जो नर नार, पायें मान वे हर प्रकार ।
धर्मी को न पूछे कोई, धुत धुत उस को हर जां होई ।
दुम दबा कर धर्म आसीन, अधर्म सुखासन पर आसीन ।
धर्म की बात कहीं न चाले, सब अधर्म चर्चा मतवाले ।
खान पान व जन व्यवहार, विरुद्ध धर्म के सभी प्रकार ।
धर्म तो धरती का आधार, धरती डोल रही करतार ।
तुम्हीं प्रभो हो जगदाधार, आ धर्म का करो उद्धार ।

दो० प्रभो धर्म के हेत तुम, आओ नर तन धार ।
धरत रही है डोल अब, अधर्म कर्म के भार ॥ 3305

योग कथा जो धर्म का मूल, उसे गई है जगती भूल ।
राम शिक्षा जो जग को दीन, अर्जुन ने जो कृष्ण से लीन ।
वह शिक्षा जग ने विसराई, मति अधर्म ने है भरमाई ।
यम नियम को जग नहीं जाने, प्राणायाम न आसन माने ।

प्रत्याहार का सुना न नाम, उस को धारणा से क्या काम।
कथें क्या जन गण का विश्वास, धर्म पै न किसी को विश्वास।
काल का जानूँ यह प्रभाव, बदला जिस ने सब का भाव।
ध्यान समाधि जगत भुलाई, मन पै माया सब के छायी।

दो॰ हाल भया यह जगत का, बहुत पाप का भार।
प्रभो धर्म के हेत तुम, आओ ले अवतार ॥ 3306 क.
जग डूबा है पाप में, दया धर्म का नाश।
अशुभ कर्म बहु हो रहे, सज्जन भये हताश ॥ 3306 ख.

हिंसा वृत्ति जग अपनाई, हिंसक सभी बनी जगताई।
युद्धों में हो नर संहार, पशु पक्षियों का हो आहार।
स्वारथरत भये सभी प्राणी, निस्वार्थ वृत्ति भई पुरानी।
अब बात भी मोल बिकाये, कहीं बटोही अन्न न पाये।
सत्य वाणी का भया अभाव, सभी का बदल गया स्वभाव।
किसी को किसी पै न विश्वास, काम चले अब बिन विश्वास।
विश्वासघात भया है धर्म, धोखाधड़ी भया है कर्म।
धोके से जो करें कमाई, समझें उस को ही सुखदायी।
यह युग का है प्रभो प्रभाव, आप ही बदलो युग का भाव।
इस भाव से सभी दुखयारी, और सभी मन चिन्ता भारी।

दो॰ प्रभु विनय स्वीकारिये, दो जनता को ज्ञान।
स्वारथ रीत त्याग दें, सब को मित्र मान ॥ 3307 क.
मनु से भयी मानवता, क्यों जन दानव होय।
तेरी किरपा से प्रभो, पाप में जन न खोय ॥ 3307 ख.

जन सभी दें पाप को त्याग, धर्म कर्म जायें सब लाग।
सत को ही लें धर्म पहचान, असत को मानें पाप महान।
असत्य से लागे सब को भय, असत्य पै चाले होवे क्षय।

सत्य धर्म सर्वोत्तम जानें, बाकी कर्म गौन ही मानें ।
ऐसा समय तभी जग आये, कृपा प्रभो जब तव हो पाये ।
तव कृपा बिन नहीं कल्याण, जगत में ब्यापा शोक महान ।
विकट काल जो अब है आया, बदलो इस को कर के दाया ।
तव जगत है लेवो संभाल, शुद्ध करो मन सब के दयाल ।

दो॰ पाप ताप से मुक्त हो, तेरा यह संसार ।
सत को मानें धर्म सब, असत से न हो प्यार ॥ 3308 क.
सत्य सनातन धर्म है, इस में न संदेह ।
तुम रक्षक हो धर्म के, इस में न संदेह ॥ 3308 ख.

बस अब मम यही विनय पुकार, आओ प्रभो तुम तन को धार ।
सत पुरुषों को मिले सहारा, असत जनों को दण्ड करारा ।
असत की पराजय हो सदैव, सत्य सदैव विजयी मम देव ।
ऐसा तेरा बने विधान, तुरन्त मिले फल हे भगवान ।
* मिलता देर से जो है न्याय, आस्था उस में हो नहीं पाय ।
"तेरे घर में बेशक देर, परन्तु है वहां न अंधेर ।"
मुझे न इस मत से संतोष, दूर करो प्रभु 'देर' का दोष ।
तेरा न्याय स्पष्ट दिख पाय, ऐसा करिये प्रभो उपाय ।

दो॰ जो करत है पाप को, होय उसे प्रतीत ।
"मुझे पाप का फल मिला," कर्म भोग की रीत ॥ 3309

सीख मिलेगी जग को ऐसे, फल पाप का देख के वैसे ।
शक्ति तेरी को लें जन जान, डरें पाप से सब इन्सान ।
यही विनय है मेरी नाथ, दुखी जगत इमि होय सनाथ ।
पापियों को न डर है तेरा, पापियों से है डर घनेरा ।

*Justice delayed is justice denied

सज्जन सोय न चैन की रात, दुष्टों की ही चलती बात।
आओ प्रभो तुम तन को धार, स्थापित धर्म करो करतार।
दिन दिहाड़े हैं फिरते चोर, लूटें रात भी लूटें भोर।
पाप का उन को भय न कोई, तुम बिन अब को रक्षक होई।

दो० तुम बिन रक्षक हे प्रभो, दीखत न को और।
मानव तन को धार कर, दृष्टि करो इस ओर ॥ 3310

चोरी बनी अब है व्यवसाय, लाभ का इक यह भया उपाय।
राजा रंक भये सब चोर, क्या तुम देखो नहीं सब ओर।
तुम तो प्रभु अन्तर को जानो, सब के मन को तुम पहचानो।
स्तेन वृत्ति है सब को प्यारी, वृत्ति बिगड़ी प्रजा की सारी।
मन मर्ज़ी सब ही कर पायें, चोरी से न बाज़ वे आयें।
भक्त भये हैं सब हैरान, सर्वज्ञ प्रभु को क्या न ज्ञान।
तुम तो सब जानो भगवान, भक्त रहें कब तक परेशान।
अब तो करो विनय स्वीकार, ले अवतार आओ करतार।

दो॰ विनय हमारी मान कर, धार के मानव देह।
शासन धरती का प्रभो, निज कर में तुम लेह ॥ 3311 क.
राम राज्य इस विध भये, जिस की चिर उडीक ।*
राज तभी हो न्याय का, चले धर्म की लीक ॥ 3311 ख.
चोरी का तब नाश हो, और नशे सब पाप।
राम राजा हो जगत का, मिटे सकल संताप ॥ 3311 ग.

अनेक पाप बढ़े जग माहीं, उन का कब हो क्षय गोसाईं।
एक पाप हो तो बतलायें, यहां पाप बहु खेल रचायें।

*उडीक-प्रतीक्षा

नर नारी सब को दुख भारी, लंपट मिल बहु करें खवारी ।
दुष्ट लगावें मिल कर सांध, छिन्न मर्यादा के सब बांध ।
भया अधर्म का ताण्डव घोर, धर्म है दुबक पड़ा इक छोर ।
कौन बचावे धर्म को नाथ, रक्षा उस की आप के हाथ ।
धर्म संस्थापन तेरा काम, प्रकटो जलदी तुम हे राम ।
भक्त जनों की सुनो पुकार, विलंब होय न किसी प्रकार ।
पाप घड़ा तो भरा पड़ा है, इस से कारण क्या बड़ा है ।

दो॰ पाप घड़ा है भर गया, अब तो प्रकटो राम ।
कौन सोच में हो पड़े, न विलंब का काम ॥ 3312

विलंब करोगे यदि तुम नाथ, लगेगा न फिर काल यह हाथ ।
त्रेता द्वापर सतयुग नाहीं, प्रकटा है कलियुग इस थाई ।
इस के धोके में ना आना, धूर्त बड़ा यह मैंने जाना ।
स्वार्थ पड़े तो सब कर पाये, गर्दभ को भी बाप बनाये ।
रूप अपना यह इमि बनावे, सतयुगी कोई साधु आवे ।
बहुत ठगे हैं इस ने लोग, ठगी भरा है इस का योग ।
इस की चाल प्रभो पहचान, देव निकालो इस की जान ।
सज्जन कीने इस बेहाल, गलती दुष्ट जनों की दाल ।

(४१) सज्जन दुखी महान (3313)

दो॰ दुष्ट सभी खुशहाल हैं, सज्जन दुखी महान ।
प्रभो पधारो जगत में, करो कृपा भगवान ॥ 3313

जभी भयी थी धर्म की हान, प्रकट भये थे तभी तुम आन ।
देवों का ले पक्ष हे नाथ, असुरों को तुम कीन अनाथ ।

कौन भयी अब भूल स्वामी, सुधी लेवो न अन्तर्यामी।
बिलंब बिगाड़े गा सब काम, प्रतीक्षा में हैं हम तव राम।
पाछे आओगे किस हेत, चिड़ियां चुग जायें जब खेत।
लोभ भी जग में भया प्रधान, लूट लिया इस सकल जहान।
दरिद्र को न पूछे कोई, धनी भरता नित निज तिजोई।
धनियों का नित बढ़ता माल, दरिद्रों का नित खसता हाल।
पाप कमाई कई कमायें, भूखे ही जन कुछ मर जायें।
तुझे दरिद्र नाथ कह पाते, दरिद्र के घर चल तुम जाते।
भीलनी के क्या भूले बेर, आने में जो ला रहे देर।
था दुर्योधन को ठुकराया, विदुरानी घर फेरा पाया।
क्या अब भय कलियुग से खाओ, सुधि न दरिद्रों की ले पाओ।

दो० जिन मचाई लूट प्रभु, शीघ्र आ कर नाथ।
सबक सिखाओ उन सबन, दरिद्र करो सनाथ ॥ 3314

हे प्रभो अब और कथ पाऊँ, जीवन जनता का बतलाऊँ।
शौचाचार से जन हैं दूर, लोलुपता में ही हैं चूर।
भक्षाभक्ष का नहीं विचार, रोग बढ़े बहु इस प्रकार।
षट कर्मों को दिया भुलाय, जिन से तन स्वस्थ रह पाय।
प्राणायाम न करता कोई, जिस से बुद्धि उज्ज्वल होई।
तन का मल और मन की मैल, इन से रोग बहु रहे फैल।
जग ने है जो योग भुलाया, इस कारण बहु दुख है पाया।
अब तुम स्वयं आ भगवान, जग को योग का देवो ज्ञान।

दो० इस विद्या का कौन है, और सिखावन हार।
रहस गूढ़ जो योग के, जानो तुम करतार ॥ 3315

करे योग स्वास्थ्य को पावे, करे योग मन शुद्धि ग्रावे ।
करे योग तो बुद्ध हो शुद्ध, योग करता जन को प्रबुद्ध ।
इस विध तन मन होय निरोग, बुद्धि को भी लगे नहीं रोग ।
प्रभु जगत में योग फैलाओ, दुखी जगत को सुखी बनाओ ।
जग में मिले रोष का दोष, किसी के चित्त में न संतोष ।
जिस गुण से जन सुख को पायें, उसी गुण का अभाव लखायें ।
संतोष अनुत्तम सुख का मूल, उसी को जग ने डाला भूल ।
लाभ अधिक से लोभ अधिकाय, संतोष न जन के मन समाय ।

दो० करे न जन संतोष जब, सुखी किमि हो पाय ।
सुख का साधन एक ही, जो संतोष कहाय ।। 3316

पातंजल शास्त्र यह बतलाये, जन संतोष से सुख कमाये ।
जगत भुलाया यह उपदेश, गरीब अमीर मन सुख न लेश ।
यह सुख की प्रभु रीत सिखाओ, देह धार कर जग में आओ ।
जब संतोष को जग अपनाये, हर प्राणी तब सुख को पाय ।
रहे यदि संतोष से दूर, जगत रहे तब दुखी ज़रूर ।
उस का चित्त रहत तड़पाय, जहां कभी संतोष न आय ।
जीवन की तो क्या कहें बात, मृत्यु पाछे रहत तड़पात ।
नाथ करो अब अपनी दाया, दुखी करे न जग की माया ।

दो० जग संतोषी जब भये, दुखी रहे न कोय ।
दोष अनेकों दूर हों, नींद सुखी जन सोय ।। 3317 क.
जो संतोषी जन भये, वही तपस्वी होय ।
मन का निग्रह बिन किये, किमि संतोष विगोय ।। 3317 ख.

तप की रीत जगत है त्यागी, बुद्धि विषयों की अनुरागी ।

जब तक तप ना जन कर पाये, शुद्ध बुद्ध वह किमि हो पाये।
तेरी दया प्रभु जग पर होय, तप बिन नहीं जन जीवन खोय।
सात्विक तप में सब जन लागें, तामसिक तप सदैव त्यागें।
*जो तप त्रिविध गीता गाया, मन वाणी तन से कथ पाया।
उस को साधें हम भगवान, दो शक्ति हे दया निधान।
देव पूजा सभी कर पावें, द्विज पूजा में चित्त लगावें।
गुरु पूजा हो सब को प्यारी, प्राज्ञों के हों सभी पुजारी।
अहिंसा व्रत हमें हो प्यारा, देह का तप कथा इमि सारा।

दो॰ वाणी का जो तप कहा, गीता में भगवान।
उस को भी हम कर सकें, लो विनय मम मान ॥ 3318

बोलें प्रभो सदैव वह बात, जले न अन्य का चित्त व गात।
सत्य वचन ही मुख पै लायें, अप्रिय वचन को न कथ पायें।
बात हमारी हित कर होय, अहित किसी का न संजोय।
एक कृपा प्रभु और भी होय, स्वाध्याय शील रहे वह सोय।
विनय प्रभो मम यह भी साथ, मन भी तपोशील हो नाथ।
निर्मल चित्त हमरा हो पाय, सौम्यत्व भी इस में आ जाय।
मनन शील स्वभाव हो नाथ, एकाग्र वृत्ति भी हो साथ।
शुद्ध मेरे हों सदा विचार, विनय मेरी यह हो स्वीकार।

दो॰ मम विनय स्वीकार हो, तप से रहें न दूर।
तप बिना यह जगत सब, स्वार्थी होत ज़रूर ॥ 3319 क.
त्रिविध ताप से युक्त होंय, सभी जीव जब नाथ।
स्वर्ग बने भूलोक यह, मिटे विपद की गाथ ॥ 3319 ख.

*गीता XVII 14-16

विनय प्रभु इक और है, यदि करें स्वीकार ।
वेदादि दिव ग्रंथ जो, भये उन का प्रचार ॥ 3319 ग.

जनता ने हैं ग्रंथ विसारे, एक ओर हैं राखे सारे ।
पठन पाठन का क्रम भुलाया, अंधकार है मन में छाया ।
ग्रंथ ज्ञान के होत स्त्रोत, शिक्षा जिन में ओत प्रोत ।
उन को लोग जभी पढ़ पावें, तभी योग का पथ अपनावें ।
वेद वेदांग पढ़ें विद्वान, उपनिषदों से जन गहें ज्ञान ।
ब्राह्मण ग्रन्थ से मिले ज्ञान, श्रद्धा से जन पढ़ें पुराण ।
पाठ रामायण हो निरन्तर, गीता पाठ में हो न अन्तर ।
योग के हैं जो ग्रंथ अनेक, उन का पाठ करे हर एक ।
दिव रामायण जो लिखवाई, जग गण को वह हो सुखदाई ।

दो० दिव रामायण सब पढ़ें, गहें योग का ज्ञान ।
जगत भुलाया योग को, योग दिया प्रभु आन ॥ 3320

तुम प्रभु आ कर योग सिखाया, ईश्वर का प्रणिधान बताया ।
प्रभो तुम ईश्वर हो साकार, करें भजन हम सब प्रकार ।
अपनी भक्ति का दो दान, मेरा दूर भये अज्ञान ।
माया से प्रभो राखो दूर, भूल न मन में आये ग़रूर ।
अनन्य भक्ति हो मेरी नाथ, भूल भी अन्य का गहूँ न हाथ ।
मेरी रक्षा करो भगवान, श्रद्धा का मुझे दीजो दान ।
बार बार मम यही पुकार, मेरी विनय करो स्वीकार ।
मानव धर्म की कर पहचान, करूँ मैं मोक्ष लाभ भगवान ।

दो० तेरी भक्ति ही प्रभो, है धर्म का सार ।
जन वही धर्मात्मा, जिस को तुझ से प्यार ॥ 3321

मुझ को भक्ति का दो दान, सर्व सुखों की जो है खान।
भक्त भये सब गुण सम्पन्न, किसी भी विध न होंय आपन्न।
शुद्धाचार कुशल व्यवहार, भक्त के होंय निर्मल विचार।
पर सुख देख सुखी हो जाय, पर दुख देख दुखी हो जाय।
साचे भक्त की यह पहचान, देख पुण्योदय हर्ष महान।
और अधर्म कहीं हो पावे, अपेक्षा वृत्ति वह अपनावे।
जग में पाप होत बहुतेरे, भक्त लागे न उन के नेरे।
फल पाप का पापी ग्राहवे, भक्त स्वयं को न उरझावे।

(४२) तेरी दया अनूप (3322ख)

दो० सदा दूर रह पाप से, रहूँ भक्ति रस लीन।
ऐसी किरपा कीजिये, पुण्य न मम हो क्षीण ॥ 3322 क.
धर्म कर्म में लग रहूँ सिमरूँ तेरा रूप।
सदा रहे इस दास पर, तेरी दया अनूप ॥ 3322 ख.

यम नियमों पर मुझे चलाओ , आसन प्राणायाम सिखाओ।
प्रत्याहार की दीजो सीख, निज की करूँ मैं सदा परीख।
चित्त में धारूँ तेरा रूप, ध्यान करूँ रह जग से गूप।
समाधि फिर जब मैं पा जाऊँ, तेरे ही मैं रूप समाऊँ।
मेरे जीवन की यही साध, समाऊँ तुझ में तुझे अराध।
ठौर ठिकान न मेरा और, मैं तो लखूँ सदा मुख तोर।
निज चित्त में तुझे दिया स्थान, मुझे देना निज चरणि स्थान।
यदि न ऐसा क़भी कर पाओ, फिर तुम मेरे ऋणी कहाओ।

दो० बात कथी व्यवहार की, मत घबराना नाथ।
चित्त दिया जब मैं तुझें, गहूँ चरण निज हाथ ॥3323 क.

यदि निकालूँ नहीं तुझे, अपने मन से देव ।
तुम सको नहीं छीन फिर, निज चरणों की सेव ॥ 3323 ख.

परम धर्म मैं यह ही जानूँ, तव चरणों की सेवा मानूँ ।
तव चरणों में सभी समाये, जो धर्म के नेम कहलाये ।
ग्रहण करूँ जब तेरे चरण, धर्म सभी का हो आचरण ।
जगत जभी तव चरणी आये, तब उद्धार धर्म हो पाये ।
योग सनातन धर्म कहलाय, जग तव चरणी शिक्षा पाय ।
तेरे चरणों में रह नाथ, रहता पाप न जन के साथ ।
हो किरपा अब जग पै नाथ, जगत लागे तव चरणी साथ ।
पाप ताप सभी होंय विलीन, पायें दया जब तव जन दीन ।

दो० निज चरणों की शरण दो, दीन जनों को नाथ ।
धर्म कर्म में सब लगें चलें धर्म के पाथ ॥ 3324

जब जब धर्म का होत ह्रास, जगत की लागे तुम पर आस ।
तुम्हीं धर्म के हो रखवार, विलंब करो न अब इस बार ।
निकल रहा है धर्म दिवाला, पापिन भरी पाप से शाला ।
शीघ्र बहुडो तुम हे नाथ, लगेगा न फिर काल यह हाथ ।
जायें चिड़ियां चुग जब खेत, फिर पछतायेंगे किस हेत ।
तिल तिल कर है बहता पानी, ढलती देखें धर्म जवानी ।
मूछ अधर्म की पर है ताव, धर्म के मन पर है पछताव ।
जग की आँख लगी तव ओर, उस की तो हो तुम ही ठोर ।

दो० देख रहा है नाथ जी, जग तुम्हारी ओर ।
अधर्म का प्रचार है, पाप बढ़ा सब ठोर ॥ 3325

त्रेता में था अल्प ही पाप, फिर भी आये थे तुम आप ।
द्वापर भी न धर्म से खाली, तो भी आ तुम सुध संभाली ।
कलियुग में जब घर घर पाप, दिया अधर्म निज आसन थाप ।
बचे खुचे जो धर्मी लोग, बन पायें सब पाप के भोग ।
उन की मन्द पुकार भगवान, पड़ती नहीं क्या तेरे कान ।
लगता धर्म है भया हताश, मानो ले रहा अन्तिम श्वास ।
इसे संभालो आ भगवान, मिलेगा न फिर कहीं निशान ।
कलि का मैंने कथ दिया दोष, फिर मुझ को नहीं देना दोष ।
मैंने सेवक धर्म निभाय, स्वामी को दिया सब बतलाय ।
फिर भी विनय यही भगवान, धर्म की लेवो सुध तुम आन ।

दो॰ धर्म के आधार पर, है टिका संसार ।
नहीं रहा जो धर्म ही, मिट जाये संसार ॥3326 क.
प्रभो समय पर सोच लो, अब मेरे भगवान ।
सब के चित्त अधीर हैं, आये कण्ठी प्राण ॥3326 ख.

धर्म बचे तो सब बच पायें, धर्म नशे तो सभी नशायें ।
अंधकार जिमि ग्रसे प्रकाश, करता अधर्म धर्म का नाश ।
विश्व व्यापक जब अंधेरा, सूर्योदय हो, तभी सवेरा ।
अधर्म व्यापक है जग माँहि, धर्म के रक्षक तुम हो साँहि ।
जैसे सूरज जग का प्राण, तैसे धर्म जीवों की जान ।
सूर्य से जग प्रकाश ग्रावे, धर्म से जन ज्ञान को पावे ।
सूरज बिना सभी अंधेरा, सूर्योदय से होय सवेरा ।
धर्म बिना सर्वत्र अज्ञान, उपजत धर्म से सभी ज्ञान ।
ज्ञान से मोक्ष मिले भगवान, गुरु किरपा से पा कर ज्ञान ।

दो० विनय यही अब दास की, धर्म का हो प्रचार।
अंधकार में न रहे, यह तेरा संसार ॥3327

अज्ञान ज्ञान जग ने जान, अधर्म को भी धर्म ही मान।
अनाचार का किया विस्तार. लुप्त भया है सद आचार।
अशुद्ध भये आहार विचार, मिले न जग में सद आचार।
बिना धर्म जीवन दुखयार, तथ्य यह भूल गया संसार।
जीवों प्रति जो धर्म हमारा, उसी धर्म को प्रथम विसारा।
नित्य प्रति हम करते घात, यही कर्म नित होत प्रात।
रहा न मनुष्य पशु में भेद, देख 'सेवक' को होता खेद।
मनुष्य तो पशु के न समान, हिंसा करे जो बन अनजान।
अहिंसा परम धर्म बताया, जीवों प्रति कर्तव्य जताया।

दो० इसी धर्म को भूल कर, पाप करे इन्सान।
पशु बनेगा स्वयं जभी, चीखेगा सुनसान ॥3328 क.
विनय प्रभु तव चरण में, मानव को दो सीख।
मानव देह अमोल है, करें न कर्म अलीक ॥3328 ख.

मानव अपना धर्म भुलाया, जीवमात्र को दुख दे पाया।
जैसा पशुओं से व्यवहार, परस्पर में भी वही आचार।
मानव मानव को संहारे, मिल कर रह सकें नहीं सारे।
सृष्टि का इतिहास जो सारा, उस में कलह क्लेश बहु भारा।
शांती के न क्षण बहु आये, हमें यही इतिहास बताये।
मानव मानव को संहारे, उच्चा स्वर जय घोष उचारे।
जगत में मार काट मचाना, अपना धर्म यही सब जाना।
मानव की यह गाथ पुरानी, युद्धों की है सकल कहानी।

दो॰ मानव के इतिहास पै, मनन करे जब दास ।
सर उस का नीचा भये, मन में भये उदास ।।3329

प्रेम से जीना सब बतायें, क्यों फिर मार काट कर पायें।
भयंकर शस्त्र कई बनाये, जगत सकल जिस से मिट पाये।
मानव मानव से भयभीत, क्या है यही धर्म की रीत।
एक ईश्वर उस के सब पूत, लड़ें परस्पर, मन्द करतूत।
शांत कलह होये जिस रीत, सिखाओ आ प्रभो वह प्रीत।
मानव मानव का हो मीत, रहें परस्पर सहित प्रीत।
द्वेष भाव न चित्त में लायें, सब जन अपना धर्म निभायें।
देवें परस्पर दुख में साथ, सुख में भी रहें मिल इक साथ।

दो॰ नम्र विनय तव चरण में, धर्म सिखाओ आन ।
मानवता को भूल कर , नर भया परशान ।।3330क
देश भक्ति की ओट ले, करते नर संहार ।
देश भक्ति के हेतु तो, आवश्यक न संहार ।।3330ख
प्रभो विश्व के जनन को, आ कर दें आदेश ।
सेव करें निज देश की, नहीं अन्य से द्वेष ।।3330ग

देश भक्त जन वही कहावे, सेवा जनता की कर पावे।
तन मन धन अर्पण कर डारे, अपने प्राण तलक भी वारे।
देश को अपना घर ही माने, जनता निज कुटुंब पहचाने।
जनता का दुख निज दुख माने, जनता का सुख निज सुख जाने।
देश प्रेम है धर्म महान, द्रोह देश से पाप पहचान।
देश के हित निज धन लगावे, देश के हित निज तन लगावे।

देश का धन हडपे वह चोर, उस को लागे पातक घोर ।
प्रभु दीजो सब को यह ज्ञान, देश भक्ति है धर्म महान ।
जन्म भूमि जननी सम जाने, स्वर्ग से भी उसे बढ़ माने ।

(४३) पाप देश से द्रोह है (3331ख)

दो॰ प्रभो विनय तव चरण में, शुद्ध सभी का भाव ।
हो सबन के चित में , देश भक्ति का चाव ।।3331क
देश भक्त सब बन रहें, रहें पाप से दूर ।
पाप देश से द्रोह है, समझें सभी ज़रूर ।। 3331ख

देश धर्म हम को सिखलावे, संस्कृति अपनी जन अपनावे ।
निज भाषा से होवे प्यार, अपने ग्रंथों का सत्कार ।
अपने पूर्वजों का हो मान, उन के जीवन की पहचान ।
ग्रंथ धर्म के जो सिखलावें, वह सभी आचारण में लावें ।
संस्कृति निज सर्वोतम जान, करें सदैव उसी पर मान ।
देश काल के ही अनुरूप, बेशक निरखें उस का रूप ।
निज धर्म और संस्कृति नाथ, छोड़ें न कभी इन का साथ ।
यही हमारी है पहचान , इसी में ही हमारी शान ।

दो॰ निज संस्कृति का गर्व हो, होय धर्म का मान ।
श्रद्धा अपने इष्ट पर, सार्थक जीवन जान ।।3332क
प्रभो हमें सामर्थ्य दो,गहें धर्म की शान ।
विधर्मियों की न इकभी, सुनें हमारे कान ।।3332ख
संस्कृति भारत देश की, सर्वोत्तम है नाथ ।
रक्षा इस की हे प्रभो, है तुम्हारे हाथ ।।3332ग

यहां आक्रमण भये घनेरे, असुरों ने आ डाले डेरे।
भरसक सब ने जोर लगाया, टस से मस न हमें कर पाया।
जिस के रक्षक तुम भगवान, सके न कर उस का नुकसान।
इस का योग साधन आधार, वेद ज्ञान का इस में सार।
गीता जो भगवान सुनाई, सुगंधि उस की इस में छाई।
संत वचनों की मधुर मिठास, चल रहा मानो मधुरश्वास।
वीर पुरुषों की दृढ हुंकार, इस में भरे उत्साह अपार।
यज्ञाग्नि की पुनीत ज्वाला, मानो जग में करत उजाला।

दो॰ चर अचर सभी जगत यह, कुटुंब जिस का होय।
परास्त उसे न कर सके, असुर व दानव कोय ॥ 3333

धन की लूट खसूट मचाई, नगरों की थी कीन तबाई।
ग्रंथालय थे कई जलाये, देवालय भी कई गिराये।
चली न फिर भी लेश थी पेश, अमर रहेगा भारत देश।
असुरों का अहंकार भारी, विजय करेंगें दुनिया सारी।
भारत पर निज कर के राज, सारा छिन्न भिन्न करेंगें साज।
यहां की भाषा धर्म विचार, और यहां का सकल आचार।
मलिया मेट करेंगें सारा, चाले सिक्का सदा हमारा।
असुरों ने पर बात भुलाई, भारत के तो देव सहायी।
उन की चाली न कुछ पेश, अमर रहेगा भारत देश।
दैवी संस्कृति दैवी वेश,देव वाणी यहां चले हमेश।
बुरी दृष्टि जो इस पै राखे, अपने कर्मों का फल चाखे।
भारत विश्व वन्द्य है देश, इस के सहायक देव हमेश।

दो॰ विनय सुनो हे नाथ जी, ऋषि मुनियों का देश।
संस्कृति भारत देश की, सुरक्षित रहे हमेश ॥3334

असुरों ने कुराज चलाया, अत्याचार बहुत कर पाया ।
आसुरी राज रहा कुछ काल, जनता को उन कीन बेहाल ।
देश की लीनी संपत लूट, कौन वर्णे वह लूट खसूट ।
अत्याचार भयंकर कीन, कहते 'हमारा मानो दीन' *।
"आसुरी दीन जो न अपनाय, धड़ से अलग सर कीना जाय ।"
भारत के पर रक्षक नाथ, रक्षा देश की उन के हाथ ।
दिव धर्म जो यहाँ का प्यारा, उस को कौन मिटावन वारा ।
मूषक कुतर कुतर कर पाते, जड़ धर्म की काटन चाहते।
भारत पर भगवान का हाथ, गया ठनक असुरों का माथ ।
मूषक को विडाल दबोचा, सात समुद्र से आय नोचा ।

दो० सात समुद्रों पार से, आ दानव इस देश ।
लीन दबोचा असुर को, चले न आसुर पेश ॥ 3335

दानवों ने आ असुर संहारे, शासक बने देश के सारे ।
दानव ने निज राज चलाया, अपना नया निजाम बनाया ।
अपनी भाषा अपना धर्म, यहां लादे सब अपने कर्म ।
भारत पुनः दुखी हो पाया, दासता ने फिर आ दबाया ।
बचा खुचा धन था उन छीना, भारत को निर्धन कर दीना ।
दानव कहे " यह मूर्ख देश, सभ्यता जनता में न लेश ।
इन की झूठी सकल कहानी, गडरियों की है वेद निशानी ।
इन को अब हम सभ्य बनायें, निज भाषा साहित्य पढ़ायें ।"
भूल गये पर दानव लोग, भारत में ऋषियों का योग ।
सत्य अहिंसा शस्त्र महान, शक्ति कोई नहीं उस समान ।
दानव चालें बहु चल पाय , भाग गये फिर मुहँ की खाय ।

दो० प्रमाण मिला संसार को, भारत धर्म महान ।
योग शक्ति उस में छिपी, प्रभु का दिव्य ज्ञान ॥ 3336 क

* दीन-महज़ब, मत

विनय प्रभु है आप से, भारत के सब लोग।
योग धर्म पालन करें, दिव्य सीख के योग ॥3336ख
खास विनय है नाथ अब, श्रवण करें ला ध्यान।
मन मेरा दुखियार है, हैं बिगड़े इन्सान ॥3336ग
ऋषियों की संतान के, कर्म भये विपरीत।
विमुख योग से हैं हुवे, चलते उलटी नीत ॥3336घ
धर्म का नहीं ज्ञान कुछ, मनमुख भये विशेष।
हो कैसा आचार अब, जन जाने न लेश ॥3336ङ

माया सब को लागे प्यारी, सभी स्वार्थी भये नर नारी।
सुत पिता को नहीं सन्माने, भर्ता को न नार ही माने।
मित्र मित्र से कर रहा द्रोह, डूबे मात पिता सुत मोह।
राम लक्ष्मण सा भ्रातृ प्यार, आज जगत ने दीन विसार।
परिवारिक है कलह ल्केश, शांति का नहीं चित में लेश।
संबन्धियों के संबन्ध विलीन, भावना सह जीवन की क्षीण।
पारिवारिक सामाजिक धर्म, भूल गये जन सारे कर्म।
यदि अपना सब धर्म निभायें, सुखी तंभी सभी हो पायें।

दो॰ मम विनय स्वीकारिये, सब को दीजो बोध।
अपना अपना धर्म सब, कर पायें कर शोध ॥ 3337 क
मात पिता आचार्य पै, बड़ा दायित्व जान।
अपना अपना धर्म वे, सभी करें भगवान ॥ 3337 ख

धर्मी पुरुष तभी बन पावे, खुद माता जब धर्म सिखावे।
धर्मी पुरुष तभी बन पावे, पिता धर्म पर अगर चलावे।

धर्मी पुरुष तभी बन पावे, सीख आचार्य से यदि पावे ।
धर्मी पुरुष ही देश की शान, उसी से होता देश महान ।
सुपठित व धर्मी होवे मात, धर्मी पुरुष बने साक्षात ।
आचार्यवान जो होय तात, धर्मी पुत्र बने साक्षात ।
होय आचार्य वसिष्ठ समान, शिष्य बनाये राम समान ।
स्तंभ धर्म के तीन ये नाथ, भविष्य जगत का इन के हाथ ।
दुर्बल आज ये तीनों नाथ, जगत की डोरी अब तव हाथ ।

दो० जिन के सर पै भार है, देश के निर्माण का ।
वे ही अब मदहोश हैं, क्या बनेगा देश का ।।3338क
अब समस्या है तेरी, सुलझावो खुद आन के ।
बेबस नौका डूब रही, तट लगाओ आन के ।।3338ख
तव चरणों में है विनय, हे मेरे भगवान ।
खुद तुम्हीं अब आय कर, करो धर्म का त्राण ।।3338ग

युग युग में तुम तन को धार, धर्म बचाया हे करतार ।
जब जब अधर्म बढ़ा संसार, कीना तुम उस का प्रतिकार ।
पाप ने जब जब सिर उठाया, तुम ने उस को कुचल दिखाया ।
कलियुग की अब बात निराली, पाप से थल कोई न खाली ।
*[1] वर्ण धर्म जो तुम रच पाया, उस का तो अब भया सफाया ।
गुण कर्म स्वभाव अनुसार, कथे वर्ण तुम ने थे चार ।
उन को सभी जन्म से मानें, गुण कर्म स्वभाव ठुकरानें।
बिगड़ा सब का है आचार, धर्म की हानि भई अपार ।
बिन विद्या अब विप्र कहावें, क्षत्रिय दुर्बल पर चढ़ पावें ।

*[1] चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं, गुण कर्म विभागशः । गीता IV 13.

बनिये लूट खसूट मचाई, हड़प देश की सकल कमाई ।
चौथा वर्ण करे तकरार, योग्यता बिन मांगे अधिकार ।

दो॰ वर्ण धर्म इस विध भया, गुण कर्म से लुप्त ।
धर्म हित दिखलाओगे, कब शक्ति निज गुप्त ॥ 3339

बार बार अब धर्म पुकारे, "आओ मेरे राखन हारे ।
शरणी हूँ मैं तेरी आया, हूँ कलियुग में मैं ठुकराया ।
पास न लागे मेरे कोई, मुझ को पास न राखे कोई ।
कहां रहूँ वह जगह बताओ, मेरी रक्षा अब कर पाओ ।
नर नारी ने मुझे भुलाया, है समाज ने भी ठुकराया ।
चतुर्वर्ण ने बहिर धकेला, बेबस हो कर पड़ा अकेला ।
१*आश्रम धर्म पर थी कुछ आस, उस ने भी मुझे कीन निरास ।
ब्रह्मचारी हैं अब बिलासी. विद्यापीठ रही ना कासी ।
गृहस्थी निज धर्म गये भूल, त्यागे यज्ञ के सभी असूल ।

(४४) एक सहारा तोर (3341 क)

दो॰ दोनो आश्रम जब भये, धर्म कर्म से हीन ।
लुट गया आवास मम, हूँ पड़ा बन दीन" ॥ 3340

प्रभो धर्म की सुनो पुकार, प्रकटो अब तुम हे करतार ।
सच कहता है धर्म बिचारा, उसे न है को पूछन वारा ।
साधु संत थे उसे मनाते, उलटा मार्ग वे ही ग्राहते ।
बान प्रस्थी रहा न कोई, सन्यास की न इच्छा होई ।
गृहस्थी घर में ही सुख मान, भूल के न सन्यास में जान ।
चारों आश्रमों का यह हाल, धर्म क्यों न होय बेहाल ।

*१ आश्रम धर्म-ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम ।

धर्म ओर अब दीजो ध्यान, प्रभो संभालो उस को आन ।
युगयुग में तू उसे बचाया, कलियुग में अब क्यों विसराया ।

दो॰ धर्म को तो है सिरफ, एक सहारा तोर ।
विसारोगे यदि हे प्रभु, किस जाये वह ठोर ॥ 3341 क.
आते हो तुम जगत में, ले कर जब अवतार ।
पुरुषोत्तम मर्याद हो , जाने सब संसार ॥ 3341 ख.

जग को तुम मर्याद सिखाते, अपने जीवन से समझाते ।
माता का कर्त्तव्य जो होय, और पिता का भी हो जोय ।
भाईयों का जो होत प्यार, मात पिता का जैसा दुलार ।
मित्रों से हो क्या व्यवहार, सेवक के प्रति क्या आचार ।
दंपती का प्यार हो कैसा, पतिव्रता का धर्म हो जैसा ।
सास बधू का नाता जोय, श्वसुर का कर्तव्य जो होय ।
सेवक स्वामी का संबंध, राज्य का जिमि होय प्रबंध ।
गुरु से शिक्षा किस विध पायें, वैरी से किमि वैर निभायें ।
ले अवतार जभी तुम आते, कर आदर्श स्थापित जाते ।
जन आदर्श जायें पर भूल, उडायें पुनः धर्म की धूल ।
बीता बहुत काल अब नाथ, धर्म की रक्षा तेरे हाथ ।
मलियामेट धर्म हो पाया, आने का अब वेला आया ।

दो॰ मम विनय को श्रवण कर, ध्यान धरो हे नाथ ।
यही समय आगमन का, जग देखे तव पाथ ॥ 3342

पथ तेरा प्रभो जग निहारे, विलंब करो न जगत पुकारे ।
विलंब से हैं सब परेशान, 'सेवक' तो है बहुत हैरान ।
धर्म रक्षा है तेरा काम, शीघ्र करो अब आ तुम राम ।

यह कार्य तू स्वयं संभाला, अपने सर खुद भार है डाला।
धर्म देखे अब किस की ओर, और न कहीं है उस को ठोर।
सांस धर्म के घुट घुट जाते, वह पुकारे तुम नहीं आते।
अब बताओ कहां वह जाये, तुम समान शरण जहां पाये।
दूसरी शरण यदि वह पाय, परशान तुझे न वह कर पाय।

दो॰ यही विनय है धर्म की, इसे बचाओ आन।
जभी धर्म का नाश हो, नाशे तभी जहान ॥3343 क.
अगर जगत का नाश हो, होगा हा हा कार।
क्या तुम्हें स्वीकार है, प्रजा का चीत्कार ॥ 3343 ख.

हे प्रभो अब धर्म संभालो, संकट में न जग को डालो।
हर इक प्राणी करत पुकार, आओ आओ रक्षण हार।
फंसी बुरी है हमरी जान, अधर्म करत है दुखी महान।
आ अधर्म का करो सफाया, अधर्मी पर न करिये दाया।
अधर्मी पर यदि पड़े न पाश, जगत मर्यादा का हो नाश।
बेल अधर्म बढ़त बहुतेरी, काटो प्रभो लाओ न देरी।
इस का बीज तो नाश न होय, तेरा नियम बना है सोय।
युग युग होत इस का विस्तार, और करते स्वयं संहार।
यह सनातन कर्म तुम्हार, क्या तुम ने अब भूल है डार।

दो॰ प्रभो भुलाइये न कभी, निज सनातन नेम।
तेरे ही तो हाथ में, है धर्म की क्षेम ॥ 3344

तेरे बिन को धर्म बचाये, बिना तेरे अधर्म मिटाये।
कौन अधर्म ने जग दुखयार, सत्य अहिंसा भये ख़वार।
चोरी की तो लागी बहार, लोभ का बहुत भया विस्तार।

मन और बुद्ध भये अशलील, लीन लोभ संतोष को कील ।
तप तो जग में गया है भूल, ग्रंथों पर है चढ़ गई धूल ।
ईश्वर भक्ति भई पाखण्ड, मन्दिरों में हैं जन उद्दण्ड ।
फटा धर्म का ताना बाना, है आवश्यक तेरा आना ।
अब बतलाओ कब तुम आओ, धर्मी जनों को धीर बंधाओ ।

दो० धर्मी जन हैं देखते, कब आयेंगे नाथ ।
धर्म का उद्धार कर, करेंगे जगत सनाथ ।। 3345

विस्तृत करो प्रभो तुम योग, सुखी भयें सभी धर्मी लोग ।
योग करें और रोग दुराँय, दैहिक संकट ना कभी आँय ।
रोग बहुत जो तन को लागें, सभी योग साधन कर भागें ।
पृथ्वी पर जिमि उपजत घास, तन में है तिमि रोग का वास ।
पृथ्वी की जिमि उपज अनेक, प्रकटें तन में रोग अनेक ।
पृथ्वी लेती खाद की ओट, तन में मल की नहीं है तोट ।
अधिक खाद जिमि उपज बढ़ाये, मल अधिक बहु रोग उपजाये ।
खादें घटें उपज घट पावे, मल छीजें तो रोग न आवे ।

दो० प्रभो रोग जो देह के, मल से ही उपजायें ।
आ सिखावो योग तुम, जिमि न मल रह पायें ।। 3346 क.
षटकर्मन का ज्ञान दो, है मुख्य जो योग ।
अन्तर का मल शुद्ध हो, स्वस्थ रहें सब लोग ।। 3346 ख.
नेति साधन साध कर, रहें रोग से दूर ।
आंख कान व नाक की, शक्ति बढ़े ज़रूर ।। 3346 ग.
धौति किरया जब करें, शिक्षा लेकर लोग ।
कफ पित्त व वात के, व्यापें न तब रोग ।। 3346 घ.

विनय हमारी हो स्वीकार, सीखें योग सभी नर नार ।
बस्ती सब को हो सुखदायी, त्राटक सिद्ध करें मन लायी ।
बस्ती से हों आंतें शुद्ध, कपालभाति प्रकाशे बुद्ध ।
योग के छः जो कर्म बताये, इन्हें प्रति दिन जो कर पाये ।
रोग सभी रहें उसके दूर, दीखे उस के मुख पै नूर ।
प्रभु आओ अब योग सिखाओ, रोग जगत के दूर भगाओ ।
योग धर्म जनता विसराया, घेरा तभी रोग ने पाया ।
* "साधन मुख्य धर्म का देह," भूल गई जब जनता येह ।
योग विहीन भये तब लोग, व्याप गये तब उन में रोग ।
रोगों ने कर व्याकुल चित्त, सब धर्म कर्म छुड़ाया नित्त ।

दो० धर्म कर्म तब हो सके, होय स्वस्थ शरीर ।
प्रभु चिन्तन न हो सके, व्यापे मन जब पीर ॥ 3347 क.
छः कर्म यही योग के, मत भूले संसार ।
प्रातः उठ जो नित करे, लगे दुखों से पार ॥ 3347 ख.
इन को ही जन जान ले, मुख्य धर्म का काम ।
रोग रहित जब देह हो, तभी सधेंगे काम ॥ 3347 ग.
देह रोग से मुक्त हो, और बने बलवान ।
बल के साधन हैं कथे, आसन योग महान ॥3347 घ.

आसन योग लाख चौरासी, हर इक आसन गुण की रासी ।
आकर दो प्रभु उन का ज्ञान, हमरा देह बने बलवान ।
जीवन में कर्मों का भार, उठा सकें प्रभो सब प्रकार ।
कभी न जायें हिम्मत हार, योग साधन का यह उपकार ।

* शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्

आसन करें निरन्तर देव!, सशक्त देह से जग की सेव ।
सेवा से न हार को मानें, सेव धर्म सर्वोत्तम जानें ।
आसन जो प्रभु आप सिखावें, श्रद्धा से हम वे कर पावें ।
आप की कृपा ऐसी होय, आसन कर जन लाभ को गोय ।

दो० श्रद्धा से जन जब करें, ये साधन भगवान ।
लाभ तभी सब को मिले, श्रद्धा बिन हो हान।। 3348

श्रद्धा का प्रभो दीजो दान, श्रद्धा बिन न योग का ज्ञान ।
लाख यत्न को जन कर पावे, बिन श्रद्धा न योग कमावे ।
श्रद्धा से मन वश में आवे, और एकाग्र वह हो पावे ।
गुरु से ज्ञान ग्राहणहारा, श्रद्धावान ही जन हो प्यारा ।
दान श्रद्धा का हम पायें, ज्ञान योग साधन का ग्राहें ।
नित्य निरन्तर कर के योग, प्रभो सकें बन किरपा योग ।
साधक ही हैं तुम को प्यारे, तव शिक्षा पर चलने वारे ।

(४५) प्रभु के चरण आराध (3350)

दो० तव शिक्षा पर जो चले, करे निरन्तर योग ।
जीवन उस का सफल हो, इमि कथें सब लोग ।। 3349

योग के साधन हैं बे अन्त, शिक्षा आप से ग्राहवें सन्त ।
प्राणायाम सभी कर पावें, निज प्राण को साध दिखावें ।
'सेवक' की यही विनय पुकार, प्राण की शिक्षा दो करतार ।
* पांच प्राण उप पांच प्राण, इन सब का प्रभु दीजो ज्ञान ।
प्राण जीवन का है आधार, इस का रोम रोम प्रसार ।

*प्राण- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ।
उप प्राण- देवदत्त, धनञ्जय आदि ।

चित्त पर भी इस का अधिकार, यह भी चाले चित्त अनुसार।
दोनों का संबंध घनिष्ठ, उखड़ें प्राण तो होत अनिष्ठ।
प्राण की शक्ति का ना पार, चित्त का भी बल कथा अपार।

दो॰ मन प्राण की शक्ति को, ला संयम में साध।
प्राणायामी वह बनत, प्रभु के चरण अराध ॥ 3350

ऐसा प्राणायाम सिखावें, वश मन को जिमि हम कर पावें।
चित्त तो चंचल है भगवान, और प्रमाथी लीना जान।
इसके बल की थाह न नाथ, कठोर वा दृढ़ भी है यह साथ।
इस के सहचर जब हों प्राण, तभी कुछ काम बने भगवान।
दोनों शरणी मिल जब आवें,तव किरपा से वश हो पावें।
मुझ पर भी प्रभु हो तव दाय, चित्त मेरा वश में हो पाय।
हो इकाग्र ध्यान में लागे, और सकल यह चिन्ता त्यागे।
प्राणायाम से मन वश आय, प्रभो सिखाओ वही उपाय।

दो॰ प्राणायाम सिखाय कर, करो योग का दान।
चित्त एकाग्र होये जिमि, और आत्म कल्याण ॥ 3351

प्राणायाम करे नर जोय, प्रत्याहार करे सिद्ध सोय।
सिद्ध पुरुष कहें प्रत्याहार, योग का मुख्य यही आधार।
प्रत्याहारी जो नहीं होय, दूर योग से कोसों सोय।
तेरी मुझ पर हो जब दाय, प्रत्याहार करूँ चित लाय।
अंगो पर हो संयम ऐसे, कछुआ अंग सिकोड़े जैसे।
विषयों से न होय अनुराग, कृपा करो प्रभो होय विराग।
दृष्टि उलझे नहीं जग माहीं, कान भी रस न लें उस ताहीं।
जिह्वा स्वाद में न भरमाय, नासिका को न गंध रिझाय।
तन शीतोषण सम कर जाने, तव किरपा वश सुख वह माने।

दो० ऐसी किरपा कीजिये, अंग हों मम अधीन ।
तन का प्रत्याहार यह, कहें योगी प्रवीण ॥ 3352

कठिन काम बहु मन का निग्रह, मन वश हो जब ईश अनुग्रह ।
मन पर जग की कड़ियां भारी, प्रभु किरपा बिन न कटतीं सारी ।
मन को धन का लोभ लुभावे, कठिन बंधन न छूटन पावे ।
वित्तेषण का नाम धरावे, इस के वश सब जग ही आवे ।
धन का लोभ लुभावन भारी, इस से बचें नहीं नर नारी ।
दरिद्र को तो सदा सतावे, धनी पुरुष भी ना बच पावे ।
धन की चिन्ता रहे सब काल, धनी व दरिद्र सभी बेहाल ।
प्रत्याहार किमी हो पावे, धन की चिन्ता मन को खावे ।

दो० प्रभो शक्ति वह दीजिये, पड़ूं न धन के जाल ।
राखो जिस तुम हाल में, रहूँ सुखी उस हाल ॥3353 क.
एक और है ईषणा, संतति का जो प्यार ।
पुत्रेषणा कहलावे, फंसावे संसार ॥3353 ख.
बेशक रहें गृहस्थ में, रहें मोह से दूर ।
निर्मोही जो रह सके, वही कहावे शूर ॥3353 ग.
वही कहावे शूर जन, मोह न जिस के चित्त ।
गिरे मोह के जाल जो, जाने नहीं निज हित ॥3353 घ.
प्रभो रहूँ मैं जगत में, निर्मोही बन शूर ।
देखूँ हर इक जीव में, प्रभु तुम्हारा नूर ॥3353 ङ

वित्तेषण से मुझे बचाओ, पुत्रेशण से मुझे छुड़ाओ ।

तीन ईषनायें ही दृढ कड़ियां हैं-वित्तेषणा, पुत्रेषना, लोकेशना

ईषणा एक और जो नाथ, उस का भी छुड़ाइये साथ।
उस से छूटन है दुश्वार, ज्ञानी बहुत बहे उस धार।
मैं तो क्षुद्र एक इन्सान, बचाओ मुझ को हे भगवान।
लोकेषणा है जिसका नाम, कौन बचा उस से हे राम।
धनी चाहे निज धन से नाम, वीर चाहे निज शौर्य से नाम।
पण्डित पण्डिताई से नाम, सेवक सेवकाई से नाम।
साधु साधुताई से नाम, अधिकारी अधिकार से नाम।

दो॰ नाम नाम ही नाम का, भूखा सब संसार।
नाम मेरा हो जगत में, सभी को धुन सवार ॥3354 क.
"यश का भूखा मैं नहीं," जो कहे इन्सान।
उस के भी मन में बसे, जाने मुझे जहान ॥ 3354 ख.
प्रभो प्रबल यह ईषणा, किमि बचूँ मैं नाथ।
नहीं निज बुद्धि से बचूँ, उपाय है तव हाथ ॥3354 ग.
लोकेषण के कारणे, मिले न मोक्ष द्वार।
जग में ही भटकत रहे, आत्मा हर प्रकार ॥ 3354घ.
प्रभो संभालो जीव को, पड़े हैं शत्रु पेश।
त्रय ईषण के सामने, चले न मेरी पेश ॥ 3354 ङ

त्रय ईषण से मुझे बचाओ, द्वार मोक्ष पर अब ले जाओ।
*जीवन का अन्तिम यह काल, अब तो लीजो मुझे संभाल।
जन्म अनेकों मैं भरमाया, मानव तन इस भव में पाया।
इस को सार्थक अब कर पाओ, मुक्ति का मुझे राह दिखाओ।
गये चूक यदि क्षण ये नाथ, लगेगा अवसर कब फिर हाथ।

*अन्तिम काल–चतुर्थ काल, आयु 75 वर्ष के पश्चात।

जन्म मरम का तान्ता टूटे, सृष्टिचक्र से नाता छूटे ।
तेरा अंश तुझ में हो लीन, अन्तिम विनय यह मैं अब कीन ।
यदि स्मरण कीने तव चरण, यदि गही नहीं अन्य की शरण ।
उस का फल मैं यह ही चाहूँ, तेरे रूप में मैं समाऊँ ।

दो॰ यही धर्म का सार जो, समझा मैंने नाथ ।
इसी धर्म का दान कर, करिये मुझे सनाथ ॥ 3355

मन का प्रत्याहार सुनाया, बुद्धी का अब सन्मुक आया ।
विवेकात्मक जो बुद्धि पायी, वह अविवेकी क़िमि हो पायी ।
विवेकी बुद्धि सत को ग्राहे, असत मार्ग अविवेक ग्राहे ।
असत के तो हैं रूप अनेक, बुद्धि ग्राहे जब प्रत्येक ।
भटक भटक कर बाहिर जाये, प्रत्याहार न तब हो पाये ।
उस के सन्मुख लक्ष्य हो एक, हो विचार में बस वह एक ।
प्रत्याहार बुद्धि का होय, बुद्धि का बस योग है सोय ।
प्रत्याहार जो धर्म कहाय, सिखाओ प्रभु खुद जग में आय ।

दो॰ दृश्यों में जग रम रहा, जो माया के रूप ।
दिव्य दर्शन में न रमे, जो तेरा स्वरूप ॥ 3356 क.
ऐसा तो तब हो सके, तव कृपा जब होय ।
मति भ्रमित है जगत की, स्थिर करो प्रभु सोय ॥ 3356 ख.

योग धर्म खाण्डे की धार, चलना उस पर है दुश्वार ।
जो चले वह कट कट जाये, नहीं तो फिसले व गिर पाये ।
स्थिरता उस पर अतीव क्लिष्ठ, पग पग पर वहां भये अनिष्ठ ।
योग धर्म में तुम्हीं सहाय, और न दीखत कोई उपाय ।
योग करत जो तुम को भूल, हाथ लगे नहीं उस के धूल ।

इस रहस्य को योगी जाने, कुयोगी इस को न पहचाने।
योगी समझे तेरी शक्ति, होय लोकोत्तर उस मन भक्ति।
योगी को तुम निज कर जानो, अपनी आत्मा उस को मानो।

(४६) दें मोक्ष भगवान (3363 च)

दो॰ ऐसे योगी नाथ जी, होंगे जिस प्रदेश।
धर्म भूमि उस को कहें, परम धन्य वह देश ॥ 3357 क.
इसी धर्म का लोक में, हो प्रभो विस्तार।
इसी धर्म के हित प्रभु, आते ले अवतार ॥ 3357 ख.
शीघ्र आइये नाथ जी, आ सिखलायें योग।
योग मुद्र जो तुम कथीं, लुप्त भया वह योग ॥3357 ग.

योग मुद्र में हमें बिठाओ, स्वयं आय सब योग सिखाओ।
कुण्डली शक्ति होय प्रबुद्ध, जागृत भये जनगण की बुद्ध।
मुद्र अनेकों ऋषिन बनाईं, जग ने हैं वे सभी भुलाईं।
कौन सिखावे अब हे नाथ, लगे ज्ञान किस विध हम हाथ।
अन्धकार में जग रह पाया, आत्म बोध का भया सफाया।
घट घट में आ करो उजाला, आत्म ज्योत जगाओ ज्वाला।
हो प्रकाश मानव के मांही, प्रभो योग की उपमा नाहीं।
तुम बिना यह ज्ञान न पायें, शीघ्र करो अब देर न लायें।

दो॰ शीघ्र आइये नाथ मम, सजग करो संसार।
योग धर्म को जान कर, सजग भयें नर नार ॥ 3358 क.
धर्म को केवल आश्रय, है तेरा भगवान।
आसुर शक्ति प्रबल है, करे धर्म की हान ॥ 3358 ख.
असुरों का संहार कर, करो स्थापित धर्म।
तेरा तो है हे प्रभो, यही सनातन कर्म॥ 3358 ग.

सतयुग में तुम असुर संहारे, त्रेता में तुम राक्षस मारे ।
पापियों का द्वापर में नाश, कलियुग करे न हमें हताश ।
धर्म निरीखे पग अब तेरे, ताक रहा है सांझ सवेरे ।
रूप किसी में चाहो आओ, असुर संहारक बन कर आओ ।
कलिका दुर्गा कृष्ण या राम, अथवा योगी लाल बन राम ।
कर्म तुम्हारा हो यह एक, रहे असुर नहीं जग में एक ।
आसुरी शक्ति का संहार, प्रभो करो लेकर अवतार ।
तुझ बिन करेगा को यह काम, सर्व समर्थ हो तुम हे राम ।

दो० विनय दास की श्रवण कर, आओ शीघ्र राम ।
देर लगाओ न प्रभो, बिगड़ेगा सब काम ।।3359 क.
एक विनय है और भी, सुनिये मम भगवान ।
चंचल मन जिमि वश भये, वह अब दीजो ज्ञान ।। 3359 ख.

स्थिर करो प्रभो मेरा ध्यान, आओ सदा तुम मेरे ध्यान ।
ध्यान धर्म का शुद्ध है रूप, ध्यान ही देता ज्ञान अनूप ।
ज्ञान शून्य है भया संसार, ध्यान योग से हो निस्तार ।
ध्यान योग जग में विस्तारे, तेरा ध्यान करें जन सारे ।
ध्यानी भक्त को मिले विवेक, धर्म की बात गहे प्रत्येक ।
ध्यान से धर्म का हो प्रचार, हो जन गण का शुद्ध आचार ।
ऐसे ध्यान का दीजो दान, जिस विध जग का हो कल्याण ।
योग जगत में फिर आ जाये, ध्वजा धर्म की फिर लहराये ।

दो० ध्वजा धर्म की जगत में, फिर लहराये नाथ ।
दैवी शक्ति विश्व में, दे धर्म का साथ ।। 3360 क.
ध्यान धर्म का मूल है, ध्यान बिना न धर्म ।
ध्यानी जन का विश्व में, धर्म फिलाना कर्म ।। 3360 ख.
मुझे ध्यान से ले चलो, समाधि में हे नाथ ।
रहूँ सदा तव चरण में, कभी न छूटे साथ ।। 3360 ग.

समाधि सदा ज्ञान उपजावे, समाधि से जन शांति पावे ।
समाधि के जो भेद अनेक, योगी अनुभव करे प्रत्येक ।
मुझे मिले तुझ से वरदान, सकल समाधियों का जो ज्ञान ।
संप्रज्ञात समाधि पहचानूँ, मैं असंप्रज्ञात को जानूँ ।
सविकल्प में स्थिती को पाऊँ, निर्विकल्प में डुबकी लाऊँ ।
हो सविचार में दिव्य विचार, निर्विचार में ज्ञान अपार ।
* प्रकट सबीज में भव का बीज, मिले कैवल्य जभी निर्बीज ।
सकल समाधियों के ये भेद, करो किरपा जानूँ बिन खेद ।
बिन किरपा यह को लख पावे, समाधि स्थित न जन हो पावे ।

दो॰ समाधि में जब जन भये, गहे धर्म का सार ।
समाधि से जब वह उठे, सदा शुद्ध आचार ॥3361

योग से जन का शुद्ध आहार, योग से जन का शुद्ध विचार ।
योग से जन का शुद्ध आचार, योग से जन का शुद्ध व्यवहार ।
बिना योग न धर्म हो पाये, योग करे जन धर्म कमाये ।
आत्म ज्ञान धर्म का पक्ष, आत्मोद्धार धर्म का लक्ष्य ।
आत्म ज्ञान योग दे पाये, आत्मोद्धार योग कर पाये ।
आत्मोद्धारक योगी होय, आत्महंता जो, पापी सोय ।
नियम योग जो पाल दिखावे, वह ही योगी जन कहलावे ।
नियम न योग के पाले जोय, अधर्मी पुरुष कहावे सोय ।

दो॰ धर्म जगत में तब बढ़े, योग करें नर नार ।
प्रभो पधारो जगत में, करो योग विस्तार ॥ 3362

---

* ये सभी समाधि अवस्था के उत्तरोत्तर रूप हैं :-
संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात; सविकल्प, निर्विकल्प;
सविचार, निर्विचार; सबीज, निर्बीज ॥

प्रभु बिना को योग सिखलाये, प्रभु बिना को ज्ञान दे पाये ।
प्रभु बिना को असुर संहारे, प्रभु बिना को भक्त जन तारे ।
दूर करें प्रभु जग के पाप, दूर करें प्रभु जग संताप ।
दूर करें प्रभु आसुर कर्म, दूर करें प्रभु घोर अधर्म ।
दूर करें अन्याय अनीत, दूर करें अधर्म से प्रीत ।
दूर करें अघ का विस्तार, प्रभु दूर करें असत आचार ।
दूर करें प्रभु मन के दोष, दूर करें प्रभु तन के दोष ।
दूर करें प्रभु बुद्ध भ्रांत, प्रभु करें मम चित्त को शांत ।

दो० भक्तों के मन आस है, पधारें शीघ्र नाथ ।
पाप ताप सब दूर कर, करेंगे जग सनाथ ।। 3363 क.
धर्म सनातन योग का, ग्रहण करे संसार ।
मानव तन जिस हित मिला, सफल करें नर नार ।।3363 ख.
योग बिना न हो सकत, नर तन का उद्धार ।
प्रभु बिना नहीं योग का, होत जगत प्रसार ।।3363 ग.
प्रभु तुम्हारे जगत में, असुर करें बहु पाप ।
अब तो आना ही पड़े, देंय दण्ड खुद आप ।।3363 घ.
विनय दास की एक ही, होय धर्म की जय ।
योग धर्म की जीत हो, होय अधर्म का क्षय ।।3363 ङ
धर्म हित प्रसंग यह, पढ़ें सुनें ला ध्यान ।
और करें आचरण हम, दें मोक्ष भगवान ।।3363 च.

इति धर्म हित विनय समाप्त

तृतीय सर्ग

अथ देश हित विनय-तृतीय सर्ग

४७-आओ ले अवतार (3365 ख)

योग सनातन धर्म है, सर्व विश्व विख्यात।
इसी योग के कारणे, भारत सुविख्यात ।।3363 छ.

भारत पर प्रभु कृपा दृष्टि, रही तेरी जब से है सृष्टि।
अनेकों बार लिए अवतार, भारत हित तुम हे करतार।
कष्टों से तू देश बचाया, जब भी इस पर दुख आ पाया।
देकर जनता को उपदेश, सचेत किया तुम ने सर्वेश।
सतयुग त्रेता द्वापर काल, लीना तूने देश संभाल।
जब जब असुर भये बलवान, और देश को कीन हैरान।
तुम ने उन को पाठ पढ़ाया, मर्याद बीच रहन सिखाया।
दीना कुचल असुरों का शीश, जग जाना प्रकटे जगदीश।

दो॰ धर्म रक्षक तुम हो प्रभु, युग युग ले अवतार।
धर्म हेतु तुम करत हो, असुरों का संहार ।।3364 क.
असुर बचें न जगत में, हो धर्म प्रचार।
यह तुम्हारा कर्म है, जब तुम लो अवतार ।।3364 ख.
भूल गया वह कर्म अब, हे मेरे भगवान।
घोर कलि के काल में, असुर भये बलवान ।।3364 ग.

तुम को क्या मैं याद दिलाऊँ, त्रिकालज्ञ को क्या बतलाऊँ।
भारतवासी भूल गये हैं, पाप आसुरी विसर गये हैं।

विसरा क्यों तुम को भगवान, अपने भारत का अपमान ।
अत्याचारी जब चढ़ आये, पाप कर्म जो वे कर पाये ।
उन को स्मरण करो भगवान, उच्चित कर्म करो अब आन ।
भारतवासी गये हैं भूल, स्वाभिमान की उड़ गयी धूल ।
ज्वाल भई प्रतिशोध की शीत, देश की माटी से न प्रीत ।
जन्म भूमि पर सर कटाना, पूर्व जनों ने था यह जाना ।
उन के वंशज गये हैं भूल, प्रियें न उन को देश की धूल ।

दो॰ **जन्म भूमि की माट से, जिस की होत प्रीत ।**
सदा विजय उस की भये, उसे सके को जीत ।।3365 क.
विनय दास की है प्रभो, आओ ले अवतार ।
शिक्षा दीजो जनन को, करें देश से प्यार ।।3365 ख.

प्रभो आओ अब तन को धार, निज देश का करो उद्धार ।
भारत देश से तुम्हें प्यार, जहां लिया बहु बार अवतार ।
घोर संकट में है अब देश, सुखी यहां पर लोग न लेश ।
दरिद्रता ने इसे दबाया, रोगों ने है इसे सताया ।
वैर विरोध व कलह क्लेश, इन से भरा है भारत देश ।
लूट खसूट मची सब ओर, शून्य न इस से को भी छोर ।
सौजन्यता का परम अभाव, सभी का बदल गया स्वभाव ।
घूंस का गर्म बहुत बाजार, बिन घूंस सके न हो को कार ।
प्रभो आओ अब देश बचाओ, दुखी जनों को धीर बंधाओ ।

दो॰ **दुख में दुखी पुकारते, आओ अब करतार ।**
वही समय है आ गया, जब तुम लो अवतार ।। 3366

है अधर्म ने घेरा पाया, निज पाश में सबन फंसाया ।

सब की रग में पाप समाया, छूट न इस से को भी पाया।
धर्मी पुरुष दीखे न कोई, रक्षा का अधिकारी जोई।
उन पै चक्र चलाओ नाथ, बचे न एक भी तेरे हाथ।
ऋषियों के जो वंशज देव, उन के पाप हरो अधिदेव।
शुद्ध बुद्ध उन को कर पाओ, भारत का तुम मान बढ़ाओ।
असुर संहारक तेरा नाम, वितथ न हो तव नाम यह राम।

दो॰ असुर संहारक हे प्रभु, नाम करो निज धन्य।
असुर रहें न देश में, पापी और जघन्य ॥3367

राम बने, तुम असुर संहारे, बन कृष्ण, तुम असुर थे मारे।
शिव ने कीन असुर संहार, त्रिपुरारि नाम धरा करतार।
अब क्यों भया तुझे संकोच, करो न देर संहारो पोच।
महाकाली का रूप धराय, अनेकों असुर थे मार मुकाय।
भूल गया क्या वह इतिहास, तोड़ रहे जो देश की आस।
भक्तों की सुनी सदा पुकार, कभी न कीन विलंब करतार।
अब आओ तुम देश बचाओ, निज भक्तों के पाप दुराओ।
असुरों को लगाओ ठिकाने, विश्व सकल तव गाये गाने।

दो॰ दीखे असुर न एक भी, राम प्रभु के देश।
आसुर हंता राम का, यही मुख्य उपदेश ॥3368 क.
शपथ लीन थी राम जो, ऋषियन के तुम धाम।
"असुर हीन कर देश को, तभी कहाऊँ राम ॥" 3368 ख.
रघुवंशी तो वचन के, होते पालन हार।
असुर हीन कर देश को, सत्य करो सरकार ॥3368 ग.

दरिद्र देश न रहे हमारा, धन धान्य से भरा हो सारा ।
स्वर्ण की चिड़िया थी इक काल, होय वैसी फिर यह खुशहाल ।
ब्राह्मण यहां थे बहु विद्वान, क्षत्री यहां थे शूर महान ।
देश विदेश से था व्योपार, हाटों में भरा धन अपार ।
शिक्षार्थी जन चल कर आते, वणिक यहां आ लाभ उठाते ।
क्यों हुआ यह हाल बेहाल,यह है सन्मुख कडा सवाल ।
असुरों ने आ अंधेर मचाया, चौपट देश सकल कर पाया।
इस का अब है यही निदान, असुरारि तुम तो हो भगवान ।
रहे असुर नहीं इक इस देश, हालत सुधरे तभी विशेष

दो॰ दुखिया देश पुकारता, आओ अब करतार ।
ठीक समय हैआ गया, अब तुम लो अवतार ।।3369

एक समस्या यह करतार, देश में रोगों की भरमार ।
ऋषियों की यह भूमि प्यारी, रहत जहां से दूर बिमारी ।
जीवन चर्या सब की ठीक, आते रोग थे न नज़दीक ।
आ दानव जब पाठ पढ़ाया, कीना वही जो उन पढ़ाया ।
योग कर्म सब दीन भुलाय, तामसिक खान पान अपनाय ।
कीना देह को निज खराब, पेय पदारथ भयी शराब ।
देह बिगाड़ा बुद्ध बिगाड़ी सुख शांति की उलटी गाड़ी ।
नौका डूब रही अब नाथ, आओ बचाओ अपने हाथ ।

दो॰ दुखिया देश पुकारता, आओ ले अवतार ।
ठीक समय अब आ गया, आने का करतार ।।3370

दानव धूर्त बहुत थे भारी,भारत भूमि हड़पी सारी ।
भारतवासी दास बनाये, निज सेवा में सभी लगाये ।

अत्याचार किये उन ऊपर, तुलना जिस की है न भूपर ।
पशुओं के प्रति जो आचार, ऐसे उन का था व्यवहार ।
भारत का सभी धन बटोर, जहाज़ों में वे सारा जोड ।
ले गये वे निज दानव देश, दरिद्र कीना भारत देश ।
प्रथम थी असुरन लूट मचाई, दानव ने फिर कसर मुकाई ।*
भक्तों ने जब तुझे पुकारा, मिला उन्हें कुछ तव सहारा ।
राम योगेश्वर तभी पधारे, दानव बहिर धकेले सारे ।
चमत्कार यह जग ने देखा, जग ने था जो कभी न पेखा ।

दो॰ चमत्कार यह योग का, प्रकटाया प्रभु आप ।
डाली माया जगत पर, रहे छिप खुद आप ॥3371 क.
जान पाया न जगत यह, किमि भया संयोग।
बिस्तर अपना बांध कर,भागे दानव लोग ॥3371 ख.
प्रभु निमाने रहत हैं, औरन को दें मान ।
कृष्ण बना था सारथी, अर्जुन के कर बान ॥3371 ग.

इस विध तुम ने देश बचाया, दानव का तुम कीन सफाया ।
दानव गये यह देश उजाड़, इस का हो अब पुनः उद्धार ।
मचाई धन धान्य की लूट, प्रसिद्ध दानवी लूट खसूट ।
अपनी भाषा अपना धर्म, और सकल जो दानवी कर्म ।
लादे उन इस देश पै आय, भारत वासी नहीं बच पाय ।
प्रभु है तुझ पै देश को आस, उपजे सब के चित्त विश्वास ।
अपनी भाषा अपना धर्म, सर्वश्रेष्ठ हैं अपने कर्म ।
अपनी सभ्यता नहीं त्यागें, अन्य के पाछे हम न लागें ।

*कसर मुकाना-कमी पूरी करना

(४८) हो योग प्रचार (3374)

दो॰ विनय यही है नाथ जी, रक्षा करो दयाल ।
ऋषियों के इस देश का , बांका हो न बाल ॥3372

जिस भूमी के तुम रखवारे, उस के शत्रु मिटेंगे सारे ।
भारत का इतिहास बताये, जो इस भू पर चढ़ कर आये ।
उन का जग से भया सफाया, नाम लेवा भी न बच पाया ।
यह सब शक्ति तव करतार, राम लाल तुम योगावतार ।
अनन्तकला तेरा अवतार, लीना धर्म हेतु तन धार ।
विनय करो प्रभु यह स्वीकार, पूर्ण रहे यहां सब भण्डार ।
कभी न आये यहां पर तोट, लेनी पड़े न अन्य की ओट ।
दरिद्रता का सुनें न नाम, ऐसी किरपा हो तव राम ।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, सुखी रहे यह देश ।
तेरी किरपा को समझ, सिमरें तुझे हमेश ॥ 3373

विनय पुनः इक और सुनाऊँ, तव चरणों मे शीश झुकाऊँ ।
करें योग सब देश के लोग, हों न व्यसन व रोग के भोग ।
दरिद्रता वा रोग व्यापक, भये व्यसनी देश के शासक ।
तुझ पर ही अब लागी आस, हमें न करना नाथ निराश ।
रहें स्वस्थ इस देश के लोग, नित्य करे सभी जनता योग ।
यम नियम पर सभी जन चालें, सदाचार को सब अपना लें ।
कुपथ पर नहीं चाले कोई, पूर्व जनों की शिक्षा जोई ।
उस शिक्षा को सब अपनायें, ऐसी कृपा प्रभो कर पायें ।

दो॰ ऐसी किरपा कीजिये, हो योग प्रचार ।
तव शक्तिन से हे प्रभो, होय देश उद्धार ॥3374

पण्डित बसें जो भारत देश, शास्त्रों के विद्वान विशेष ।
विज्ञान पुरातन वा नवीन, सारी विद्याओं में प्रवीन ।
आविष्कार नये कर पावें, विज्ञान को समृद्ध बनावें ।
सुखकारी हो उन का ज्ञान, विनाशकारी न हो विज्ञान ।
हों भारत के जो विज्ञानी, जगत में हों न उन के सानी ।
विनयशीलता उनमें होय गर्व न विद्या का करे कोय ।
प्रभो करो तुम ऐसी दाय, जगत का गुरु भारत कहलाय ।

दो॰ भारत जग का था गुरु, पूरव युग में नाथ ।
गौरव हो प्रदान वही, सकल आप के हाथ ।।3375.

आगल प्रभु विनय सुन पाओ, देश युवा बलवान बनाओ ।
धीर वीर साहसी हो पायें, देश की आन पै मर मिट जायें ।
चरित्रवान कुशाग्र बुद्ध, बरसे आग जब होवें क्रुद्ध ।
*वे खरारी सभी कहलायें, असुरारी भी नाम धरायें ।
दुष्ट दमन हो उन का काम, उनसे चमके देश का नाम ।
कुचलें असुरों के सर ऐसे, पग तले सर साँप के जैसे ।
असुरों पर न दया कर पायें, उन का नाम निशान मिटायें ।
असुर दमन हो उन का काम, बचें असुर न देश में राम ।
रहें असुर जब तक इस देश, यहां रहेगा सदा क्लेश ।
तारन हार प्रभु अब आओ,असुरों से जग मुक्त कराओ ।
वीर धुरंधर हों इस देश, चले न असुरों की यहां पेश ।

दो॰ वीर धुरंधर देश के, रहें सदैव सजग ।
असुरों के उत्पात से, दुखी न होवे जग ।।3376

*खरारी-दुष्टों के शत्रु
असुरारी-असुरों के शत्रु

विनय प्रभु अब यह सुन पावो, जनता के मन शुद्ध बनावो ।
लोभ पाप का मूल महान, इस को दूर करो भगवान ।
धनी लोभ के वश जब आये, जग को ही वह ठग ठग खाये ।
धनी समाज के स्तंभ महान, वही हिले तो हिले जहान ।
दया धर्म उनके मन लाओ, भारत देश स्वर्ग बनाओ ।
धर्म कर्म में निज धन लायें, पाप कर्म से सब बच पायें ।
सुपथ जगत को वे दिखलायें, कुकर्मों की न चाल चलायें ।
अपव्यय से करें संकोच, चलें सत्य पै गहै न पोच ।

दो॰ धनी पुरुष जिस मग चलें, अन्य करें अनुसरन ।
देश हित उन चित्त बसे, पालें सद आचरण ।।3377 क.
सदाचार जो पालता, देश भक्त वह जान ।
अनाचारी जो हो जन, द्रोही जान पुमान ।।3377 ख.

अनाचारी हानि कर पावे, देश को दुर्बल वह बनावे ।
सदाचार से देश महान, अनाचार से दुर्बल जान ।
सदाचार से उन्नत देश, अनाचार से गिरत हमेश ।
सदाचार है भाग्य की खान, दुराचार से पाप महान ।
सदाचार जो जन अपनाये, शोभा देश की अति बढ़ाये ।
अनाचार जो जन अपनाये, देश की हानि बहु कर पाये ।
सदाचारी देश का भूषण, अनाचारी लगावे दूषण ।
सदाचार है देश के प्राण, अनाचार हर लेवे जान ।

दो॰ सदाचार के कारणे, देश बड़ा हो पाय ।
अनाचार के कारणे, देश गर्त में जाय ।।3378 क.
विनय यही है दास की, सदाचार बढ़ पाय ।
सदाचार प्रधान यह, जग में हिन्द कहाय ।।3378 ख.

सदाचार के अंग जो, उन का करूँ बखान।
ऋषि मुनियों की सीख है, उन पर चलें सुजान ॥3378 ग.
अहिंसा सत्य अस्तेय है, ब्रह्मचर्य को जान।
अपरिग्रह की सीख है, ऋषियन कीन बखान ॥3378 घ.

अहिंसा परम धर्म बखाना, यही देश का दिव्य निशाना।
अहिंसक बनना था सिखाया, दुनिया को यह पाठ पढ़ाया।
इस गुण को हम सब अपनायें सब परस्पर प्रीत बढ़ायें।
आपस की सब फूट को छोड़, फटे हुए चित्त लेवें जोड़।
मिल कर करें देश का काम, बढ़े जगत में देश का नाम।
अहिंसक को न किसी से वैर, अहिंसक से न किसी को वैर।
जग को शांती की यह रीत, सिखाई भारत ने सपरीत।
इसी सीख को जग अपनाये, भारत को निज गुरु कह पाये।

दो० सीख प्रभु जी दीजिये, भारत के जो लोग।
रहें परस्पर प्रेम से, और करें मिल योग ॥3379

जो जन मिल ऐसा कर पावें, जग में सदाचारी कहावें।
अहिंसा का हि संगी जानें, सत्याचरण उसे पहचानें।
सत्य ही सृष्टी का आधार, सत्य से चलता कारोबार।
जीवन के हैं सत्य ही प्राण, अंत असत्य का नाश महान।
असत्य भाषण यदि कर पावें, आन देश की धूल मिलावें।
देश द्रोही उन को जानें, असत को जो जन शक्ति मानें।
सत्य की शक्ति होती अपार, विजय उसी की हो हर बार।
"सत्यमेव जयते" की पुकार, भारत की यही शक्ति अपार।
देश दरिद्र तभी रह पावे, जब असत की शरण ग्राहवे।
असत से मिटतत है विश्वास, वाणिज्य चले नहीं तब खास।

दो० देश द्रोही जानिये, गहे असत का पाथ ।
अपमानित हो देश भी, उस पापी के साथ ।।3380

जो असत्य भाषण कर पाते, वही देश को गर्त गिराते ।
देश द्रोह पाप है भारी, जन नरक का वही अधिकारी ।
राज दण्ड से यदि छुट पाये, यम के दण्ड से न बच पाये ।
शासक हो या शासित लोग, सत्य भाषण है सब के योग ।
हो वणिज या अन्य को कार, चले सत्य पै हर प्रकार ।
असत से न जो डर के चाले, संशय में निज भावी घाले ।
भारत मात का पुत्र सोई, सत वचन पर अटल हो जोई ।
धोके से जो करत कमाई, देश द्रोही पुरुष कहाई ।

४९ हो रक्षा तव हाथ (3381 ङ)

दो० उसी देश द्रोही को, मिले नरक की आग ।
युग कोटि तक रहे पड़ा, उसी नरक की आग ।।3381 क.
मात पिता से द्रोह कर, मात भूमि से पाप ।
ऐसी द्रोही जनन का, नाम कथन अभिशाप ।।3381 ख.
इन दोषों से हेप्रभो, बचें देश के लोग ।
सन्मार्ग पर सभी लगें, यही सनातन योग ।।3381 ग.
अनाचार इक और भी, कथन कीन तुम आप ।
चोरी उस का नाम है, जो परम अभिशाप ।। 3381 घ.
बच पाया न देश यह, इस लानत से नाथ ।
विनय दास की चरण तव, हो रक्षा तव हाथ ।।3381 ङ

चोरी ने है देश दबोचा, ऐसा न था कभी भी सोचा ।
चोरी ने है सबन दबाया, रग रग में है पाप समाया ।

इस फंदे में हर इक आया, वही बचा जिसे प्रभु बचाया ।
"काला धन" जिस को जन जानें, चोरी का धन सब ही मानें ।
इतना इस का भया भण्डार, गिनती जिस की है दुशवार ।
अपने ही जन भये हैं चोर, चले किस का प्रभु उन पै ज़ोर ।
नैतिक पतन ऐसा हे नाथ, जानूँ कलि का इस में हाथ ।
बुद्धिहीन जन भये अभागे, जेब अपनी ही काटन लागे ।

दो॰ अपना धन चुराय कर, अपने भरें भण्डार ।
मूर्खता की सीम नहीं, हंसे सब संसार ॥ 3382

सकल विश्व है ताक लगाये, मूर्खों को कब दास बनाये ।
"चोरी से जो भरें भण्डार, छीन के लावें अपने कार ।"
यह निरख मैं मनहिं लजाऊँ, शत्रुचाल से भय भी खाऊँ ।
इस डर से मैं तुझे पुकारूँ, और विनय यह वचन उचारूँ ।
"तेरा ही तो देश प्यारा, तेरा ही तो हमें सहारा ।
दीखत न कोई और उपाय, चोरों से जो देश बचाय ।
शिक्षा जनता को दे पायें, सदाचरण में सबन लगायें ।
कैसा काल आया यह घोर, वंशज ऋषियों के भये चोर ।"

दो॰ बार बार तव चरण में, सेवक करत पुकार ।
देर करो न नाथ मम, शीघ्र लो तन धार ॥ 3383

आ कर सब को तुम समझाओ, देश भक्ति का पाठ पढ़ाओ ।
सदाचार को सब अपनायें, देश सेवा में मन लगायें ।
बधा देश से हमरा भाग, करें देश हित जान भी त्याग ।
स्वार्थ की लेश न सोचें बात, करें कुर्बान देश पै गात ।
भारत हित जो जीवन घालें, शुद्धाचरण सदा जो पालें ।

विषयों से जो रहते दूर, सुख का त्याग जिन्हें मंज़ूर ।
खान पान जो राखें शुद्ध, सात्विकाहारी उत्तम बुद्ध ।
ऐसे जन प्रभु करो त्यार, जिन का केवल देश से प्यार ।

दो० भारत को जो मात मन, उस से करते प्यार ।
धर्म भूमि इस को कहें, उन को करो त्यार ।।3384

तपमय जीवन जिन का होय, मन परिग्रह में नहीं खोय ।
देश के हित जो धन लगायें, अपने घरों में न भर पायें ।
सरल जीवन व उच्च विचार, ऐसा हो जिन का आचार ।
सुख जनता का निज सुख मानें, निज सुखों में नहीं उलझानें ।
सदा राखें जो इस का ध्यान, किस कारण जनता परशान ।
जनता का दुख हरने हेत, निज सुख जिन को न अभिप्रेत ।
जनहित जिन को ही प्रिय लागे, त्यागी जीवन के अनुरागे ।
सुख की जिन को चाह न लेश, जिन को केवल प्रिय निज देश ।

दो० ऋषियों की इस भूमि में, उपजें ऐसे लोग ।
त्याग करें निज देश हित, बहुत न चाहें भोग ।।3385 क.
लोग सदा इस देश के, रहे प्रभो तव दास ।
समय समय पर आय कर, तुम बंधाई आस ।।3385 ख.
संकट के इस काल में, फिर पधारो नाथ ।
भारत ने है सौंप दी, निज डोरी तव हाथ ।।3385 ग.
इसी आस को लेय कर, विनय करे यह दास ।
विनती इस की श्रवण कर, पूर्ण करो अरदास ।।3385 घ.

असुरों से प्रभु देश बचाओ, सुख समृद्धि यहां पर लाओ ।

सदाचारी हों इस के लोग, प्रिय लगें नहीं वर्जित भोग ।
विद्याव्यसनी और सुशील, धुरंधरवीर पछाड़ें फील *[१]।
धनी कुबेर समान श्रेष्ठ, मानें सभी भारत को ज्येष्ठ ।
जब जब भीड़ पड़ी इस भूम, मचाई असुरों ने आय धूम ।
भक्तों ने सदा तुझे पुकारा, तुझ से ही तब मिला सहारा ।
राम रूप में जब थे आये, सकल देश से असुर भगाये ।
आश्रमों का जो करत विनाश, उन सब का तुम कीना नाश ।
अब भी आओ देश बचाओ, असुरों को तुम मार मुकाओ ।

दो॰ देवालय जो तोड़ कर, देवों का कर नाश ।
असुरालय निर्माण कर, करें धर्म का नाश ।।3386 क.
उन असुरों के नाश हित, शीघ्र आओ नाथ ।
धर्म स्थापन हित प्रभु, रहो हमारे साथ।।3386 ख.

सभी जनों को धर्म सिखाओ, असुरों को तुम मार भगाओ ।
देव जनों का यहां पर राज, करो स्थापित हे महाराज ।
गो ब्राह्मण की रक्षा होय, सामध्वनी सर्वत्र सोहे ।
देवों की हो घर घर अर्चा, तेरे पराक्रम की भी चर्चा ।
यज्ञाग्नि की ज्वाला चमके, यज्ञ सुगंधी घर घर दमके ।
ऐसा शासन देश में आये, सम न्याय सब को मिल पाये ।
भेद भाव का होय न चिह्न, होय न कोई अन्य से भिन्न ।
समानता आधार हो नाथ, शासक शासित रहें इक साथ ।

दो॰ *[२] सुराज्य के पंचाग जो, यदि होवें परिपूर्ण ।
सुख संपत तब देश को, सदा मिले संपूर्ण ।।3387 क.

---

*१फील- हाथी

*२सुराज्य के पांच अंग, अन्न, सुरक्षा, विद्या, चिकित्सा, न्याय

सदियों से हे नाथ मम, भारत है दुखियार ।
सुशासन इस को न मिले, तुम को रहा पुकार ॥3387 ख.

असुरों ने जब इसे दबोचा, इस का मांस तलक था नोचा ।
धन लूटा व धर्म भी लूटा, घर उजड़े, रहा छप्पर टूटा ।
राजा रंक सब भये गुलाम, तेरा भी प्रभु मिट गया नाम ।
देवालय शिवालय तोड़े, असुरालय तब ला उन जोड़े ।
चिह्न धर्म के लीने छीन, धोती चोटी कीन विलीन ।
घण्टिन की झनकार प्यारी, भयी विलीन गगन में सारी ।
असुरालयों से घोर पुकार, नित्य कानों को देती फार ।
प्रभु भजन और राम का जाप, गिनते असुर घोर थे पाप ।

दो॰ घोर काल विकराल में, सब जब भये अनाथ ।
लीनी थी क्या सुधि तुम, यह तुम जानो नाथ ॥3388 क.
प्रभु उस काल कराल में, जन्में भक्त महान ।
सदा तुम्हें पुकारते, सुधि लेवो प्रभु आन ॥ 3388 ख
रूपअनेकों में प्रभो, आये तुम उस काल ।
बिन सहायता के प्रभो, होत और ही हाल ॥3388 ग.

यदि न आते प्रभो उस काल, देश का होता और ही हाल ।
बच पाता न एक देवालय, उजड़ जात तब सभी शिवालय ।
असुरालयों की लागत भीड़, भारत माँ किमि सहती पीड़ ।
तुम ने आ था धर्म बचाया, जनता में विश्वास जगाया ।
जन गण को था कीन सचेत, प्रकटे हैं हम धर्म के हेत ।
त्रेता द्वापर असुर संहार, कीना हम था धर्म उद्धार ।
राम रूप से रावण मारा, कृष्ण रूप से कंस पछारा ।

भक्तो लो तुम धैर्य को धार, अब भी होगा असुर संहार ।
भक्तों में उत्साह जगाया, धर्म का झंडा न गिर पाया ।

दो॰ प्रभु तेरे ही कारणे, भारत देश महान ।
मिटे अन्य बहु देश हैं, बचा न नाम निशान ।।3389

युग युगांतरों से यह देश, दुख सुख सहता चला हमेश ।
हो प्रकाश स्तंभ की नाईं, बांटे ज्ञान सबन के ताईं ।
अब भी है तुझ पर ही आस, देश करोगे नहीं निरास ।
देश का शासन लो संभाल, दुखी जनता को करो निहाल ।
राम राज्य का स्वपन महान, पूर्ण करो अब जग में आन ।
अभाव न खान पान का होय, सुख की निद्रा जनता सोय ।
विद्यावञ्चित रहे न कोई, शिक्षा सुलभ सबन को होई ।
राजदण्ड के भय को जान, खिंचे रहें दुष्टों के प्राण ।
निर्भय विचरें सज्जन सारे, दीखें कहीं न ठग हत्यारे ।

५० असुर शून्य हो भारत देश (3390/3)

दो॰ राम राज्य ऐसा भये, सुख से विचरें लोग ।
न्याय सुलभ हो सबन को, जो हो जिस के योग ।।3390 क.
एक विनय है और भी, हे मेरे भगवान ।
स्वास्थ्य लाभ हो सबन को, गहें योग से ज्ञान ।।3390 ख.
चिकित्सा का प्रबंध भी, हो निशुल्क भगवान ।
जनता न परेशान हो, संकट में जब प्राण ।।3390 ग.

राम राज्य प्रभु शीघ्र लाओ, जनता दुखी , धैर्य बंधाओ ।
सदियों से जो पीडित देश, चैन मिले अब इसे विशेष ।

असुर शून्य हो भारत देश, असुर शून्य रहे पुनः हमेश ।
खण्डित भया जो इस का रूप, अखण्ड बने फिर वही स्वरूप ।
सिंह स्वरूप इस का आकार, निरख के शत्रु मानें हार ।
दिल असुर का दहल ही जाये, करे पलायन देर न लाये ।
गो ब्राह्मण का फिर हो मान, धर्म स्थापन हो भगवान ।
असुरों का न रहे यहां नाम, विस्मरण भयें उन के कुकाम ।

दो० ऐसी किरपा होय जब, भारत भये पुनीत ।
असुरों के संसर्ग से, जो भया अपुनीत ।।3391 क.
सद्गुरु ने था राम को, बस्तिन भेजा आप ।
योग धर्म प्रचार कर, हरें जगत संताप ।।3391 ख.
असुरों के संसर्ग से, फैले दूषित भाव ।
राम लाल भगवान ने, विस्तारे सद्भाव ।।3393 ग.
गंगा तट के पास ही, ऋषिकेश के बीच ।
योगाश्रम में जाय कर, सुधरे मम सम नीच ।। 3391 घ.
बाल्यकाल से ही रहा, मैं असुरों के साथ ।
गुरु चरणों में जब गया, टनका तब मम माथ।। 3391 ङ
असुरों के विचार सब, होत धर्म विपरीत ।
किरपा कीनी सद्गुरु, शुद्ध किया मम चीत ।। 3391 च.

हिंसाकारी असुर हैं सारे, असहनशील मतस्वी* भारे ।
उन जैसा कृतघ्न को होई, भक्षें अन्न भारत का जोई ।
गायें गीत विदेश के मीत, अन्य देश से राखें प्रीत ।
प्रिय लागे नहीं अपना देश, करें उपासन जाय विदेश ।

*मतस्वी-धर्मान्ध

गहें आसन तो इस ही ठोर, टेकें माथ विदेश की ओर ।
गंगा जल मधु पावन भारा, लागे उन को वह भी खारा ।
किसी का नमक पशु यदि खाये, उस से द्रोह न वह कर पाये ।
दानव असुर ऐसे संसार, उलटा ही उन का व्यवहार ।

दो॰ भारत का खा नमक जो, उस को करें हराम ।
ऐसे असुरों साथ तो, निबड़ो खुद आ राम ।।3392 क.
रह भारत के देश में, भारत के जो पर्व ।
लगते जिन को तीर सम, और बसे मन गर्व ।। 3392 ख.

उन मे देश बचाओ नाथ, डोरी देश की तेरे हाथ ।
असुरारि है नाम तुम्हारा, असत होय न विरद यह भारा ।
देश कीआंख लगी तव चरणि, और किस की वह जाये शरणी ।
देश द्रोही तो साँप समान, कुचलो प्रभु जी उन को आन ।
रिपु देश के देश में रहते, भारत के सब भेद लुटाते ।
उन से छूटें कैसे प्राण, प्रभो बचाओ तुम ही आन ।
समझें न निज देश को देश, प्रभो पछाडो उन्हें विदेश
भारत तो सब को अपनाता, सभी जनों को गले लगाता ।
उस से भी जो करत द्रोह, दण्ड तुम्हीं से पाये वोह ।

दो॰ द्रोही जन तो बसत हैं, भारत की इस भूम ।
स्वशक्ति से तुम निपट लो, हो न किसे मालूम ।।3393

वैरियों को वह पाठ पढ़ाओ, 'तोबा तोबा' सबन कराओ ।
पता लगे सब को इक बार, भारत के तुम हो रखवार ।
भारत सकल जगत का मीत, हरइक देश से उस की प्रीत ।
उस के गुरुओं का उपदेश, वैर करो न किसी से लेश ।

एक पिता सब उसी के पूत, मत करे कोई बद करतूत ।
निज गुरुओंकी आज्ञा मान, भारत ने निज धर्म पहचान ।
देश विदेश जा बांटा ज्ञान, मीत बनाया सकल जहान ।
चीन देखु को इस अपनाया, तिब्बत को भी गले लगाया ।

दो॰ दीना सब को धर्म का, ऐसा शुद्ध ज्ञान ।
आज तलक हैं सिमरते, आत्म हित पहचान ।।3394

लंका में निज दूत भिजाये, सीख धर्म की वे दे पाये ।
सहस्त्रों वर्ष भये व्यतीत, ज्ञान बसा जन गण के चीत ।
भारत उन के गुरु का देश, आ कर यहां गहें उपदेश ।
कोरिया व जो देश जपान, भारत की वहां देन महान ।
बौध धर्म के जन अनुयायी, शिक्षा भारत से अपनायी ।
भारत का निज अंग नेपाल, महा प्रभु वहां रहें सब काल ।
हिन्द चीनी को लेवो जान, भारत का संबन्धी मान ।

दो॰ भारत के ये अंग सब, अथवा शिष्य समान ।
मान करें इस देश का, जगत गुरु इसे मान ।। 3395

श्याम कंबोडिया वा मलाय, भारत के प्रभाव में आय ।
इन का भया था बहु कल्याण, मिला जब इन को आत्म ज्ञान ।
भारत भया था इमि विशाल, ज्ञान की ले कर जभी मशाल ।
जग में कीना उस प्रकाश, वैमनस्य का भया विनाश ।
जगी प्रेम की जग में ज्योत, सदियों तक जो रही उद्योत ।
ब्रहमा जावा और सुमात्र, ये भी भये उस ज्ञान के पात्र ।
दूर इरान भी रहा न लेश, भारत का है ऋणी वह देश ।
देश निराला है फिलिपेन, उस को भारत की बहु देन ।

दो॰ भारत देश महान है, करता सब से प्रीत।
भूमि को नहीं छीनता, लेता मन को जीत॥3396 क.
इसी देश के ज्ञान से, उज्जवल जग का भाल।
विश्व सकल इस का ऋणी, राखा ज्ञान संभाल॥ 3396 ख.

भारत का उपकार महान, देश अनेकों को दिया ज्ञान।
इण्डोनेशिया भी इक देश, जिस पै किरपा भई विशेष।
अनगिनत देश, असंख्य स्थान, भारत का जहां फैला ज्ञान।
भारत न को देश हथियाया, प्रेम से मित्र सबन बनाया।
सर्व जगत में बांटा ज्ञान, ज्ञान लिया सब जग यहां आन।
ऐसा काल रहा कुछ काल, काल ने बदली फिर निज चाल।
मायावी जन जग उपजाये, जिन्हें ज्ञान न था कुछ भाये।
माया के वे भूखे जीव, लांघी भारत की उन सींव।

दो॰ भारत सीमा पार से, आकर घुसे पिशाच।
लिपिबद्ध इतिहास में, जिन का ताण्डव नाच॥ 3397

नर रूप में आये पिशाच, सब जग जाने उन का नाच।
ज्योति ज्ञान की दीन बुझाय, पुस्तकालय उन बहुत जलाय।
विद्यापीठ उन दिये उजाड़, किया विद्वानों का संहार।
ऐसा काल था वह विकराल, विशाल हिन्द का विगड़ा हाल।
लागी आग थी जो उस काल, धुक रही अब तक वही ज्वाल।
असुरों से है देश हताश, भारत टूटा भया विनाश।
तुम्हें पुकारे है यह देश, लेवो सुध प्रभो इस की लेश।
इन असुरों से देश बचाओ, ज्ञान मार्ग पर पुनः चलाओ।
भारत करे जग का उद्धार, कलह क्लेश से लागें पार।

दो॰ विनय प्रभु तव चरण में, देश बचाओ आन ।
घोर उपद्रव हो रहे, शांत करो अब आन ॥ 3398

एक विनय मैं अब कर पाऊँ, भारत को विशाल मैं चाहूँ ।
जहां पर तेरी पूजा अर्चा, घर घर होय धर्म की चर्चा ।
धर्म के शत्रु होंय परास्त, सूरज असुरों का होय आस्त ।
बार बार मन में पछताऊँ, संस्कृति निज असुरक्षित पाऊँ ।
सहस्त्र वर्ष रहा दास जो देश, संस्कृति से रहा प्रेम न लेश ।
जो भी दुश्मन चढ़ कर आया, अपना ही उस रंग चढ़ाया ।
भाषा लादी वेश भी लाद, अपना उस आचार भी लाद ।
खान पान की रीती लादी, दास रहने की शिक्षा लादी ।
*निज संस्कृति जब हम भुल पाये, खास दास तब हम कहलाये ।
दास बने हम, सकल भुलाई, अपनी संस्कृति जो चलि आई ।

५१ सुन्दर भारत बने हमारा (3406/5)

दो॰ शास्त्रों की निज रीति को, भूल गया जब देश ।
हो कर दास विदेश का, स्वगर्व बचा न लेश॥3399

अपना हम ने मान गंवाया, अपना धर्म इमान गंवाया ।
अपना धन हम सब खो पाये, वञ्चित भाषा से हो पाये ।
अपने शास्त्रों को भी त्याग, परमुख पेखी भये अभाग ।
हे प्रभो हमें स्वयं बचा लो, घोर नरक से हमें निकालो ।

---

*एक आक्रामक ने हमें लिखना सिखलाया-''आप का फरमां बरदार खादिम''अर्थात ''आप की हर आज्ञा को पालन करने वाला आप का गुलाम ।''
और दूसरे ने हमें लिखना सिखलाया-''**I beg to remain, Sir, your most obedient servant.**'' अर्थात ''श्री मान, मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं सदा रहूँ आप का सब से बड़ा आज्ञा पालन करने वाला गुलाम ।''

जब तक देश से न हो प्यार, जब तक भाषा से नहीं प्यार।
जब तक शास्त्रों से नहीं प्यार, रहें गिरे हम हर प्रकार।
पूर्वज अपने लगें महान, देश भी अपना लगे महान।
भारत में हो शिक्षा ऐसी, ऋषियों की परिपाटी जैसी।
ज्ञान विज्ञान में हो प्रवीण, सीखें सकल विचार नवीन।
संस्कृत भाषा सब पढ़ पायें, इस के बिन न को रह पायें।

दो॰ गौरव अपने देश का, संस्कृत वाणी होय।
ऐसी बुद्धी दीजिये, यह माने हर कोय ।।3400 क.
संस्कृतवाणी जानकर, हो साहित्यिक बोध।
जो इसे नहीं जानता, भारती वह अबोध ।।3400 ख.
ज्ञान न वेदों का जिसे, और न शास्त्र बोध।
षट् दर्शन ना जानता, भारती वह अबोध ।। 3400 ग.
गीता जिस ने न पढ़ी, न महाभारत बोध।
रामायण रखे पास न, भारती वह अबोध ।।3400 घ.
योग शिक्षा न है जिसे, वेदान्त का न बोध।
सांख्य शास्त्र का ज्ञान न, भारती वह अबोध ।। 3400 ङ
यज्ञ हवन न करत जो, गायत्री का न बोध।
सन्ध्या वन्दन करत न, भारती वह अबोध ।। 3400 च.
पुराण एक भी न पढ़ा, किया न मन का शोध।
गुरु से दीक्षा न गही, भारती वह अबोध ।।3400 छ
प्रभु जी किरपा कीजिये, भारत के सब लोग।
शुद्ध बने वे भारती, सुन्दर बने सुयोग ।। 3400ज.

देश विदेश में होवे ख्याती, हो सुरक्षित देश की थाती ।*[1]
पूत देश के भयें सपूत, महान देश के वे ही दूत ।
हैं जिन की ये सभी संतान, सुरक्षित उन का इन से ज्ञान ।
विनय प्रभु है यही हमारी, सुरक्षित विद्या हो हमारी ।
ऋषि मुनियों के तप का सार, जनता उस की करे संभार ।
पुस्तकगत जो विद्या होय, और जनता न पढ़ती जोय ।
उस का नाश अवश्यं भावी, न पहचानें काल में भावी ।*[2]
उस विद्या का होत विकास, जिसे पढ़े जन आम व खास ।

दो॰ प्रभो ज्ञान इस देश का, जग में जो विख्यात ।
लाभ उसी से सब गहें, विसर जात व पात ॥3401 क.
एक सभी के पूर्वज, रूप सभी का एक ।
खान पान है एक सा, देश सभी का एक ॥3401 ख.
भेद भाव किस बात का, वास करें सप्रेम ।
उच्च उठावें देश को, यही बनावें नेम ॥3401 ग.

इक विनय मैं और कर पाऊँ, बहु जन यहां निरक्षर पाऊँ ।
करो प्रभो तुम ऐसी दाय, निरक्षर यहां को रह न पाय ।
सुशिक्षित बनें सभी नर नार, होवे उच्च देश का भाल ।
विद्या बिके न भारत देश, नहीं बचे अज्ञान का लेश ।
जन गण करे ज्ञान प्रचार, ज्ञान की मूर्त हिन्द साकार ।
ऐसी भूम हो भारत मात, मूरत विद्या की साक्षात ।
जो आये सो ज्ञान को पाये, भारत का यश जग में छाये ।

---

*[1] थाती-परंपरा
*[2] काल में भावी-भविष्यत काल में

तुम ज्ञान था योग का दीन, श्रद्धा से वह भक्तन लीन।
होय वह विश्वव्यापी ज्ञान, मेरी विनय यह है भगवान।

दो॰ मेरी विनय स्वीकारिये, भारत से ले ज्ञान।
जगती में वितरण करें, जग के सब विद्वान॥ 3402क.
वैदिक ज्ञान समान न, किसी स्थान पै और।
उसी ज्ञान को लेय कर, जन जायें सब ठौर॥ 3402 ख.
सत्य सनातन धर्म का, मिले जगत को ज्ञान।
भारत का उपकार यह, समझे सकल जहान॥3402 ग.
प्रभो एक है वेनति, शिक्षक भारत माँझ।
सर्व गुणों सम्पन्न हों, यश पायें जग माँझ॥3402 घ.

हों शिक्षक प्रशिक्षित सारे, विद्यावान सभी हों भारे।
हों आचारवान आचार्य, हों आदर्श उन के सब कार्य।
खान पान उन का हो शुद्ध, विचार उत्तम व बुद्ध प्रबुद्ध।
शिक्षक का व्यवहार महान, शिक्षक हो आदर्श पुमान।
विनय प्रभो मम हो स्वीकार, इस से बढ़ कर क्या उपकार।
शिक्षक होंय देश के ऐसे, भारत के निर्माता जैसे।
भारत बनेगा तभी महान, हो शिक्षक जब महाँ इन्सान।
हितैषी हों सब जग के जोय, उन का मान करे हर कोय।

दो॰ मान पाँय सब जगत में, योगी परम ललाम।
ऐसे शिक्षक होंय जब, बने देश का काम॥ 3403 क.
हे प्रभो एक और भी, बात चित्त में आय।
अर्थकारी हो विद्या, जन गण जो आ पाय॥ 3403 ख.

विद्या वही जिस में गुण चार, सब विध जनका हो उपकार ।
तन पोषण में बने सहायी, चित्त की भ्रांति सकल नशायी ।
*अवश्य बुद्धि में उपजे ज्ञान, परलोक सुधारक हो भगवान ।
जिस विद्या में गुण नहीं चार, होय न जन को वह सुखयार ।
विद्या वह जो हो सुखकारी, तन मन के दुख हरने वारी ।
बुद्धि को जो ज्ञान प्रदायी, हरे चौरासी जो दुखदायी ।
उत्तम विद्या वह ही मानूँ, चारपदारथ दे जो जानूँ
*[१]धर्म अर्थ व काम प्रदायी, मोक्ष साधन में हो सहायी।

दो॰ प्रभो विनय विनीत मम, हरो देश का कष्ट ।
उत्तम विद्या पाय कर, दुख सभी हों नष्ट ।।3404 क.
उत्तम विद्या के बिना, दुखी भया है देश ।
दया करो हे नाथ जी, बनो सहायी लेश ।।3404 ख.
और प्रभु इक बेनती, तेरी चरणि हमेश ।
सुधरे शासन देश का, बिन इस सुख न लेश ।।3404 ग.

शासक देश के हों भगवान, जिन को शासन का हो ज्ञान ।
राजनीति व अर्थ की नीति, और प्रशासन की जो नीति ।
इन की शिक्षा जिन हो पाई, अनुभव की भी कीन कमाई ।
उसी हाथ दो देश की डोर, जनता सुखी रहे चहुँ ओर ।
देश के शत्रुओं को जो जाने, बहिरी रिपुओं को पहचाने ।

---

* विद्या के चार आवश्यक गुण-
१. तन-(तन पोषण में सहायक)
२. मन-(मन की भ्रांति दूर कर सके)
३. बुद्धि-(बुद्धि को ज्ञान मिले)
४. आत्मा-(आत्मोन्नति से परलोक सुधरे)
इन चारों को लाभकारी हो ।

*[१]शास्त्रों के अनुसार सद् विद्या द्वारा चार पदार्थों की सिद्धि होती है :-
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन्हीं चार पदार्थों में चारों का तन, मन, बुद्धि, आत्मा का कल्याण अपेक्षित है ।

उन की कुटिल चाल पहचान, उन की चाल करें निष्प्राण ।
देश के मीत जान निज मीत, शत्रुओं के वह रह विपरीत ।
शत्रु की न चाल में आये, शत्रु को निज पाश फंसाये ।
गुप्तचरों का जाल बिछाये, जिन से बात न कुछ छिप पाये ।

दो॰ नीती की अवहेलना, जो कहीं कर पाये ।
गुप्तचरों की आंख से, छूट कभी न जाये ।।3405

गुप्तचरों पर गुप्तचर होंय, गती विधी जो सब की गोंय ।
जिस प्रशासन को नहीं ज्ञान, वह प्रशासन अंध समान ।
गुप्तचर राज्य के नेत्र जान, जिन से मिलता पूर्ण ज्ञान ।
जनता यदि निज भेद छिपावे, दुर्बल देश तभी हो पावे ।
जनता के सब चौर्य ये काम, गुप्तचर देखें वही तमाम ।
प्रशासन को वे करें सचेत, दोषी को दण्ड देने हेत ।
सुशीघ्र दण्ड अवश्यं भावी, विलंबित दण्ड न हो प्रभावी ।
शासन की तो यही पहचान, दोषी की वहां बचे न जान ।

दो॰ दोषी को न दण्ड जहां, या दण्ड में देर ।
उस प्रशासन में सदा, मचा रहे अंधेर ।।3406 क.
भारत के तुम हे प्रभो, हो सदा रखवार ।
शासन हो इस देश का, दृढ़तर हर प्रकार ।।3406 ख.
द्रोही कहीं न बच संके, बचे न चोर चकार ।
सुख से जिस में सब रहें, ऐसी हो सरकार ।।3406 ग.

कोष देश के हों भरपूर, सार्वजनिक हो कार्य जरूर ।
जनता का संयोग भरपूर, होय संकोच सभी का दूर ।

जन शक्ति सभी आ कर आगे, देश के उत्थान में लागे ।
सार्वजनिक हों सुन्दर स्थान, साधारण बेशक निज मकान ।
सुन्दर भारत बने हमारा, बेशक मम घर लघु हो सारा ।
देश विदेश में हो मशहूर, भारत दौलत से भरपूर ।
तेरी दया के बिन हे नाथ, भयेगा भारत नहीं सनाथ ।

दो॰ **भारत निज इस देश को, प्रभो करो सम्पन्न ।**
सदियों से जो नाथ जी, बना रहा आपन्न ।।3407 क.
विनती मिल हम सब करें, तुम हो दरिद्र नाथ ।
दरिद्र की सुन बेनती, भारत करो सनाथ ।।3407 ख.

विनय करूँ मैं हे भगवान, भारत का तुझे रक्षक जान ।
ऋषियों का यह देश महान, विसर गया इसे पूर्व ज्ञान ।
ऋषि मुनियों का शुद्ध आचार, आज जनता ने दीन विसार ।
हम ऋषियों की हैं संतान, विसर गया सभी पूर्व ज्ञान ।
करो कृपा अब होय सुधार, जन गण पालें शुद्ध आचार ।
सब को हो इस बात का मान, हम ऋषियों की हैं संतान ।
ऋषियों की संतान में दोष, किसे न देख भयेगा रोष ।
ऋषियन रचे जो ग्रंथ महान, उन को पढ़ सब ग्राहवें ज्ञान ।

(५२) स्वर्गिक सुख हो देश में(3410 क)

दो॰ **विश्व के विद्वान सब, कहते एक आवाज़ ।**
वेदन में जो ज्ञान है, कहीं मिले न आज ।।3408 क.
प्रभो कृपा जब होय तव, तभी बने यह काम ।
सीख गहें सब वेद से, पढ़ सुन लोग तमाम ।।3408 ख.

प्रभो विनय स्वीकारिये, जन गण का आचार ।
पावन गंगा सम भये, देखे सब संसार ॥3408 ग.
देव भूमि यह देश है, देवों का अधिवास ।
*दैवी गुण हों जनन में, विनय करे यह दास ॥3408 घ.

दैवी गुण जो शास्त्रन गाये, और यहां जो हैं लिख पाये ।
वैसा हो आचार हमारा, देश बने तब सुन्दर सारा ।
निर्भय रह सब धर्म कमावें, कर्तव्य कर्म में भय न खावें ।
निज कर्म को धर्म पहचान, निर्भय हो दें सके प्राण ।
ऐसे वीर यहां उपजायें, देश हित जो प्राण गंवायें।
जिन का अन्तः करण हो शुद्ध, स्वार्थ बसे नहीं जिन की बुद्ध ।
मूढ़मति न हो कोई वीर, ज्ञान योग में व्यवस्थ शरीर ।
ऐसे दानी भयें महान, अर्पें देश पै तन धन जान ।

दो॰ निर्भय जन उपजायिये, मन बुद्धि के शुद्ध ।
ज्ञानयोग में हो स्थित, दानी महा प्रबुद्ध ॥3409 क.
विनय प्रभु के चरण में, योग करें सब लोग ।
संयम में सब जन रहें, त्यागें वर्जित भोग ॥3409 ख.

दान शील प्रभु होवें लोग, त्यागें वे कुल वर्जित भोग ।
विमुख न धर्म कर्म से होंय, यज्ञ करें प्रभु किरपा गोंय ।
स्वाध्याय शील सभी जन होंय, तप का लाभ जाने हर कोय ।

---

*श्री मद्गंगवद्गीता अनुसार-दैवी गुण यह हैं (गीता अध्याय १६)
(1) अभय (2) सन्त्व संशुद्धि (3) ज्ञान योग व्यवस्थिति (4) दान (50 दम (6) यज्ञ (7) स्वाध्याय (8) तप (9) आर्जव (10) अहिंसा (11) सत्य)12) अक्रोध (13) त्याग (14) शांति (15) अपैशुनत्व (16) दया भूतेषु (17) अलोलुप्तम् (18) मार्दव (19) ह्री (20) अचापलं (21) तेज (22) क्षमा (23) धृति (24) शौच (25) अद्रोह (26) न अतिमानिता ॥

सरल स्वभाव सब सन्माने, हिंसक वृत्ति को नहीं मानें ।
सत को परम धर्म कर जानें, घोर पाप असत्य पहचानें ।
क्रोधी पुरुष न होवे कोई, द्वेष की अग्नि जाले जोई ।
त्याग का भाव सबन में होय, सहयोग कार्य करे हर कोय।
प्रतिजन का हो शांत स्वभाव, परस्पर सब का हो सद्भाव ।

दो० शांति से सभी जन रहें, आपस में हो प्रीत ।
स्वर्गिक सुख हो देश में, सदा चले यह रीत ।।3410 क.
सदा चले यह रीत जब, भारत बने महान ।
स्मृद्धि बरसे देश में, देखे सकल जहान ।।3410 ख.

जनता के प्रभु दोष दुरायें, *पिशुन दोष से सबन बचायें ।
पर का दोष नहीं जन देखें, गुणग्राहक बन गुण उलेखें ।
अकारण किसी को न सतायें, जीवमात्र पै दया दिखायें ।
जीव सकल ही दीखें ऐसे, रूप अपना ही होंय जैसे ।
दानी जन ऐसे उपजायें, लोलुप होंय न पाप कमायें ।
स्वभाव मृदु जन गण का ऐसा, काचा माखन होवे जैसा ।
तन उन का चाहे हो कठोर, स्वभाव मृदल सदैव बेजोर ।
लज्जाशील होंय वे ऐसे , चापलता का नाम न जैसे ।

दो० ऐसे उत्तम नरन से, ही भारत की शान ।
पुरुष देश की संपदा, हों गुणी इन्सान ।।3411 क.
प्रभु भेजो इस देश में, ऐसे जीव महान ।
आत्म सात सब गुण करें, और बनें प्रमान ।।3411 ख.

---

* पिशुन दोष (पिशुनता)निन्दा, चुगली आदि ।

तेजस्वी सब पुरुष हों, वीर धुरन्धर देव ।
क्षमाशीलता साथ हो, लगें देश की सेव ।।3441 ग.

वीरों से ही देश महान, वीरों से ही देश की शान ।
वीर देश सी संपद जान, वीर देश की आन पहचान ।
भारत के वीरों की शान, स्मरण करत है सकल जहान ।
महाराणा प्रताप की शान, शिव महाराटा की भी आन ।
उन की दहशत से लो जान, उखड़ जाते असुरों के प्राण ।
उन का धैर्य है जग विख्यात, वन वन भटके थे दिन रात ।
शत्रु सन्मुख नहीं झुक पाये, कहीं शान पै आँच न आये ।
असुरों से उन लोहा लीन, विसर गये जो दुनिया दीन ।

दो॰ ऐसे वीर धुरंधर, उपजे थे इस देश ।
जिन का शौर्य स्मरण कर, कांपें असुर हमेश ।।3412 क.
विनय प्रभु है दास की, वीर भयें इस देश ।
जिन का लोहा जगत में, मानें सभी हमेश ।। 3412 ख.

भारत के वीरों का आचार, और जो उनका शुद्ध विचार ।
मान करता है सब संसार, तेरी प्रभो है दया अपार ।
भारती वीरजगत विख्यात, निर्दोषी का न करते घात ।
शत्रु कठोर दण्ड को पाये, रावण राम से बच न जाये ।
शत्रु होत है सांप समान, उस पै दया अपराध महान ।
वीर का यह कर्त्तव्य महान, देश के शत्रु की पहचान ।
भारत मात न जिस सन्मानी, स्पष्ट शत्रु की यही निशानी ।
भारत से जो करत द्रोह, अथवा रिपु से जिस का मोह ।
उस को दण्ड देना अधिकार, शास्त्र को यह मत स्वीकार ।

विनय प्रभु इस दास की, तव चरणि सविनीत ।
वीर भयें इस देश में, चालें जो शुभ रीत ॥3413

वीर करें न देश से द्रोह, घातें उन्हें जो करें द्रोह ।
वीरों का तो कर्म संहार, देश द्रोही जो हों नर नार ।
जिन को देश से न हो प्यार, या विदेशों से सरोकार ।
संस्कृति आर्य न लागे ठीक, चालें आसुरी ही जो लीक ।
ब्राह्मण गौ का करें न मान, धर्म विरोधी जो इन्सान ।
उन का नाश न पाप कहाये, शास्त्र देश भक्ति कह पाये ।
महापुरुषों ने शस्त्र उठाय, असुरों का संहार कर पाय ।
इन्द्र को तो सभी जन जानें, बृत्रासुर का हंता मानें ।

राम कृष्ण व कालिका, और शिव भगवान ।
शस्त्रों को उन धार कर, मारे असुर महान ॥ 3414 क
राम कृष्ण सम वीर पुरुष, उपजें प्रभु इस देश ।
भारत रहे शिरोमन, जग में नाथ हमेश ॥ 3414 ख
सारे जहां से अच्छा, है भारत यह देश ।
किरपा हो जो आपकी, चमकत रहे हमेश ॥ 3414 ग

प्रभो हमें दो शक्ति का दान, बढ़ा सकें हम देश का मान ।
*१यकमुष्ठ रहे जनता सारी, उपजे प्रीति परस्पर भारी ।
वैर विरोध न देखन आयें, देश सेव मिल सब कर पायें ।
सत्याचरण हो मत हमारा, करें असत्य से हम किनारा ।
सभी तरह की चोरी त्यागें, धोख धड़ी के निकट न लागें ।
ब्रह्मचर्य का नेम निभायें, दुराचार के निकट न जाये ।

१ यकमुण्ठ = संगठित

*१ परिग्रह से हो नहीं प्यार, बांट के खाने का व्यवहार ।
हो सभी में हे भगवान, हमरा देश तब बने महान ।

दो॰ सारे जहां से अच्छा, होगा तब यह देश ।
ऐसे गुण ग्रहण करें, त्यागें दोष विशेष ॥ 3415 क
प्रभो विनय इक और है, शौच न जानें लोग ।
सभी जगह है गंदगी, किमि जाये यह रोग ॥ 3415 ख
ऋषियों की इस भूमि में, फैला मल अपार ।
किरपा करो सुधार हो, पड़ रही धिक्कार ॥ 3415 ग
अन्य देशों में दीखते, सुन्दर सभी स्थान ।
यहां पड़ी है गंदगी, रोगों की जो खान ॥ 3415 घ

त्यागा हम ने शौच का नेम, गंदगी से हम करते प्रेम ।
भयी है कैसी बुद्ध मलीन, जग के सन्मुख भये हैं दीन ।
घृणा का पात्र भया है देश, नेम शौच का त्याग़ केलेश ।
गंदे कूच अशुद्ध बाज़ार, मखियों की जहां है भरमार ।
कूड़ा विखरा चारों ओर, स्वच्छ दीखे न को भी ठोर ।
शौचालय की कथें न बात, दुर्गन्ध फिलाये दिन व रात ।
गंदे छप्पड़ों की बहुतात, उपजें मच्छर जहां दिन रात ।
गंदे नाले मल भरपूर, घरों के सन्मुख न कहीं दूर ।

दो॰ नेम शौच का भूल कर, भया दीन है देश ।
रोगों की भरमार है, जनता दुखी विशेष ॥ 3416 क.
प्रभो विनय तव चरण में, जनता को दो ज्ञान ।
जिसे सफाई जग कहे, लें खुदाई मान ॥ 3416 ख*

---

* १ परिग्रह = सञ्चय करना * खुदाई = ईश्वरीय गुण प्रसिद्ध लोकोक्ति-''सफाई खुदाई है''

शौच नियम को भूल हम, भये योग से दूर ।
तन मन से रोगी भये, हैं असभ्य मशहूर ॥ 3416 ग
नहीं सफाई ग्राम में, साफ नहीं आवास ।
गन्दे प्रायः नगर हैं, जनता साफ न खास ॥ 3416 घ

जहां कहीं भी चल कर देखें, सफाई का न आदर पेखें ।
होटल में चाहे को जाये, ढाबे पर वा बैठ दिखाये ।
हस्पताल में जा कर देखो, अथवा विद्यालय में पेखो ।
रेल स्टेशन पर हम जायें, या हम गाडी में चढ़ पायें ।
बस स्टैण्ड पर हो या जाना, अथवा मोटर पर चढ़ पाना ।
सफाई का न होगा नाम, देश को कीना हम बदनाम ।
यदि दफतर में हम घुस पायें, या हम हाटी में ही जायें ।
तीर्थ स्थल को जा कर देखें, दर्शन हित या मन्दिर पेखें ।
होत दुखी मन वहां पर जाय, साफ मन्दिर भी रह न पाय ।

दो॰ विनय करें स्वीकार यह, दें शिक्षा भगवान ।
भारत वासी शौच का, राखें सदा ध्यान ॥ 3417 क

जा मैदानों में हम देखें, अथवा पार्कों में हम पेखें ।
साफ मिले नहीं को इस्थान, सुधार करो अब हे भगवान ।
सुन्दर हो प्रभु देश हमारा, इसको जग देखे आ सारा ।
जनता के मन भी हों शुद्ध, और हो उन की सुन्दर बुद्ध ।
सब के चित्त में हो संतोष, लूटें न वे देश का कोष ।
तपोमय जीवन सभी का होय, विलासी जन नहीं हो कोय ।

शास्त्र पढ़ आचरण में लायें, स्वाध्यायशील सब बन पायें।
तब चरणी हो सब का प्रेम, ईश्वर का प्रणिधान यह नेम।

दो॰ इन नियमों पर हे प्रभो, सभी चलें हम लोग।
भारत बने शिरोमन, जग के शंसें लोग ॥ 3418

अन्तिम विनय यही कर पाऊँ, भारत में सुराज्य को पाऊँ।
हृष्ट पुष्ट सब जनता होय, खुशियों से भरपूर हो सोय।
सब भुभाग हों सुन्दर ऐसे, उतरा स्वर्ग यहां हो जैसे।
सुन्दर सुन्दर जल के स्त्रोत, उन से देश हो ओत प्रोत।
खाद्यसामग्री के अंबार, भरे हों उन से सब भण्डार।
प्रकृति का नहीं कोप सताये, ग्रीष्म वर्षा वसन्त सुहाये।
राम प्रभो यह तेरा देश, इस की रक्षा करो हमेश।
राम राज्य का स्वप्न अधूरा, कर किरपा वह करना पूरा।

श्लोक

सर्वे भवन्तु सुखिन :
सर्वे सन्तु निरामया :
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चित् दुख भाग् भवेत् ॥
इति देश हित विनय समाप्त

(४) अथ जग हित विनय-चतुर्थ सर्ग

(५३) मानव करे न अत्याचार (3419/3)

दो॰ विनय प्रभु मैं कर रहा, जग के हित भगवान ।
"बसुधा एक कुटुंबकं" ऋषियन का फरमान ॥ 3419 क
जग सारा है एक ही, रचना तव भगवान ।
मानवता है एक ही, प्राणी सभी समान ॥ 3419 ख
मानव को यह बोध दो, मातलोक है एक ।
जगत ही मातृ भूमि है, रचें न खण्ड अनेक ॥ 3419 ग

प्रभो रचा तुम मनुष्य श्रेष्ठ, सभी जीवों में वह है ज्येष्ठ ।
दया करे वह जीवन ऊपर, जो भी प्रकटे हैं इस भू पर ।
मानव करे न अत्याचार, प्राणिमात्र से राखे प्यार ।
अहिंसा वृति वह अपनाये, प्राणियों को न दुख दे पाये ।
सृष्टि में वह काल आ जावे, युद्ध मनुष्य न जब कर पावे ।
लाखों जीवों का संहार, अब रोको तुम हे करतार ।
मनुष्य की बुद्धि में आ जावे, परस्पर युद्ध जिमि रुक पावे ।
महापुरुष बहु आये जहान, दिया जिन्हों ने था यह ज्ञान ।
शीघ्र भुला दीना वह ज्ञान, पुनः युद्ध का जुटा सामान ।

दो॰ अब विनय स्वीकारिये, रोको नर संहार ।
सदियों से हैं सुन रहे, जग में हाहाकार ॥ 3420

उपाय कौन अब आवे कार, जिस से रुके यह नर संहार।
देख अनाथ शिशुओं का हाल, विलख रहे जो सब ही काल।
विधवाओं की चीख पुकार, चित बिदारक है करतार।
प्रभो तुम सर्व सृष्टि के नाथ, जग की कला है तेरे हाथ।
विनय कर मेरी को स्वीकार, आप रोको तुम नर संहार।
प्रभु तुम सुन्दर जगत बनाया, मानव ने है युद्ध रचाया।
ईश्वर सुन्दर रूप बनाये, मानव उन को काट गिराये।
कोई उपाय सूझ न पाये, घोर कलह यह किमि रुक पाये।

दो॰ बिन तव किरपा के प्रभो, रुके न नर संहार।
दया जगत पर कीजिये, हे जग सिरजन हार ॥ 3421

ऐसे जीव प्रभु उपजायें, सहन शीलता जो अपनाये।
जिन के चित्त न हो अहंकार, क्रोधी जो नहीं हों नर नार।
सहनशीलता जिन का स्वभाव, स्वार्थ बिगाड़े नहीं सद्भाव।
जिन का चित्त संकीर्ण नाहीं,समदृष्टि हो सब के ताही।
अपना रूप सबन को जानें, चित्त में भेद भाव न आनें।
देश की सीम, धर्म का भेद, जिन को इन का लेश न खेद।
मानवता का नाता जान, सब से करें व्यवहार समान।
ऐसे जन जग में उपजायें, प्रभो जगत को सुखी बनायें।

दो॰ जगत सुखी तब होयेगा, पैदा हों जब लोग।
अहिंसा जो अपनायें, ग्राहवें मार्ग योग ॥ 3422

अहिंसा को जब जग ले मान, परम धर्म इस को पहचान।
जग से मिटे तब कलह क्लेश, समाप्त युद्ध भीभयें हमेश।
हो नहीं जीवों का संहार, युद्ध करें नहीं नाश अपार।

योग धर्म जब तलक न आये, हिंसा जगत में रुक न पाये ।
प्रभु जी करो जग पर उपकार, योग को ले सब जग ही धार ।
जब तक योग न जग अपनाये, सुख शांति नहीं जग में आये ।
विश्व शांति का यही उपाय, सर्व जगत ले योग अपनाय ।
अहिंसा व्रत लेवे यह धार, और सत्य का होय आधार ।

दो० सत्य अहिंसा पर चले, योग धर्म को धार ।
सुख शांती के राज्य का, जग में हो प्रसार ॥ 3423

जग में ऐसा प्रभु युग आये, सत्य वचन सब के मुख भाये ।
मन में भी हो सत का वास, सत आचरण भी सबका खास ।
मन वचन और कर्म से एक, भये जगत का जन प्रत्येक ।
सत्य ही सब का हो आचार, सत्य ही सब का हो व्यवहार ।
सत्य ही सब के मुख पै होय, जग जीवन में सुख तब होय ।
जीवन का है ऋत आधार, क्लेश अनृत से मिलत अपार ।
ऋत ही तेरा न्याय है नाथ, जग देवे तव ऋत का साथ ।
सब प्राणिन को मिले न्याय, अन्याय किसी से न हो पाय ।
तेरे न्याय से डरे जहान, अत्याचारी न हो इन्सान ।

दो० नीति पर सभी जन चलें, भय तेरे को मान ।
मन मानी न कोई करे, इस जग में इन्सान ॥ 3424

निर्बल को जब सबल दबाये, जगत सदा इस से दुख पाये ।
आ आक्रामक लूट मचायें, घर लूटें वा दास बनायें ।
जग पै नाथ करो यह दाया, लुभावे न जग को यह माया ।
चोर लुटेरा रहे न कोई, सुख की नींद सोय हर कोई ।
रहें न जग में आसुर लोग, जिन के भय से कांपें लोग ।

सह अस्तित्व का गुण भगवान, जग में सीखे हर इन्सान ।
*लोष्टवत पर द्रव्य को देखें, मातृवत परनार को पेखें ।
आत्मवत सब लागें लोग, ऐसा जग में भये सुयोग ।

दो॰ वह क्षण कब आयेगा, हे मेरे भगवान ।
सकल जगत के लोग जब, गले मिलेंगे आन ॥ 3425 क
न रहे जब वैर यहां, न ही रहे विरोध ।
कोई किसी पर हे प्रभु, भूल करे न क्रोध ॥ 3425 ख
सीमा जायें टूट सब, देशों की भगवान ।
जहां चाहे जन जा सके, बिना किसी प्रमाण ॥ 3425 ग

प्रभो यह कैसा है उपहास, ले कर खण्ड इक भू का खास ।
कोई पुकारे मातृ भूम, कोई पुकारे पैतृ भूम ।
परस्पर करते सदा विरोध, उदीप्त करें निज मन में क्रोध ।
कर पाते फिर नर संहार, चित्त माता का हो दुखयार ।
भूमण्डल जो है साक्षात, मातलोक यही है विख्यात ।
इस की बैठें सब मिल गोद, माता के चित्त उपजे मोद ।
लोग परस्पर जब हैं लड़ते, और जभी लड़ लड़ कर मरते ।
देव लोक उन को दुत्कारे, कैसे जीव ये मूर्ख सारे ।

दो॰ देवों से भी श्रेष्ठ जो, पाया मानव देह ।
माया के पड़ जाल में, करें काट के खेह ॥ 3426 क
यदि परस्पर प्रेम से, जन बसें भूलोक ।
स्वर्ग से भी होय सुखी, यही पृथ्वी लोक ॥ 3426 ख
मातलोक प्रसन्न हो, सब का मन प्रसन्न ।

* लोष्ट = माटी

दिव्य लोक प्रसन्न हो, रहे न को आपन्न ॥ 3426 ग

कलह क्लेश निवारण हेत, करो प्रभो तुम सबन सचेत ।
त्यागें परिग्रह को हम लोग, मिल कर भोगें जग के भोग ।
हथ्यायें न हम पर प्रदेश, संतुष्ट रहें सब अपने देश ।
यह तुम्हारा स्पष्ट आदेश, चरितार्थ करें न होय क्लेश ।
इक क्लेश मैं और बताऊँ, बहु रोगों को जग में पाऊँ ।
मानव के है पाछे लागा, कैसा रोग का भूत अभागा ।
असंख्य जीव है जग के मांहि, ऐसे रोग न उन्हें सतांहि ।
रोग लिखा क्या मानव भाल, करत रोग जो उसे बेहाल ।

दो॰ जलचर भूचर नभचर, जग में जीव अनेक ।
सुख से विचरण वे करें, रोगी न प्रत्येक ॥ 3427

जग में कहीं भी चलकर जायें, रोगों की भरमार हि पायें ।
मानव को प्रभु आप बचायें, रोगों से सब इसे छुडायें ।
रोगों की बढ़ रही है बेल, नये नये जिमि खेलें खेल ।
रोग एक का होय उपचार, रोग अन्य ले डेरा डार ।
जिस का मिले न सहज इलाज, मानव दुखी भया है आज ।
शरणि तेरी "सेवक" आया, जग को दुखी देख घबराया ।
सर्व दुखों का एक उपाय, योग साधन में जग लग जाय ।
योग साधन बिन नहीं कल्याण, इस को समझें सभी इन्सान ।
विनय कर मेरी को स्वीकार, सर्वत्र योग का हो प्रचार ।

(५४) ऋषि मुनियों से ज्ञान ग्राहें (3429/6)

दो॰ योग का प्रचार हो, सर्व जगत में नाथ ।
रोग शोक से मुक्त हो, सुख लगे सब हाथ ॥ 3428

सर्व रोगों का मूल अशौच, नियम योग का प्रथम है शौच ।
अगर शौच को जन अपनाये, मुक्ति रोगों से पा जाये ।
प्रथम शौच तो देह का होय, भीतर से तन मानव धोय ।
जहां पर मल कुपित हो पाय, और कृमियों ने वास बनाय ।
जभी उस देह को करें सफा, सब रोगों से तब मिले शफा ।
इस बात का भी रहे विचार, अभक्ष्य करे न जन आहार ।
निषिद्ध खाद्य से बढ़ते रोग, सावधान रहें उन से लोग ।
षटकर्म जन जभी कर पायें, देह को निर्मल निज बनायें ।
देह निर्मल जब हो हमारा, रोग जगत से करे किनारा ।

दो॰ षटकर्म सभी योग के, उन का हो प्रचार ।
रोगों से तब मुक्त हो, यह सकल संसार ॥ 3429 क
और विनय इक मैं करूँ, हे मेरे भगवान ।
ग्राहें गुण संतोष का, हो सब का कल्याण ॥ 3429 ख

जन संतोषी सुख को पावें, बिन संतोष दुखी रह पावें ।
जब संतोष का हो प्रसारा, दुख जगती से करे किनारा ।
कामी लोभी मत उपजायें, जगती को जो दुखी बनायें ।
ऐसे जन उपजें इस लोक, जिन के चित्त न हर्ष न शोक ।
तप से अन्तः करण हो शुद्ध, तप से जिन की बुद्ध प्रबुद्ध ।
ऋषिमुनियों से ज्ञान ग्राहें, शास्त्रों को वे नित पढ़ पायें ।
तव चरणों में सब का प्यार, ऐसा जगत रचो करतार ।
ऐसे जन न जगत में जायें, जो न प्रभु चरणों को ध्यायें ।

दो॰ प्रभु चरणों के भजन का, सर्वत्र हो प्रसार ।
यही विनय तव चरण में, है मेरी करतार ॥ 3430

ऐसे जन न जग में जायें, जो न योग विद्या अपनायें ।
योग विहीन जो होता नाथ, काल के भी वह पड़ता हाथ ।
योगिजन ऐसे उपजायें, दया सबन पर जो कर पायें ।
जिन के चित्त न भेद हो लेश, जड़ चेतन पै दया हमेश ।
सभी जीव हों उन को प्यारे, आत्म रूप ही दीखें सारे ।
यह भी विनय मम हो स्वीकार, हो शांति जग में सब प्रकार ।
कलह क्लेश जग से हो दूर, प्राप्त करें सभी सुख भरपूर ।
रोग ग्रस्त न होय जन कोय, आयु दीर्घ जन गण की होय ।
अन्न मिले सब को भरपेट, अकाल की जग न आय लपेट ।
ऋतुकाल हों सब सुखदायी, अति न भये उन की दुखदायी ।
प्रजा में हो परस्पर प्यार, आह्लाद मिले सबन के द्वार ।

दो० सब जग में आह्लाद हो, सब जग में हो प्यार ।
दुखी दीखे न जगत में, कहीं कोइ नर नार ॥ 3431

विनय सुनो अब फिर भगवान, किया युद्धों ने जग परशान ।
युद्ध जगत में इक अभिशाप, इसे दूर करो प्रभो आप ।
इस कारण सब को दुख भारी, आतंकित इस से सृष्टि सारी ।
हाहाकार जग में मच जाय, युद्ध पिशाच जब मुख को बाय ।
जग कब होगा युद्ध से मुक्त, शाश्वत शांति से होय युक्त ।
युद्धों का जब रहे न नाम, सुख से करें सब अपने काम ।
बाल अनाथ जब न रो पावे, विधवा न जब आह भर पावे ।
तड़पें नहीं जन क्षत विक्षत, ढेरों में नहीं पड़े हों हत ।
मनुष्येतर जो प्राणी नाथ, क्यों तड़पें यहां उन के गाथ ।

दो० कब आयेगा नाथ वह, जग में काल महान ।
युद्ध होयें न जगत में, सुख से रहे जहान ॥ 3432

ऐसा काल तभी चलि आये, किरपा जग जब तेरी पाये ।
खुद तो जगत यत्न कर हारा, विफल सदैव भया श्रम सारा ।
भेजे तुम ने पुरुष महान, शांति का जिन दिया था ज्ञान ।
जग ने वह उपदेश भुलाया, नरसंहार सदा कर पाया ।
जग पर विपदा यह है भारी, इसे निवारो हे दुख हारी ।
जनता रहत सदा आतंकित, युद्धाग्नि से सदैव सशंकित ।
"सेवक" पर तुम हो कर दयाल, युद्ध निवारो हे जग पाल ।
तेरा परम सुन्दर यह लोक, युद्ध अग्नी हम दीना झोंक ।
कैसा मूर्ख भया इन्सान, करता भस्म खुद निज ठिकान ।

दो॰ ऐसे दृश्य को देख कर, होत दुखी मम चित्त ।
प्रभो निवारो युद्ध को, इसी में सब का हित ॥ 3433

विनय प्रभु मैं वहु कर पाया, हिरदय का उद्गार सुनाया ।
क्षमा करो प्रभो मम दिठाई, मेरी बुद्धि की तुच्छताई ।
सृष्टि के तुम रचन हो हार, मेरी विनय न यहां दरकार ।
सृष्टि का प्रतिक्षण हे नाथ, उस का भाग्य बदा तव हाथ ।
तुम तो धर्म राज भगवान, नाप तोल कर करत प्रदान ।
धर्म स्थापन हित हो आये, राम लाल का नाम धराये ।
कल्पांत तल्क जगति तव वास, भक्त सबन का यही विश्वास ।
धर्म हेतु तुम जग में आये, और संग कुछ सेवक लाये ।
वे भी करते तेरा काम, धर्म संस्थापक हो तुम राम ।

दो॰ हानि होत जब धर्म की, आओ ले अवतार ।
दिव्य रूहें तव साथ में, आ सब करतीं कार । 3434

मुलख राज आये थे साथ, जिस पै सदा रहा कृपा हाथ ।

राम गोपाल सेवक भारी, दिव्य रामरत्ती थी नारी ।
लवपुर के कुछ भक्त प्यारे, अमरितसर भी सेवक भारे ।
तेरे काम में सभी सचेत, जीवन अर्पा योग के हेत ।
किस किस भक्त का करें बखान, अर्पे सेवा में जिन प्राण ।
लो इक भक्त का करें बखान, चन्द्रमोहन जिस का अभिधान ।
चन्द्र मोहन भक्त शिरोमन, योग धर्म हित अर्पित तन मन ।
उस के कार्य को हम बखानें, तेरी महिमा जिमि जन जानें ।

दो॰ प्रभु की महिम महान है, बखान किमि हो सोय ।
प्रभु भक्तों के कर्म से, हि जन ज्ञान विगोय ॥ 3435 क
निज भक्तों पर हे प्रभो, जैसी कृपा कीन ।
उस कृपा का पात्र कभी, बन पाऊँ मैं दीन ॥ 3435 ख
इसी विनय के साथ ही, कथन करूँ हे नाथ ।
उस भक्त का दिव्य चरित, था जो तेरे साथ ॥ 3435 ग

चन्द्र मोहन था उस का नाम, उपजा था वह अलुपुर ग्राम । *
देवी राम पिता का नाम, चरती देवी मात सुजान ।
गौड ब्राह्मण वंश में जाय, जग में मोहन चांद थे आय ।
बालक दिव्य, पिता विद्वान, माता रूप देवी का जान ।
ऐसा बना अनुपम योग, जगती को मिला दिव्य सुयोग ।
बालक होनहार था भारी, सूरत लगती सब को प्यारी ।
रूह अलाही जग में आये, अखिल जगत के मन को भाये ।
मात पिता थे करते प्यार, नारी नर हों सभी बलिहार ।

* अलुपुर ग्राम तहसील पानीपत, ज़िला करनाल राज्य हरियाणा ।

दो॰ ऐसे दैवी बाल से, सब जग करता प्यार ।
बाल्य काल में ही भये, दर्शन उसे अपार । 3436

खुली आंख कृष्ण को देखे, बाल रूप में उस को पेखे ।
क्रीड़ा करत वह उस से ऐसे, बहु जन्म का सखा हो जैसे ।
बाल्य काल का दिव्य ध्यान, बनी जीवन की निधि महान ।
सन्मुख कभी प्रकाश लखाये, मध्य रात सूरज चढ़ आये ।
ऐसे ही उस काल बिताया, पूर्व जन्म भी उसे लखाया ।
इस विध शैशव भया व्यतीत, फिर उपनयन की कीनी रीत ।
पण्डित शम्भु दत्त आचार्य, उस ने कीना शुभ यह कार्य ।
बालक को जनेऊ पहनाया, गुरु मन्त्र उसे जपन सिखाया ।

55. ढूँढन से किसे मिले हैं राम (3438/5)

दो॰ आठ वर्ष की आयु में, शुभ भया यह काम ।
गुरु मन्त्र को सिद्ध करत, चन्द्र प्रातः शाम ।। 3437 क
निज पिता से करत वह, विद्या का अभ्यास ।
पाठशाला जो ग्राम की, वहां न विद्या खास ।। 3437 ख

ग्राम छोड़ फिर नगरी आया, विद्या सीख वहां कुछ पाया ।
और पढ़ूँ उस के चित्त आई, लवपुर को तब कीन चढ़ाई ।
लवपुर में जब चल कर आया, ब्रह्म विद्यालय में पढ़ पाया ।
वहां भी ठहरा कुछ ही काल, समझे न वह निज चित्त हाल ।
उस के चित्त में थी प्रभु प्रीत, ढूँढे उन को वह किस रीत ।
प्रभु प्रेम जब चित्त में होय, ग्रंथों में को चित्त को खोय ।
गुरु कुल छोड़ वा घर भी छोड, आया मोहन वृन्दावन ओर ।
वृन्दावन में कहां भगवान, अमृतसर था निवास स्थान ।
वहां से निरख रहे थे राम, कर्म निज बालक के अभिराम ।

दो० दूरी न स्वीकार थी, प्रेरा उन निज पास ।
अमृतसर में प्रेर कर, पढ़ने डाला दास ॥ 3438

पढ़ने में नहीं मन लगाया, प्रभु का प्रेम ही मन समाया ।
दिव्य विभूती वह थी आयी, जग के हित संग प्रभु थी लायी ।
प्रभु का बाल प्रभु संग आया, प्रभु को खोज न अभी तक पाया ।
हाथ पैर थे बहु उस मारे, मिले न प्रभु कहीं भी प्यारे ।
ढूँढन से किसे मिले हैं राम, मिलते खुद ही आ अभिराम ।
बिखरें हों जिस किसी के लाल, खोजत वही उन को सब काल ।
राम शबरी को ढूँडन आये, कर खोज हनुमान थे पाये ।
मुलखराज को स्वयं बुलाया, "सेवक" को खुद चरणि लगाया ।

दो० उन्हीं प्रभु ने चाँद को, दिये स्वप्न में दर्श ।
जीवन की निधि मिल गई, मोहन के मन हर्ष ॥ 3439

मोहन के मन हर्ष समाया, प्रभु का दर्शन जब उस पाया ।
कहां पै ढूँढे उन को जाय, इसी उलझन में रह वह पाय ।
दुर्गादास इक मित्र प्यारा, खोला भेद उसी ने सारा ।
जिन के दर्शन तुम ने पाये, राम योगेश्वर जगति आये ।
उन का बालक मुलख है राज, मिलो तुम उस को जा कर आज ।
अथवा मैं तुम्हें मिलवाऊँ, तेरी समस्या हि सुलझाऊँ ।
दुर्गादास ने कीना काज, मिले चन्द्र वा मुलख जी राज ।
मुलखराज से भया मिलाप, मानो मिले थे प्रभु खुद आप ।
मुलखराज उस को घर लाया, प्रभु स्वरूप उस को दिखलाया ।
दिखे वहां पर वही भगवान, जो मिले थे स्वप्न में आन ।

दो० उसी रूप को निरख कर, भया चित्त विश्वास ।
मुझ को प्रभु हैं मिल गये, जाऊँ अब उन पास ॥ 3440

मुलख राज से विनती कीनी, उत्कट इच्छा निज कह दीनी ।
मुझे बताओ हे महा भाग, पूर्ण करो तुम मम अनुराग ।
जा कर कहां मिलूँ इन ताहीं, यह इच्छा अब है मन माहीं ।
जैसे भी हो दर्श कराओ, कहां मिलूँ अभी यह बताओ ।
तड़पन अपने मन की भारी, खोल बता सकूँ नहीं सारी ।
मानूँ तेरा महा उपकार, दर्श करा दो अब साकार ।
ले चलिये अब उन के पास, जहाँ पै उन का दिव्य निवास ।
विरह न उन का मैं सह पाऊँ, किमि निज हिरदय चीर दिखाऊँ ।
ऐसा कथ वह भया अधीर, मुलख जानी जो उस मन पीर ।

दो॰ मुलखराज ने तब कहा, हे मम प्यारे मीत ।
योगेश्वर भगवान हैं, ऋषि केश में स्थीत ॥ 3441 क
गंगातट के पास ही, उन का है आवास ।
भगवान भवन के निकट, आश्रम है वह खास ॥ 3441 ख
साधन आश्रम योग का, योग करावें नाथ ।
करो दर्श तुम जाय कर, धरणा चरणि माथ ॥ 3441 ग

मुलख राज का पा आदेश, चन्द्र मोहन चला उस देश ।
जहाँ बसते सब के हृदेश, प्रसिद्ध तीर्थ जो है ऋषिकेश ।
गंगा जी में कर इसनान, किये दर्श फिर प्रभु के आन ।
प्रभु किरपा से दीक्षा पाई, जन्म जन्म की प्यास बुझाई ।
कुछ काल उस भ्रमण बिताया, अमृतसर फिर लौट के आया ।
मुलखराज से फिर मिल पाये, वहां गोपालानन्द भी आये ।
कीन गोपालानन्द उलेख, प्रभु लीला को ध्यान में देख ।
मानिक चन्द की प्रभु बिमारी, उन निज तन पर ली जो सारी ।

दो० बात अनोखी श्रवण कर, कीना न विश्वास ।
अमृतसर से चल पड़ा, आया प्रभु के पास ॥ 3442

वहां पर उस ने प्रभु को देख, दुर्बल देह में उन को पेख ।
सभी हाल जनता से पाया, मानिकचन्द किमि शरणि आया ।
तपदिक से था वह लाचार, उस का कहीं न था उपचार ।
प्रभु ने रोग वह निज तन लीन, स्वस्थ उन मानिक को कर दीन ।
स्पष्ट बात यह सकल पहचान, दीन बन्धु उस प्रभु को जान ।
पूर्ण भाव से भया समर्पित, तन मन धन सब कीना अर्पित ।
सेवा रत अब रहने लागा, प्रभु चरणों का वह अनुरागा ।
लवपुर और सुधासर बीच, ऋषिकेश भी आश्रम बीच ।
अनेकों जन उस किये निरोग, साधन हित जो आते लोग ।

दो० प्रभु अवतारी सद्गुरु, उन की चन्द्र ज्योत ।
जनता को उस से मिला, शीत योग-उद्योत ॥ 3443 क
उन्नीसशत अठतीस, त्यागा प्रभु शरीर । (1938 सन्)
डूबा मोहन शोक में, मन में भया अधीर ॥ 3443 ख
इधर उधर था घूमता, निश्चित न आवास ।
राम लाल तो जानते, वह था बालक खास ॥ 3443 ग
तरने थे अनेक जन, उन के आ कर पास ।
प्रेरित कर इक भक्त को, भेजा उस के पास ॥ 3443 घ
सवाई का वह भक्त था, राम चन्द्र था नाम ।
कीनी विनती आय कर, चलो प्रभु मम ग्राम ॥ 3443 ङ

चन्द्र मोहन विनय सुन पाया, उस के चित्त भाव तब आया ।

मेरे गुरु की भूमि प्यारी, तपतेज से भरी जो सारी ।
क्यों न वहां जा दर्शन पाऊँ, उस के रज कन मस्तक लाऊँ ।
मन में जब यह भाव समाया, जयघोष तभी देवन लाया ।
प्रभु की भूमि में अभी जायें, दिव पुरुष ये वहां रह पायें ।
प्रभु का योग वृद्धि को पाये, आसुर शक्ति मुँह की खाये ।
चन्द्र मोहन जब तंह पधारे, जुटे ग्राम के सज्जन सारे ।
जाना सब ने अपना भाग, प्रभु सुरूप आये महाभाग ।

दो॰ चन्द्र मोहन क्या आ गये, स्वयं प्रभु चलि आय ।
दीर्घ कालिक वियोग को, दूर किया पग लाय ॥ 3444

सब भक्तों ने चरण स्पर्शे, चरण धूलि ले मन में हर्षे ।
देवों की क्या पूछें बात, मिले जनता में आ साक्षात ।
प्रभु से बिछुडी भूमि प्यारी, देख चन्द्र को भयी सुखारी ।
भूमी अपना भाग्य सराहे, प्रभु का रूप हैं चन्द्र आये ।
चांद चकोर की जो है प्रीत, जनगण चन्द्र प्रति वही रीत ।
सवांइ में वह जब रह पाया, तप में ही उस काल बिताया ।
ध्यान समाधि योग अभ्यास, अनुष्ठान भी थे कीने खास ।
जनता को बहु योग सिखाया, रोगियों का उस रोग दुराया ।
असाध्य रोग से पीडित लोग, निरोग किये करा कर योग ।
चन्द्र मोहन स्वयं हैरान, कौन करे सब काम महान ।
अल्पकाल में भया प्रचार, इस में कुछ है भेद अपार ।
राम प्रभु तब आन बताया, ध्यान अवस्था में समझाया ।
सवांइ भूमि हमें है प्यारी, इस जा गुफ़ा प्रसिद्ध हमारी ।

दो॰ इस भूमि में बैठ कर, करो योग प्रचार ।
मेरी किरपा से मिले, तुम्हें बहु सत्कार ॥ 3445 क

प्रभु आज्ञा को श्रवण कर, त्यागा चान्द ध्यान ।
चित्त भरा उत्साह से, आत्म तेज महान ॥ 3445 ख

चन्द्र में उत्साह था भारी, आत्मिक शक्ति प्रकटी न्यारी ।
कइयों को उस योग सिखाया, कइयों ने वरदान था पाया ।
कइयों ने दिव करिश्में देखे, शक्तिपात के दृश्य भी पेखे ।
बहु जन बने उस के अनुयायी, अनेकों ने दिव्य दृष्टि पायी ।
यह सब राम प्रभु की दाया, जिस सवांङ में चांद बिठाया ।
भया भक्तों का बहु विस्तार, चन्द्र मोहन से सब का प्यार ।
ईश्वर रूप वे उस को मानें, मुख्य प्रभु का शिष्य पहचानें ।
उत्तर दक्षिण पश्चिम पूर्व, चारों दिशा प्रचार अपूर्व ।
पूर्णचन्द्र जिमि नभ में चमके, पृथ्वी पर तिमि मोहन दमके ।
दोनों का प्रकाश था न्यारा, जग के ताप को हरने हारा ।

५६. "सेवक" भी तू संग है लाया (3446/9)

दो॰ दोनों हरते ताप को, उन का सम प्रताप ।
एक हरत तन ताप को, दूसर मन का ताप ॥ 3446

नियम विधाता का पर ऐसा, काल रहे न एक सा जैसा ।
पूर्ण चान्द भी अस्त हो जाये, अन्धकार जगती में छाये ।
भयंकर काल विधाता लाया, भू का चान्द अस्त हो पाया ।
भक्तन मन अंधेरा छाया, क्या भया को जान न पाया ।
एक बात "सेवक" कह पाया, अपने मन का भाव जताया ।
और विनय मन ही मन कीनी, राम प्रभु जो थी सुन लीनी ।
हे प्रभो यही विनय पुकार, किरपा कर कर लो स्वीकार ।
व्योम में चमके जब तक चांद, अमर रहे यह भू का चान्द ।

चन्द्र तेरे संग था आया, "सेवक" भी तू संग है लाया ।
और अनेकों तेरे दास, राखो जिन को अपने पास ।

दो० ऐसा ही इक दास तव, जिस का करूँ वखान ।
सफल किया नर देह को, रह सदा तव ध्यान ॥ 3447

*मालागढ़ में वह उपजाया, शिवदयाल पाँडे घर आया ।
नारायणी थी मात सुभागी, प्रभु भक्ति में रहत वह पागी ।
था रघुनाथ बालक का नाम, जिस ने करना था बहु काम ।
तीन वर्ष की जब आयु भयी, माता स्वर्ग वासी हो गयी ।
उच्च कुल में तो था उपजाया, दैव वश सुख वह देख न पाया ।
अठदश वर्ष का था जब बाल, ग्रसा पिता को भी तब काल ।
भाई बहन भी स्वर्ग सिधारे, मन में तब रघुनाथ विचारे ।
जीवन का है क्या विश्वास, निकल जाय यह पल में श्वास ।
किस हेतु है देह यह धारा, अब से करूँ मैं यही विचारा ।
ज्ञान गुरु से सदा जन पाये, ऐसा गुरु किस जा मिल पाये ।
त्याग जगत के सारे काम, खोजूँ मैं अब गुरु का धाम ।

दो० देश देशान्तर भटका, गुरु का खोजन हार ।
गुरु पाया रघुनाथ न, भया निराश अपार ॥ 3448 क
दृढ़ संकल्पी बाल था, दृढ़तम कीन संकल्प ।
जो गुरु मिलें न मास इस, जीवूँ काल न अल्प ॥ 3448 ख

मासांत में छलांग लगाऊँ, गंगा माँ की गोद समाऊँ ।
रह अज्ञानी जीना व्यर्थ, दूसर भव गुरु पाऊँ समर्थ ।
चित्त में धार विचार अगाध, व्रत चन्द्रायण लीना साध ।

* ग्राम मालागढ़ ज़िला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश ।

मासांत काल जब आया पास, पूजी नहीं फिर भी जब आस ।
खड़ा भया वह गंग के तीर, फैंकने को निज गंग शरीर ।
प्रकटे द्यु में तभी भगवान, करने को निज बाल का त्राण ।
दिव्य ध्वनि से नाथ पुकारा, 'हे बालक मत बन हत्यारा ।'
मैं तुझे निज संग हूँ लाया, प्रकटा अब तुझ पर कर दाया ।
मेरे धाम अभी चलि जाओ, ऋषि केश जा कर रह पाओ ।''

दो॰ नभ की ध्वनि स्पष्ट थी, चौंका सुन रघुनाथ ।
बैठ गया मुख मोड वह, कहा ''धन्य तुम नाथ'' ।।3449 क
''की पूरी मम साध तुम, पाया गुरु भगवान ।
शिरोधार्य तव वचन कर, अभी करूँ प्रस्थान ।। 3449 ख''

रघुनाथ चला ऋषिकेश की ओर, ढूँढे जा सद्गुरु का ठोर ।
स्थान वहां उस जा बहु देखे, सद्गुरु का तो चिह्न न पेखे ।
निराश भया वह जब रघुनाथ, कीन कृपा तब सद्गुरु नाथ ।
अपना भेद बताया आप, गुरु कृपा बिन न होत मिलाप ।
प्रभु ने प्रेरा आश्रम ओर, योग का आश्रम था जिस ठोर ।
योग साधन आश्रम में आय, भीतर एक आकर्षण पाय ।
भीतर जा उस मूरत देखी, राम प्रभु की प्रतिमा पेखी ।
जान लिया यह वही भगवान, काशी में जिन कीना त्राण ।
आते नहीं यदि ये उस काल, मैं समाता काल की गाल ।
मिलूँ कहां अब इन को जाय, प्रकट जिज्ञासा वह कर पाय ।

दो॰ प्रभु का सेवक था खड़ा, उस से कीन सवाल ।
क्या मुझे बतलाओगे, किन का यह आकार ।। 3450 क

कहां मिलूँ मैं जाय कर, है किधर आवास ।
आया हूँ मैं दूर से, इन को मिलने खास ॥ 3450 ख

प्रेम सहित भक्त कह पाया, तुम से मैं हूँ जो सुन पाया ।
उस का उत्तर मैं दे पाऊँ, बात सम्पूर्ण मैं समझाऊँ ।
ये हैं राम लाल भगवान, वनों में कीना इन प्रस्थान ।
मुलख राज इन का प्रतिरूप, रखते निज को जो हैं गूप ।
उन का है इस काल निवास, छेहरटा आश्रम में हि खास ।
उन को मिल सब खुलेगा भेद, और मिटे तव मन का खेद ।
अमरितसर प्रथम जा पाओ, फिर छेहरटे को चलि जाओ ।
रेल स्टेशन के ही पास, प्रभु का आश्रम बना है खास ।

दो॰ सेवक की सुन बात को, चल पड़ा रघुनाथ ।
उस के मन प्रतीत थी, बुला रहे हैं नाथ ॥ 3451

धाम छेहरटा जा उस देख, संतोष भया उस मन विशेष ।
मुलखराज के दर्शन कीन, कर दण्डौत उस आशिषलीन ।
मुलखराज है राम का रूप, उस पहचानी बात यह गूप ।
मुलखराज ने वहीं ठहराय, सेवा कारज में दिया लगाय ।
रह वहां सेवा भक्ति लीन, रघुनाथ वहां था सुखासीन ।
सीखा उस ने योगाभ्यास, मुलखराज के रह कर पास ।
नेती धौती आसन सारे, उस ने सिद्ध सभी कर डारे ।
सेवा एक भयी उपकारी, पढ़ता था जो डाक वह सारी ।
मुलखराज को पत्र सुनाता, उत्तर भी वह ही लिख पाता ।
अनुभव भक्तों के जो खास, ज्ञान मिला उसे रह कर पास ।

दो॰ भक्त जनों के ध्यान को, पढ़ पढ़ कर रघुनाथ ।
चित्त जमी उस बात यह, हैं प्रभु आदि नाथ । 3452

राम प्रभु को उस पहचान, शिव का रूप राम को मान ।
इष्ट रूप वह शिव को ध्याता, राम उसे शिव में दिख पाता ।
प्रभु की प्रतिमा लगती प्यारी, पाये गुरु उस ने पापारी ।
राम को ही वह गुरु कर माने, इष्ट राम को ही पहचाने ।
राम था उस का भोले नाथ, पुकारत राम को वह कह "नाथ" ।
दिन रात वह प्रभु को ध्याये, श्रद्धा से दण्डौत कर पाये ।
उस की मस्ती को जो देखे, भक्त शिरोमन उसे उलेखे ।
मुलखराज की किरपा पाय, अनुभव उस ने बहु कर पाय ।

दो॰ उस मस्ती के मध्य में, सुनी राम की बात ।
"लला तुझे अब ले चलें, ग्राम सवांई तात ॥" 3453 क
मस्ती के ही मध्य में, आ गया वह ग्राम ।
बाग गुरु के जाय कर, देखी प्रतिमा राम ॥ 3453 ख
गिरा वहां पर आय कर, समाधी में हो लीन ।
"भक्त शिरोमन आ गया," लीना सब जन चीन ॥3453 ग
आये चन्द्र मोहन जी, लीना कण्ठ लगाय ।
दो भक्तों का मिलन यह, देखन बहुत सुहाय ॥ 3453 घ

चन्द्र मोहन को मिला सहाय, मित्र रूप वह वहां रह पाय ।
प्रभु का कार्य करें वे दोय, सीखे योग जो आवे कोय ।
कई वर्ष उस वहां गुज़ारे, लागे सेव भक्ति में सारे ।
आश्रम का बहु रूप संवारा, गाँव गाँव जा योग प्रचारा ।
कठिन साधना में मन दीन, व्रत उपवास उस बहु विध कीन ।
देह से उस को भया विराग, वस्त्रों को उसदीना त्याग ।
टाट का टुकड़ा तन लपेट, नांगी पृथ्वी रहता लेट ।

''बाबा टाट'' भया प्रसिद्ध, जनता माने उस को सिद्ध ।
जनता ने बहु दीना मान, लागत भय, नहीं हो अभिमान ।

दो॰ क्रोध काम मद लोभ जो, शत्रु जो अहंकार ।
योगी का धन लूट लें, ऐसे ये बदकार ॥ 3454

रघुनाथ को था योग प्यारा, प्रभु जी का था उसे सहारा ।
अपना लाभ इसी में जाना, सवांइ छोड़ वह हुआ रवाना ।
जग के मान से रह कर दूर, प्रभु भक्ति में रह कर चूर ।
साधन योग सदा कर पाये, मानव जीवन सफल बनाये ।
ऐसा कौन स्थान वह होय, परम शांति को चित्त जहां गोय ।
जहां हो सत्पुरुषों का वास, परंपरागत भी जो खास ।
मायावी जन जहां न होयें, तीर्थथल भी जहां बहु सोहें ।
ऐसा थल कहां मिल पाये, भक्ति बिना कुछ नज़र न आये ।

५७. अनेकों जन थे प्रभु ने तारे (3455/9)

दो॰ ऐसा थल मुझ को मिले, हे मेरे भगवान ।
क्रोध काम मद लोभ का, जहां परम अवसान ॥ 3455 क
अहंकार जिस देश में, मिले न मानुष चित्त ।
प्रभो दिखावो देश वह, मुझ को इसी निमित्त ॥ 3455 ख
जन तेरा प्रभु है खड़ा, असमंझस में नाथ ।
त्राण मिले अब हे प्रभो, इस जन को तव हाथ ॥ 3455 ग

मन रघुनाथ थी दुविध महान, उस का था चित्त अति परशान ।
कौन दिशा वह चल कर जावे, प्रभु का दर्शन जहां हो पावे ।
उस के मन की एक ही साध, प्रतिक्षण ले वह प्रभु आराध ।

प्रभु ने उस की हालत देख, और उसे परशान बहु पेख ।
प्रभु ने तब उस को दिखलाया, सुन्दर दृश्य जो दृष्टि आया ।
चल रहे प्रभु इक नद के तीर, जिस का बहता पश्चिम नीर । *
भारत की तो नदियां भारी, बह रही पूर्व को हैं सारी ।
अनोखा यह है नद महान, परिक्रमा जिस की करे जहान ।
अनेकों जन थे प्रभु ने तारे, जो रहते थे इसी किनारे ।

दो॰ नर्बदा इस का नाम है, नदियों में सरदार ।
प्रभु परिक्रमा थी करी, तारे बहु नर नार ॥ 3456

उसी नदी का दर्श कराया, रघुनाथ को श्री प्रभु बताया ।
नरबद नद है पावन भारी, तुम चलने की करो त्यारी ।
रघुनाथ प्रभु का समझ ईशारा, तुरन्त चला ले प्रभु सहारा ।
लांबी यात्रा कर रघुनाथ, पहुँच नदी पै भया सनाथ ।
वहां पर जा उस ने जो देखा, घने वनों का देश था पेखा ।
जहां थे चीते बाघ अनेक, वन चर जीवों की थी टेक ।
वहां उसे कुछ भय नहीं लाग, लगा उसे वह स्वर्गिम बाग ।
रघु संकल्प को लीना धार, परिक्रमा को वहभया त्यार ।

दो॰ की आरंभ परिक्रमा, लेश न कीनी ढील ।
पूर्व प्रभु जिस मग चले, दो सहस्त्र थी मील ॥ 3457

चल व्यासेश्वर से वह पाया, नंगे पांव वन मध्य सिधाया ।
प्रभु का नाम रटे हर श्वास, प्रभु पर उस का था विश्वास ।
वन के मध्य बहु कष्ट सहारे, लिख सके न वे कोई सारे ।
यात्रा पूर्ण भई जिस काल, वर्ष से बढ़ कर लागा काल ।

* भारत की प्रायः नदियां पश्चिम से पूर्व को बहती हैं ।

मार्ग में बहु थल उस देखे, पूर्व काल जो प्रभु थे पेखे ।
प्रभु का स्मरण करे जिस काल, मन में हो वह बहुत बेहाल ।
''इस भूमि पर प्रभु चल पाये, कंटक कंकर जहां पै छाये ।''
जहां पर बाघ चीतों का शोर, जहां पर सांप भयंकर घोर ।

दो॰ बहुत भयंकर जीव ये, मिले न ठौर ठिकान ।
कहीं नदी की बाढ़ है, कहीं अति सुनसान ॥ 3458

मादौगढ़ उस के मग आया, कबीर चौर देख बह पाया ।
महाकालेश्वर मन्दिर देख, शूल पाणेश्वर वन भी पेख ।
शुक्ल तीर्थ में कर प्रणाम, कर व्यासेश्वर में विश्राम ।
धन्य भाग उस ने निज माना, प्रभु की किरपा को पहचाना ।
प्रभु पग से जो पावन भूमी, अपनी आंखों से उस चूमी ।
वहां से लौट सवांइ आया, जहां पर फिर वह रुक न पाया ।
पुनः घूमा वह कई स्थान, महिमा प्रभु की करत बखान ।
''नाथ जी'' कह वह प्रभु पुकारत, उन की प्रतिमा को सत्कारत ।

दो॰ तन पै धारे टाट को, मन में सिमरे राम ।
प्रभु का योग प्रचारत, जनपद नगर ग्राम ॥ 3459 क
''टाट बाबा'' के नाम से, वह भया विख्यात ।
प्रभु की एक विभूति, देखी जग साख्यात ॥ 3459 ख

प्रभु से शक्ति उस थी पायी, प्रभु की महिमा उस वितरायी ।
योग के साधन मुलख से पाय, योग के साधन जग वितराय ।
अनेकों को उस कीन निरोग, जग जानी तब महिमा योग ।
विभूति ऐसी जब जग आये, लुप्त योग जग में वितराये ।
फिरोजाबाद चलि तब आया, आश्रम वहां पर उस बनवाया ।

कीन स्थापित प्रभु का रूप, रस भजन वहां चला अनूप ।
प्रभु की आरती प्रभु का ध्यान, होत वितरित था योग ज्ञान ।
टाट बाबा को माने लोग, है जिस ने साधा पूर्ण योग ।

दो॰ "पूर्ण योग को साध कर, यह है बाबा सिद्ध ।"
ऐसा मानें सकल जन, बाबा भया प्रसिद्ध ॥ 3460

आश्रम में बहु जन थे आते, बाबा से सब शिक्षा पाते ।
"योग का कर लो तुम अभ्यास, माया की नहीं राखो आस ।
प्रभु की शरण में रहना मीत, ग्रहण करो यही जीवन रीत ।"
ऐसी शिक्षा को सब पाते, बाबा के जन गुण थे गाते ।
"राम लाल हैं प्रभु साक्षात, उन्हें भजो तुम सायं प्रात ।
सामान्य गुरु न उन को मानो, पर ब्रह्म भगवान हैं जानो ।"
इस विध बाबा थे समझाते, निज अनुभव सब को बतलाते ।
"माया से जो राखे प्यार, माया करती उसे खवार ।
प्रभु चरणों में जिस का प्यार, उस का ही हो अन्त उद्धार ।"
इस विध बाबा करत सचेत, नर नारी आ शिक्षा लेत ।

दो॰ स्पष्ट बात बाबा कहे, समझें आ नर नार ।
कठिन मार्ग जो योग का, जन करते स्वीकार ॥ 3461

"कठिन योग प्रभु सरल बनाया," बाबा ने था सबन बताया ।
"आते न यदि प्रभु जग माँहि, प्रचार योग का होता नाँहि ।
प्रभु किरपा कर जग में आये, आज गृहस्थी योग कर पाये ।"
सुन कर बाबा का उपदेश, विद्वद्जन ने सोचा लेश ।
बाबा के प्रभु अवश्य महान, जिन का करता यह गुण गान ।
हम भी उन की शरणी जायें, योग के मार्ग को अपनायें ।

योग से उत्तम मार्ग नाहीं, वेद आदि सब ही कथ पाहीं ।
योग सभी से उत्तम माना, कृष्ण चन्द्र ने स्वयं बखाना ।

दो॰ उसी योग को हम गहें, जा बाबा के पास ।
योग धर्म सब से बड़ा, निश्चित यह विश्वास ॥ 3462 क
सब भ्रमों को त्याग कर, ग्रहण करें प्रभु शरण ।
शरण गहे बिन नाथ की, कटे जन्म न मरन ॥ 3462 ख

विद्वद्जन के मन जब आया, बाबा का आ चरण ग्राया ।
सुना प्रभु का दिव्य इतिहास, दृढ़तर भया उन का विश्वास ।
गुरुओं के गुरु जग में आये, बाबा के मुख से सुन पाये ।
गुरुओं के तो गुरु भगवान, पंतजलि ने है कीन बखान ।
तब तो ईश्वर ले अवतार, जग में आया तारन हार ।
जग को न क्यों हम बतलायें, प्रभु का आना सबन सुनायें ।
प्रभु की शरणी जो जन आये, जन्म मरन से मुक्ती पाये ।
यही सोच उन कीन प्रयास, प्रभु की लीला जानें खास ।
निज इच्छा तब उन कहपायी, बाबा ने जब सुन यह पाई ।
उन को दीना तब परामर्श, होश्यारपुर तुम जाओ सहर्ष ।
दिवरामायण जा कर लाओ, उसे देख ज्ञान को पाओ ।
फिर करना तुम निज प्रयास, लिखना चरित प्रभु का खास ।

दो॰ बाबा के आदेश से, सज्जन आये खास ।
ले गये रामायण को, जा कीनी अरदास ॥ 3463

बाबा ने रामायण देख, मुख से कीना तब उल्लेख ।
इस में नाथ का चरित महान, इसे पढ़ो और पाओ ज्ञान ।
था संतोष कुमार विद्वान, उस को आज्ञा कीन प्रदान ।

यह कार्य तुम हि कर पाओ, ''चरिता भरणम्'' लिख दिखलाओ ।
संतोष कुमार माथ झुकाया, रामायण को मस्तक लाया ।
आरंभ किया जब उस निज काम, प्रसन्न भये उस पर प्रभु राम ।
दिव रामायण में जो देखा, निज भाषा में सबन उलेखा ।
बाबा का भी चरित बखाना, चरिता भरणम् में वह आना ।

५८. मिले योग का सबन सहारा (3466/2)

दो॰ राम लाल चरिता भरणम्, है मनोहर ग्रंथ ।
पढ़े सुने जो नित्य ही, मिले योग का पंथ ॥ 3464 क
टाट बाबा रघुनाथ का, इस में चरित महान ।
प्रभु संग ऐसे जन बहु, आये इसी जहान ॥ 3464 ख
प्रभु ही जाने सबन को, और न जाने कोय ।
जो बतलाया नाथ जी, लिख दीना है सोय ॥ 3464 ग
योग धर्म प्रचार हित, सब का है सहयोग ।
विनय मेरी है नाथ जी, उपजें ऐसे लोग ॥ 3464 घ
करें योग प्रचार जो, कर अधर्म का नाश ।
सुखी भयें सब देव गण, होवें असुर हताश ॥ 3464 ङ
इक जन मेरे ध्यान में, है और इस काल ।
राम प्रभु ही सूझता, था जिसे हर काल ॥ 3464 च

हरवंश लाल था उस का नाम, था पोलीस में करता काम ।
गुप्त विभाग में उस का काम, रिपु के लाता भेद तमाम ।
बाल वृद्ध में योग प्रचार, करता ऐसे प्रभु का कार ।
आश्रम के ही बाहर शरीर, गिरता ध्यान में होय अधीर ।

तब जन उसे उठा कर लाते, बूट खोल प्रभु चरणि लिटाते ।
प्रभु को ''दाता जी'' वह कहता, प्रभु प्रेम में रोता रहता ।
*नित्य सजाता प्रभु ''दरबार'' आरती करता मिल परिवार ।
प्रभु की महिमा खूब बखाने, सुनने वाले थे हर्षाने ।

दो॰ **प्रभु की महिम बखानता, सुनते थे नर नार ।**
भक्त बना अविलंब था, उसका सब परिवार ॥ 3465

ध्यान में प्रभु दर्श दे जाते, खुली आंख भी थे दिख पाते ।
ऐसा था हरबंस वह लाल, जिस पै प्रभु थे बहुत दयाल ।
बातें उस से कर के जाते, गुप्त बात भी कभी बताते ।
आज्ञा प्रभु से जब कुछ पाता, पड़ जोखम भी उसे निभाता ।
''कंवर'' नाम से था प्रसिद्ध, उस के काम प्रभु करते सिद्ध ।
शत्रु पक्ष में घुस वह जाता, उस के रहस्य ले कर आता
उलझन में जब निज को पाता, मार्ग दर्शन प्रभु से पाता ।
देख प्रभु की उस पै दाया, ''धन्य कंवर है'' जग कह पाया ।

दो॰ **प्रभु के ऐसे भक्त अब, बढ़ें जगत के माँही ।**
''सेवक'' की यह बेनती, प्रभु चरणों में आंहि ॥ 3466

जग में धर्म का हो विस्तार, इस विध जग का हो उद्धार ।
सब का तन मन हो सुखयारा, मिले योग का सबन सहारा ।
मानव मानव का हो मीत, चर अचर से करे वह परीत ।
मात लोक ही स्वर्ग हो जाय, स्वर्ग की इच्छा ही मिट पाय ।
भ्रांति रहे न चित्त यह कोई, लोक बड़ा इस जग से कोई ।

---

* दरबार = वह आरती के समय श्री प्रभु जी का मंदिर बहुत सजाता और उसे श्री प्रभु जी का दरबार कहता था

समता सके न कर को लोक, भुवः लोक वा हो स्वः लोक ।
ऐसा सुख मिले सभी ताँहिं, त्रिताप रहे न जग में कांहिं ।

दो० प्रभो संभालो जगत को, दे कर अपना हाथ ।
असमंजस हम सब पड़े, सूझत न को पाथ ॥ 3467 क

ॐ पञ्चम सर्ग

(५) विश्व हित विनय

५९ सुखी करो उन को प्रभो (3468)

दो० तव चरणों में कर रहा, एक विनय हूँ और ।
सभी जीव इस विश्व के, रहें सुखी निज ठौर ॥ 3467 ख

पृथ्वी से जो लोक हैं दूर, वहां भी बसते जीव ज़रूर ।
हम से भिन्न उन का आकार, हम से भिन्न उन का व्यवहार ।
ईश्वर के वो सभी हैं अंश, हमरा उन का एक हैं वंश ।
उनके हित मम यही पुकार, किरपा उन पर हो करतार ।
किसी हाल से वे रह पावें, किरपा प्रभु उन पर कर पावें ।
उनके दुख सुख तुझे मालूम, हम जान सकें न रह इस भूम ।
उन से परिचय न मेरा नेक, विनय करूँ फिर भी मैं एक ।
जीव कहीं भी को दुखयारा, उसे मिले तव चरण सहारा ।

दो० चन्द्रमा के लोक में, हैं जो जीव अनेक ।
सुखी करो उन को प्रभो, मम विनय यह एक ॥ 3468

चन्द्रमा इसी लोक का अंग, आदिकाल से इस के संग ।
शीतलता यह सब को देवे, सुन्दरता से मन को मोहे ।

इस का जग पर महा उपकार, क्या हो इस का प्रति उपकार ।
* जग से है यह नहीं बहुदूर, सन्मुख देखें नित्य ज़रूर ।
विनय सेवक यही कर पावे, दया चांद पै भी हो जावे ।
जिन जीवों का वहां है वास, तव हो उन पर किरपा खास ।
उन के सुख दुख हम न जानें प्रभु सर्वज्ञ सभी पहचानें ।
भूमि के जहां भक्त उबारो, चन्द्रमा के जीव भी तारो ।

दो॰ चांद लोक में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।। 3469

सर्व व्यापक तुम हो नाथ, जीव भी रहते हैं तव साथ ।
सभी लोकों में तेरा वास, जीव सर्वत्र हैं तव पास ।
जिस लोक में जीव जो होय, तव किरपा को पावे सोय ।
भूमि के इक पास है लोक, व्योम में उज्जवल बहु आलोक ।
सूरज से भी नहीं अतिदूर, पृथ्वी से वह लोक अदूर । *१
बुध संज्ञा से वह कहलावे, प्रभो वह कृपा तेरी पावे ।
पृथ्वी का वह छोटा भाई, पृथ्वी से वह एक तिहाई ।
नव कोटि किलो यहां से दूर, उस पै किरपा करो ज़रूर ।
बुध पै जीव जो हैं भगवान, उन का सब विध हो कल्याण ।

दो॰ बुध के ग्रह में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।। 3470 क

---

* चन्द्रमा का आकार पृथ्वी से लगभग $\frac{1}{4}$ है और इस की पृथ्वी से दूरी लगभग चार लाख किलोमीटर है ।

* १ बुध ग्रह सारे अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य के निकट है । सूर्य से केवल यह 5.8 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर है । जबकि पृथ्वी सूर्य से 15 करोड़ किलोमीटर दूर है ।

बुध का आकार पृथ्वी के आकार से लगभग $\frac{1}{3}$ है । और यह पृथ्वी से लगभग 9 करोड़ किलोमीटर दूर है ।

एक विनय मम नाथ है, और ग्रह के हेत ।
शुक्र नाम उस लोक का, ज्योति दिव्य जो देत।।3470 ख

रात्री को वह चमकत ऐसे, विद्युत का प्रकाश हो जैसे ।
इस का कारण यह भी जानो, भूमि के बहु पास है मानो ।
पृथ्वी जितना है आकार, शुक्र सुन्दर बहुत प्रकार ।
सूरज से बहु दूरी नाँहि, चमके खूब व्योम के मांहि । *१
जिन जीवों का वहां है वास, पृथ्वी के हैं बहुत वे पास ।
निकट संबंधी अपने जान, "सेवक" उन का चाहे कल्याण ।
प्रभो विनय मेरी सुन पाओ, शुक्र वासी जीव अपनाओ ।
निज चरणों का दे कर प्रेम, बख्शो उन को योग व क्षेम ।

६०. उन जीवों का भी मंगल होय (3471/7)

दो॰ शुक्र लोक में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।। 3471

इक लोक तुम और रच पाया, मंगल जिस है नाम धराया ।
पृथ्वी का वह पूत कहावे, भूसुत भी वह नाम धरावे *२
इस का कारण हम न जानें, इसे सगा संबन्धी मानें ।
पृथ्वी से आधा आकार, स्वतन्त्र घूमे सब प्रकार ।
आठ कोटि किलो भू से दूर, याद करें हम इसे ज़रूर ।
मंगल सब के मुख पै होय, मंगल गान करे हर कोय ।

---

* १. शुक्र ग्रह लगभग 4 करोड़ किलोमीटर पृथ्वी से दूर है । यह सूर्य से 10.8 करोड़ किलोमीटर दूर है । अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा यह पृथ्वी के अधिक समीप है ।

* २. भूसुत या भुपुत्र-ये मंगल ग्रह के और भी नाम हैं । इन नामों का अर्थ है-"भूमि का पुत्र" मंगल का आकार लगभग पृथ्वी का $\frac{1}{2}$ है । यह पृथ्वी से लगभग 8 करोड़ किलो मीटर की दूरी पर है । सूर्य से इस की दूरी 22.8 करोड़ किलोमीटर है ।

उन जीवों का भी मंगल होय, वास करें मंगल में जोय ।
मंगल में जो धारें प्राण, हमें न लेश भी उन का ज्ञान ।

दो॰ मंगल जिन का वास है, उन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ॥ 3472

विनय मेरी प्रभो सुन पाओ, लोक लोकान्तर सुखी बनाओ ।
१. * बृहस्पति का मैं करूँ बखान, सभी ग्रहों से बड़ा यह जान ।
भू से तेरह गुणा महान, इस के न कोई और समान ।
मिले हैं इस को चांद अनेक, करें परिक्रमा जो प्रत्येक ।
पृथ्वी से यह है बहुदूर, सूर्य से भी अतीव सुदूर ।
दूरी का नहीं करते ध्यान, बृहस्पति का जन गाते गान ।
ज्योतिर्विद जो हैं विद्वान, करते इस का बहु वे मान ।
सब से बड़ा जो ग्रह यह नाथ, दया तेरी पा बने सनाथ ।
इस लोक में रहें जो जीव, हो तव कृपा उन्हें नसीब ।

दो॰ बृहस्पति में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ॥ 3473

ऐसा ग्रह अब लेख में आय, जिस से हर इक भय को खाय ।
जगती बेशक भय को खाय, प्रभु कृपा से शनि धन्य हो पाय ।
सम दृष्टि योगेश्वर जान, बुध शनि उन्हें एक समान ।
भूमि से शनि है अति दूर, एक शततईस कोटि सुदूर ।*

---

* १. बृहस्पति पृथ्वी से लगभग तेरह गुणा बड़ा है । और सौर्य मण्डल में सब से बड़ा है । पृथ्वी से इस की दूरी लगभग 63 करोड़ किलो मीटर है । और सूर्य से 77.7 करोड़ किलोमीटर, बृहस्पति के 12 उपग्रह या चांद हैं । जबकि मंगल के दो और पृथ्वी का केवल एक है ।

* शनि की दूरी भूमि से लगभग 123 कोटि किलोमीटर है । सूर्य से शनि को दूरी 138.2 करोड़ किलोमीटर है । पृथ्वी से शनि लगभग नौ गुणा बड़ा है । शनि की परिक्रमा करने वाले नौ चांद हैं ।

एक शत अठतीस कोटि जान, सूर्य से इस का अन्तर मान ।
पृथिवी से इस का आकार, नव गुण मानो हर प्रकार ।
इस को भी मिले चाँद अनेक, जिन की संख्या आठ व एक ।
कैसे जीव वहां रह पायें, यह बात न कोई कथ पायें ।

दो० शनि में जिन का वास है, उन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ । 3474

विनय आप से फिर कर पाऊँ, अरुण ग्रह का हाल सुनाऊँ ।
यह तो सूरज से बहु दूर, पृथिवी से भी बहुत सुदूर ।
फिर भी जाने हम निज अंग, सौर परिवार का निज हि अंग ।
सर से बेशक दूर हैं पैर, सर मागे उन हित फिर भी खैर ।
अरुण पै हो प्रभु दया महान, वहां के जीवों का कल्याण । *१
शशॉक पाँच अरुण के मानें, वहां के जीवों को न जानें ।
पृथिवी से है चगुण महान, बेशक वहां नहीं इन्सान ।
जो भी जीव प्रभु उस लोक, तव कृपा पात्र बनें सब लोग ।

दो० अरुण लोक में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ । 3475

दूर से दूर यदि चलि जावें, इक लोक हम और भी पावें । *2
अगला लोक वरुण ही आवे, दूरी देख बुद्धि चकरावे ।
इस का बहुत बड़ा है रूप, भूमियों तीन जितना स्वरूप ।

---

१. अरुण के पांच चांद हैं । और इस ग्रह का आकार पृथ्वी से लगभग चार गुणा बड़ा है । इस की पृथ्वी से दूरी लगभग 272 करोड़ किलोमीटर है और सूर्य से दूरी 286.8 करोड़ किलोमीटर है ।

२. वरुण की पृथ्वीसे दूरी लगभग 435 करोड़ किलोमीटर है । और सूर्य से 449.7 करोड़ किलोमीटर ।

पृथिवी से यह तीन गुणा बड़ा है । और इस के दो चाँद हैं ।

शोभा इस की तब बढ़ पावे । चाँद द्वय जब चक्र लगावे ।
कृपा कर प्रभु हमें दिखाओ, कौन बसे वहां यह बताओ ।
अपनी रचना तुम तो जानो, सृष्टि का प्रतिकण पहचानो ।
जो भी जीव वहां रह पायें, हम को उन का हाल बतायें ।
ज्ञान न हम को यदि दे पाओ, विनती मेरी तो सुन पाओ ।

६१. आत्मा सर्व व्यापक देव (3476/8)

दो॰ वरुण लोक में वास है, जिन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।।3476

अरुण वरुण ग्रहों से दूर, लोक एक जो है मशहूर ।
कुबेर नाम से उस को जानें, इस नाम को सभी पहचानें ।
सौर वंश की यहां पर सीम, विश्व तो तेरा प्रभो असीम ।
नहीं कुबेर का बड़ा स्वरूप, भूमि से इस का आधा रूप *१
इस को मिला न चाँद भी एक, रात अंधेरी हो प्रत्येक ।
जीव कुबेर में कैसा होय, किमि सके जन जान यह कोय ।
जीवों की वहां सत्ता होय, इस में तो संदेह न कोय ।
आत्मा सर्वव्यापक देव, आप की रचना में अधिदेव ।

दो॰ कुबेर जिन का वास है, उन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।।3477 क.
दिवाकर के जो ग्रह हैं, उन का कीन बखान ।
श्रवण करो अब सूर्य की, हे मेरे भगवान ।।3477 ख.

---

*१ कुबेर का आकार पृथ्वी से लगभग आधा है, सूर्य से इस की दूरी 505.5 करोड़ किलोमीटर है ; और पृथ्वी से लगभग 580 करोड़ किलोमीटर । इस का कोई चाँद नहीं ।

सूरज सभी की आत्मा, ग्रह सकल जो होंय ।
सूरज से ही प्राण को, सकल ग्रह वे गोंय ।।3477 ग.

सूरज ऊर्जा का महा स्त्रोत, गगन सागर में स्थित इक पोत ।
ऊर्जा बांट रहा सब काल, चर अचर इस बिन बेहाल ।
कितना बड़ा इस का आकार, बखान सकें हम किस प्रकार ।*१
दस लाख भूमि भी आयें, समा सभी वे इस में जायें ।
ऐसा भयंकर यह आकार, ऐसा भयंकर तेज अपार ।
तेरी रचना को प्रभु देख, क्षुद्र रूप निज "सेवक" पेख ।
प्रतिपल तुझ को माथ झुकावे, प्रतिपल तेरी महिमा गावे ।
*सूर्य में जो जीव रह पावें, तेरी कृपा सदा ही पावें ।

दो॰ सूरज में जो बसत हैं, उन जीवों का नाथ ।
जैसे भी वे जीव हों, सुखी भयें तव हाथ ।।3478

सौर वंश हित कीन पुकार, प्रभु करिये इस को स्वीकार ।
सौर वंश सम अन्य अनेक, तेरी रचना में प्रत्येक ।
उन हित भी विनय है मेरी, सभी वे पावें कृपा तेरी ।
विश्व में न को रहे दुखयार, नियम प्रभु यह बने तुम्हार ।
कोटी सूरज कोटी रचना, सके न उन की कर को गणना ।
असंख्य जीव इक इक में होय, तेरी दृष्टि में सब कोय ।
उन सब का प्रभो हो कल्याण, मेरी विनय करिये परवान ।
और मैं किस से करूँ पुकार, तुझ से बड़ी न कहीं सरकार ।

---

*१ सूरज का आकार पृथ्वी से दस लाख गुणा से भी अधिक बड़ा है। सूरज की पृथ्वी से दूरी 15 करोड़ किलोमीटर है ।

*आत्म रूप में जो जीव सूरज में हैं उन को सूरज के भयंकर ताप से कोई क्षति नहीं पहुँचती– देखो गीता 2.23 "नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः) ।
न चैनं क्लेदयनत्यापो, न शोषयति मारूत :।"

दो॰ दोनों हाथ उठा कर, सेवक करे पुकार ।
प्रभु विनय मम श्रवण कर, करो इसे स्वीकार ।।3479 क.
मम विनय है एक यही, भला सभी का होय ।
दुखी होय न विश्व में, जीव कभी भी कोय ।।3479 ख.

विनय काण्ड यह है लिख पाया, पर्व पाँच में यह बनवाया ।
आत्म हित है विनय जो कीनी, पर्व प्रथम में वही लिख दीनी ।
प्रभो करिये उस को स्वीकार, "सेवक" का जिमि होय उद्धार ।
धर्म हित विनय दूसरा पर्व, फैले धर्म जगत में सर्व ।
तीजा पर्व इसे लो जान,देश की जाये कभी न आन ।
भारत बने विश्व शिरोमन, देश हित पर्व रहे सभी मन ।
चौथा पर्व जगहित भगवान, बने मनुष्य सच्चा इन्सान ।
युद्ध की नीति जग दे त्याग, मार काट में क्यों रहे लाग ।
अन्तिम पर्व विश्व हित आया, विश्व अनोखा प्रभु रच पाया ।
विश्व में ऐसा न को स्थान, जहां न आत्मा का अधिमान ।
सब हित प्रभु विनय है मेरी, "सेवक" पर रहे कृपा तेरी ।

दो॰ विनय काण्ड स्वीकारिये, करिये यह परवान ।
शरणी 'सेवक' है पड़ा, बालक तव नादान ।।3480

विनय काण्ड अब भया संपूर्ण, दिव्य रामायण भी भयी पूर्ण ।
मंगलकारी मंगल वार, नवमी श्रावण शुभ दीहार ।
*पांच श्रावण बीस पचास, पूर्ण ग्रंथ किया इस दास ।

---

*मंगलवार पांच श्रावण 2050 संवत विक्रमी श्रावण नवमी तदानुसार 27 जुलाई ई॰ सन् 1993 को ग्रंथ संपूर्ण हुआ ।इस ग्रंथ को 23 वर्ष पूर्व 1970 ई॰ सन में श्री प्रभु जी की प्रेरणा से लिखना आरंभ किया था ।

तई वर्ष प्रभु सेवा दीन, लिपिकार बन सेवा कीन ।
पारिश्रमिक जो है प्रभु दीन, लिख सकता नहीं वह यह दीन ।
एक ही मांगूँ अब वरदान, रहे संभाला तेरा दान ।
अन्तिम विनय रही जो मेरी, कथूँ वही पा किरपा तेरी ।
श्रद्धा से जन पढ़े जो ग्रंथ, सुगम मिले उसे यौगिक पंथ ।

दो॰ ग्रंथ संपूर्ण जब भया, राखा प्रभु के पास ।
"निज रचना स्वीकारिये," कीन विनय इस दास ।।3481 क.
प्रभु से आज्ञा तब भयी "अभी अधूरा काम ।
"शिक्षा काण्ड" लिखवायें, तभी मिले विश्राम ।।3481 ख.

इति

इति सद्गुरुदेव योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी महाराज
के शिष्य "सेवक" चमन लाल कपूर कृत योगेश्वर
श्री प्रभु राम लाल जी महाराज की दिव्य जीवनी
"श्री योग महादिव्य रामायण" का विनय काण्ड
समाप्त

1) ब्रह्मा नन्द जी — 11-00 — To 11-30
2) रमाद — जी — 11-30 To 12-00
3) अनुराग — जी — 12-00 To 12-30
4) ज्योति — जी — 12-30 To 1-00
5) धीरज — जी — 1-00 To 1-30
6) अमित — जी — 1-30 To 2-00
7) सुखदेव — जी — 2-00 To — 2-30
1) ब्रह्मा नन्द जी - 2-30 To 3-00
2) रमाद जी - 3-00 To 3-30
3) ज्योति जी - 3-30 To 4-00
4) धीरज जी - 4-00 To 4-30
5) अमित - जी 4-30 To 5-00
6) सुखदेव जी - 5-00 To 5-30
7) अनुराग - जी - 5-30 To 6-00